प्रकाशक—

रघुवीरशरण दिवाकर

बी. ए. एल. एल. बी.

मुद्रक,

मैनेजर

सत्येश्वर प्रिंटिंग प्रेस

सत्याश्रम, वर्धा. (सी. पी.)

अध्याय सूची

जरूरत हुई है। महात्मा बुद्ध की गणना ऐसे ही लोगों में है और उनमें इनका स्थान काफी ऊंचा है।

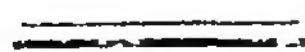
इस पुस्तक में जिन घटनाओं का उल्लेख हुआ है वे बौद्ध साहित्य में से ज्यों की त्यों ली गई हैं अर्थात् घटनाएं कल्पित नहीं है, उन घटनाओं को लेकर म. बुद्ध के मन का चित्रण किया गया है। यद्यपि म. बुद्ध को एक मनुष्य मानकर उनके मनोभावों का चित्रण किया गया है फिर भी इन बातों का पूरा खयाल रक्खा गया है कि हर एक चित्रण म. बुद्ध के व्यक्तित्व के अनुरूप हो, और उन घटनाओं और आगे पीछे की घटनाओं के साथ उनका पूरा सामञ्जस्य हो, इतना ही नहीं किन्तु कुछ घटनाओं में सुसगतता आदि बढ़ाने की भी चेष्टा की गई है। यह बात भिक्षुणी संघ की स्थापना, युवक साधुओं की जरूरत आदि के प्रकरणों में साफ दिखाई देगी।

महात्मा बुद्ध के मनोभावों का ऐसा सुन्दर चित्रण कोई साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता और कोई करे भी तो उसमें एसी स्वाभाविकता और ऐसा सौन्दर्य नहीं आ सकता जितना इस पुस्तक में आया है। जिसके कन्धों पर एक नवीन और क्रान्तिकारी संस्था की जिम्मेदारी हो, जिसे कदम कदम पर विपत्ति विरोध उपेक्षा और निंदा का सामना करना पड़ा हो, जिसने पुस्तकों का ही नहीं, मानवहृदय का गंभीर अध्ययन किया हो जिस के जीवन में चारों तरफ कठिनाइयों असुविधाओं और संकटों के होते हुए भी एक क्षण के लिए भी निराशा ने स्थान न लिया हो, वही महात्मा बुद्ध के मनोभावों को ठीक ठीक समझ सकता है और बारीकी के साथ उनका चित्रण कर सकता है। श्री० सत्यभक्तजी का जीवन ऐसा

ही एक महान जीवन है। सत्यसमाज की जिम्मेदारी आपके कंधों पर है, शुरू से ही परिचित और अपरिचित क्षेत्रों से विरोधों का आपने असीम धैर्य और साहस के साथ सामना किया है और आगे कदम बढ़ाया है और बढ़ा रहे हैं, अपना सर्वस्व आप इसी कर्तव्य मे अर्पण कर चुके हैं और अब तो आप के जीवन की एक मात्र साधना और एक मात्र ध्येय सत्यसमाज अर्थात उसके सिद्धान्तों के प्रचारद्वारा मानवसमाज का कल्याण ही है। आप के अनुभव गहरे है और विचारकता बहुत ऊँचे पैमाने की है। आपका सर्वधर्मसमभाव, सर्वजाति समभाव और सामाजिक क्रान्ति का संदेश अपने ढंग का एक ही है। आपका जीवन अत्यन्त पवित्र उच्च और महान है, सभीके लिए अनुकरणीय है।

श्री० सत्यभक्तजी ने इस पुस्तक द्वारा महात्मा बुद्ध की महत्ता को तो प्रमाणित किया ही है लेकिन इससे आपके जीवन की झाँकी भी मिलती है। पुस्तक पढने के लिए ही नहीं, मनन करने के लिए है। आशा है पाठक इस का पूरा पूरा उपयोग करेंगे।

रघुवीरशरण दिवाकर बी ए, एल एल बी.
सम्पादक—'नई दुनिया'



म० बुद्ध की सेवामें

महात्मन्

ढाई हजार वर्ष की कालिक दूरी के रहने पर भी जो मैं आपकी डायरी के पत्र पढ सका हूं उसका मुख्य कारण यह है कि आपकी कथा आपकी कथा नहीं है किन्तु दुनियाके महामानवों की अमर कथा है जो न कभी पुरानी होती है न कभी दूर।

आप दुनिया की भलाई के लिये सर्वस्व देने वाले मनुष्य को अन्य कल्पनाओंसे अलग रखकर कल्याण का मार्ग बताने वाले महामानव हैं पर मनुष्यों ने या तो द्वेषवश आप से घृणा की या अज्ञानवश आपको भुलाया या मोहवश आप को कौडियों से लाद दिया। महामानव के रूप में आप को समझने वाले ढूंढने पर भी दुर्लभ हैं। लोग आपको ठीक ठीक समझें, नर से नारायण बनने की कला सीखें, इसलिये आपकी डायरी के पत्र दुनिया में बिखेर रहा हूं।

काल के झपाटे में कभी कभी तथ्य क्षत विक्षत हो जाता है पर सत्य काल की शक्ति के परे है। काल उसका पुजारी है, वह सत्यको नये नये ढंग से पूजता है पर क्षत विक्षत नहीं कर पाता। इन पन्नों में तथ्य भलेही कुछ क्षत विक्षत हुआ हो पर सत्य अक्षुण्ण है इस बात को दुनिया समझे या न समझे पर आप समझते हैं, इस लिये आप की सेवा में ये पन्ने समर्पित हैं।

आपका अनुचर बन्धु

दरबारीलाल सत्यभक्त

बुद्ध हृदय

अर्थात्

महात्मा बुद्ध की डायरी

(१)

मुझे देखकर कौन कहेगा कि मैं दु:खी हूँ। राजभवन है वैभव है सुन्दर पत्नी है पुत्र है, सब आज्ञाकारी हैं। फिर भी मैं असन्तुष्ट हूँ। सोचता हू क्या मेरे जीवन की यही उपयोगिता है? क्या मैं महान हू? सैकडों नौकर चाकर हाथ जोडते हैं क्या ये मुझे हाथ जोडते हैं? या मेरे वैभव को? अगर मैं राजकुल मे पैदा न हुआ होता मेरे पास इतना वैभव न होता तो इन में से कौन हाथ जोडता। इन के हृदयों में मेरी भक्ति नहीं है ये वैभव के गुलाम है और मैं इन गुलामो में महान हू। वाहरी महत्ता।

आज उद्यान को जा रहा था। एक सन्यासी मिला। उस के पास कुछ नहीं था भिक्षा से पेट भरता था पर मेरे वैभव की उसे पर्वाह नहीं थी। वह मेरे दास दासियों से भी गरीब था पर मुझे सिर नहीं झुकाया। मेरे देखने पर इस तरह मुसकरा कर चला गया

मानो मुझ से महान है। आज मुझे सब सिर झुकाते है कल मेरी जवानी चली जाय वैभव चला जाय या कोई सम्राट् मेरे राज्यको विजय करले तो मुझे कौन सिर झुकायगा। इच्छा न रहते हुए भी मुझे सिर झुकाना पडेगा।पर उस सन्यासी को उस सम्राट् की भी क्या पर्वाह हो सकती है ? वह किसी के भी आगे अपनी इच्छा के विना नहीं झुक सकता। भले हीं वह अपने गुरु के आगे या अपने से महान किसी योगी के आगे झुके, पर यह तो भक्ति से झुकना हुआ, भक्ति मे तो अपनी इच्छा प्रधान है स्वतन्त्रता है। वैभव और शक्ति के आगे झुकने में वह स्वतन्त्रता, वह गौरव कहाँ ?

इस प्रकार इस राजपद में भी मैं अत्यन्त क्षुद्र हू। अपनी क्षुद्रता को भुलाने के लिये दास दासी के रूप में मिट्टी के चलते फिरते पुतले मैने खडे कर लिये हैं, इस प्रकार आत्मवञ्चना कर रहा हू। जो आत्म-वञ्चक है वह जग-वञ्चक है ऐसा वञ्चनामय जीवन भी क्या कोई जीवन है।

मेरी इस वेदना को कौन समझेगा ? अगर मै यहाँ से भाग निकलू तो दुनिया मुझे या तो लोकोत्तर त्यागी समझेगी या पागल, पर मेरी वेदना का मर्म किसी के ध्यान मे न आयगा। ओह, आज मै सिद्धार्थ कहला कर भी कैसा असिद्धार्थ हू।

(२)

दुनिया कितनी दुखी है इस बात का ज्यो ज्यो अनुभव होता जा रहा है त्यों त्यो बेचैन हो रहा हू। मृत्यु जरा रोग आदि प्राकृतिक कष्ट तो है ही, साथ ही प्राणी प्राणी को, मनुष्य मनुष्य को जो

अनेक तरह से भक्षण कर रहा है यह असह्य है। वल के नामपर, अधिकार के नामपर, जाति और कुल के नामपर, यहाँ तक कि धर्म के नामपर अन्याय अत्याचारों का ताडव मचा हुआ है। इस प्रकार जब चारों तरफ दावानल धाँय धाँय कर रहा है तब मैं एक वृक्ष के ऊपर बैठा हुआ अपने को सुरक्षित समझूँ और तमाशा देखू यह कैसे हो सकता है!

पापी मार कहता है–सिद्धार्थ, तुम राजा बनो सम्राट् बनो अपने वैभव और अधिकार से जगत् को सुखी बनाओ। कैसी मूर्खता है! अधिकार और वैभव के लिये जितना दुःख देना पडेगा उतना दूर करना ही तो कठिन है फिर दुनिया के अन्य दुःखों की बात तो दूर है। समाज मे फैली हुई बीमारियाँ, मानव प्रकृतिके रोग क्या अधिकार या वैभव से दूर हो सकते है?

पापी मार कहता है–सिद्धार्थ, जब तुम इसी जीवन मे सफल नहीं हो रहे हो तब प्रव्रज्या के जीवन में क्या सफल हो सकोगे? वहाँ तुम दूसरों के क्या काम आओगे? अपना पेट भी न भर सकोगे। ससार से भाग कर तुम कायर और दीन कहलाओगे।

पर मैं पापी मार की चोटें सहन करता हू। मैं कहता हू–दुनिया मुझे कायर कहे दीन कहे मुझे इस की पर्वाह नहीं है। मैं अपने मन का सम्राट् बनूगा। मुझे दुनिया का पेट नहीं भरना है, पेट तो वह भरती ही है, जानवर भी पेट भरते है मैं तो दुनिया को मनुष्य बनाना चाहता हू, मनुष्यों मे मनुष्यता लाना चाहता हू, सत्य की खोज करके दुनिया को देना चाहता हू, इसके लिये धन वैभव अधिकार की जरूरत नहीं है।

(४)

अगर दुनिया मुझे न समझेगी तो भले ही न समझे । दुनिया ऐसी क्या समझदार है जिसके समझने की पर्वाह की जाय । आज तक उसने किसी को कब समझा ? जीते जी तो समझा नहीं, मरने पर या तो भुला दिया या आसमान पर इतने ऊँचे पहुँचा दिया कि वह देवता बनगया, मनुष्य को उसने मनुष्य कभी न समझा । या तो पशु समझा या देव । वह अपनी आदत से लाचार है इसकी चिन्ता मैं क्यों करूं ? मैं अपना काम करूंगा दुनिया अपना काम करेगी ।

मेरी बातें सुनकर पापी मार भाग जाता है आज भी भागा ।

(२)

पापी मार के साथ आज जैसा युद्ध करना पडा वैसा कभी नहीं करना पडा और शायद न कभी करना पडेगा । राहुल और राहुलमाता, माता पिता आदि के प्रेमाकर्षण पर कैसे विजय पाऊंगा, इस भय से चोरी से घर छोडा । घर छोडते समय ऐसा मालूम हुआ कि एक प्रासाद पर से अथाह समुद्र में कूद रहा हूं ।

ओह ! प्रेम का बन्धन भी कितना प्रबल होता है । आधीरात को घर से निकलते समय भी यह इच्छा हुई कि एक बार राहुल और राहुलमाता को देखता चलूं । देहली पर खडे होकर मैने दोनों को देखा । सोचा पुत्रका चुम्बन लूंगा पर देवी के जागजाने के डर से ऐसा न कर सका ।

इस अवसर का लाभ पापी मार ने खूब उठाया । वह बोला-सिद्धार्थ, तुम यह क्या पागलपन कर रहे हो, अनुरक्ता पत्नी

पर भी तुम्हे दया नहीं है ? वह तुम्हारी अर्धाङ्गिनी है आधे अग को छोड कर जाने का तुम्हे कोई हक्क नहीं है। मैंने कहा—मै जगत के लिये पूरे अग का उत्सर्ग कर रहा हू तब आधे अग का उत्सर्ग हो ही जायगा।

मार पापी—यदि ऐसा है तो पत्नी को भी साथ लेजाओ।

मै—जिस अग का जिस जगह जैसा उपयोग हो सकता है उसका उसी तरह उपयोग करना चाहिये। साधना के लिये मेरे पुरुष अग की ही उपयोगिता है। सिद्ध बुद्ध होने पर-स्थान जमा-लेने पर-मैं पत्नी और पुत्र को भी लेने आऊगा। अथवा अगर पत्नी की उपयोगिता घर में ही अधिक होगी तो वहीं रहने दूगा।

मार पापी—क्या पत्नी साधना नहीं करसकती ? सिद्धार्थ, क्या तुम यह समझते हो कि सारा श्रेय पुरुषो के हाथ में है ? नारी क्या बिलकुल अबला है। यदि ऐसा है तो तुम जगत की सेवा नहीं कर सकते।

मैं—छलने के लिये ज्ञानियों सरीखी बातें करने-वाले मार पापी, मैं तुझे पहिचानता हू। तू मुझे साधना से रोकना चाहता है पर मैं तेरी बातें अच्छी तरह जानता हू। तू नारी का पक्ष क्या लेगा विश्वहित का मार्ग मैं जानता हू। राहुलमाता का त्याग मैं विश्वहित के लिये कर रहा हू। नारी भी साधना कर सकती है राहुलमाता भी साधना करेगी। मनुष्य निर्माण का कार्य भी साधना है जो कि नारी करती है उसे वही करने देना चाहता हू। जैसे चलने के लिये एक पैर आगे बढाया जाता है दूसरा पैर जमा रहता है-दोनों पैरों को एक साथ नहीं बढाया जाता उसी प्रकार मैं आगे

(४)

अगर दुनिया मुझे न समझेगी तो भले ही न समझे । दुनिया ऐसी क्या समझदार है जिसके समझने की पर्वाह की जाय । आज तक उसने किसी को कब समझा ? जीते जी तो समझा नहीं, मरने पर या तो भुला दिया या आसमान पर इतने ऊँचे पहुँचा दिया कि वह देवता बनगया, मनुष्य को उसने मनुष्य कभी न समझा । या तो पशु समझा या देव । वह अपनी आदत से लाचार है इसकी चिन्ता मैं क्यों करूं ? मै अपना काम करूंगा दुनिया अपना काम करेगी ।

मेरी बातें सुनकर पापी मार भाग जाता है आज भी भागा ।

(३)

पापी मार के साथ आज जैसा युद्ध करना पडा वैसा कभी नहीं करना पडा और शायद न कभी करना पडेगा । राहुल और राहुलमाता, माता पिता आदि के प्रेमाकर्षण पर कैसे विजय पाऊंगा, इस भय से चोरी से घर छोडा । घर छोडते समय ऐसा मालूम हुआ कि एक प्रासाद पर से अथाह समुद्र में कूद रहा हूं ।

ओह ! प्रेम का बन्धन भी कितना प्रबल होता है । आधीरात को घर से निकलते समय भी यह इच्छा हुई कि एक बार राहुल और राहुलमाता को देखता चलूं । देहली पर खडे होकर मैंने दोनो को देखा । सोचा पुत्रका चुम्बन लूंगा पर देवी के जागजाने के डर से ऐसा न कर सका ।

इस अवसर का लाभ पापी मार ने खूब उठाया । वह बोला-सिद्धार्थ, तुम यह क्या पागलपन कर रहे हो, अनुरक्ता पत्नी

पर भी तुम्हे दया नहीं है ? वह तुम्हारी अर्धाङ्गिनी है आधे अग को छोड कर जाने का तुम्हे कोई हक नहीं है। मैंने कहा—मैं जगत के लिये पूरे अग का उत्सर्ग कर रहा हू तब आधे अग का उत्सर्ग हो ही जायगा।

मार पापी—यदि ऐसा है तो पत्नी को भी साथ लेजाओ।

मै—जिस अग का जिस जगह जैसा उपयोग हो सकता है उसका उसी तरह उपयोग करना चाहिये। साधना के लिये मेरे पुरुष अंग की ही उपयोगिता है। ।सिद्ध बुद्ध होने पर-स्थान जमा-लेने पर-मै पत्नी और पुत्र को भी लेने आऊगा। अथवा अगर पत्नी की उपयोगिता घर मे ही अधिक होगी तो वहीं रहने दूगा।

मार पापी—क्या पत्नी साधना नहीं करसकती ? सिद्धार्थ, क्या तुम यह समझते हो कि सारा श्रेय पुरुषो के हाथ में हैं ? नारी क्या बिलकुल अबला है। यदि ऐसा हैं तो तुम जगत की सेवा नहीं कर सकते।

मै—छलने के लिये ज्ञानियो सरीखी बाते करने-वाले मार पापी, मै तुझे पहिचानता हू। तू मुझे साधना से रोकना चाहता हैं पर मै तेरी बाते अच्छी तरह जानता हू। तू नारी का पक्ष क्या लेगा विश्वहित का मार्ग मै जानता हू। राहुलमाता का त्याग मैं विश्वहित के लिये कर रहा हू। नारी भी साधना कर सकती है राहुलमाता भी साधना करेगी। मनुष्य निर्माण का कार्य भी साधना है जो कि नारी करती है उसे वही करने देना चाहता हू। जैसे चलने के लिये एक पैर आगे बढाया जाता है दूसरा पैर जमा रहता है-दोनों पैरों को एक साथ नहीं बढाया जाता उसी प्रकार मैं आगे

वढ रहा हू । जव तक एक पैर आगे जम न जाय, तव तक दूसरा पैर पीछे ही जमा रहेगा ।

पापी मार--फिर भी मैं कहता हू सिद्धार्थ, जन सेवा करने के जो साधन तुम घर में पासकोगे वह वन मे नहीं पा सकोगे ।

मै--अरे पापी, घर मे मैं चार आदमियों को कुछ दे सकूगा पर गृहत्यागी वनकर जगत को दे सकूगा ।

मार पापी फिर हार कर भाग गया । पर भाग कर भी वह कितना सताता रहा इसे कभी न भूलूगा ।

श्रेय मे भी कितने विघ्न आते है । शत्रु की अपेक्षा मित्र ही अधिक वाधक हो जाते है ।

रात भर कन्थक [राजकुमार सिद्धार्थ के प्रधान घोडे का नाम] की पीठ पर चढकर जव मैं अनोमा नदी के तट तक आया, एक ही रात में तीन राज्यों की सीमाएँ पार कीं इसलिये कन्थक के प्राण निकल गये, तव छन्दक खेद-खिन्न होकर आँसू वहाने लगा और जव मैंने प्रव्रजित होने की वात कही तव तो चिल्ला चिल्लाकर रोने लगा । वोला मै भी दीक्षित होऊगा । उस वेचारे को क्या मालूम कि मै कैसे वीहड वन मे प्रवेश कर रहा हू जहा पथ का पता ही नहीं लगने पाता न दिशा का भी ज्ञान होने पाता है । वह तो सिर के वाल भी नहीं काटने देता था । वोला--छुरा ही नहीं है । तव मैने तलवार से ही अपने वाल काट डाले । जमीन मे पडे हुए मेरे वालो को देख कर वह कितना रोया मानो कोई माँ अपने मृतशिशु को देखकर रो रही हो । मुझे उसका मोह देखकर दया आ रही थी । और यह मार पापी कुछ

शोक भी पैदा कर देता था। पर मैंने किसी तरह अपने आँसुओं को रोक ही लिया। मार पापी भाग गया छन्दक को लौटा दिया।

कल तक मैं राजकुमार था आज अनिर्दिष्ट-पथ भिखारी हूं। अपने को मिट्टी में मिला दिया है। देखूं अंकुर कब निकलता है।

(४)

मनुष्य वास्तव मे अभी पशु है वह पशुबलके आगे झुकता है, त्याग तप और सेवा का उसके सामने कुछ मूल्य नहीं। अगर मै तलवार उठाऊँ, स्त्रियो को विधवा बनाना शुरु कर दूं, बच्चों के बाप छीन लू, बुड्ढों के बच्चे छीन लू, तो वे ही लोग मेरे सामने सिर झुकायेंगे सोना चाँदी हीरा माणिक आदि की भेट चढायेंगे मुझे अपना रक्षक और अन्नदाता कहेंगे जिनके बेटों को भाइयो को और बापो को मैं तलवार के घाट उतारूगा। और आज, जब मै समस्त राज-वैभव त्याग कर,बिलकुल निरुपद्रव हो कर, सेवक बनकर जनता के सामने आया तो मुझे जनता ने खाने को क्या दिया? वही दिया जो मेरे यहाँ जानवर भी नहीं खासकते थे जिसे देखकर आँते तक मुंह से निकलना चाहती हैं।

मार पापी कह रहा है—मार्ष, मैंने तुम से कहा था न, दुनिया को तुम्हारी, तुम्हारे त्याग की पर्वाह नहीं है उस की दृष्टि मे जैसे सैकडों भिखारी भीख माँगते फिरते हैं वैसे तुम भी हो। तुम उसे इस तरह क्या देपाओगे? लातो के देवता बातों से नहीं मानते। अगर तुम राजा बनकर आओ तो देखो तुम्हारा कैसा स्वागत होता है तुम्हारी बाते किस तरह आदर से सुनी जाती है। इस घर में तीन वर्ष के पुराने सुगन्धित चावलों का भोजन करते

थे, एक से एक बढकर रस पीते थे वह सब तुम्हें यहाँ भी मिलना अगर तुम राजा बनकर आते। आज तुम त्यागी बनकर आये, समझे होगे अब मैं राजाओं से भी बड़ा हो गया, पर दुनिया ने तुम्हें क्या समझा ? सिर्फ एक भिखारी। मार्ष, भला चाहो तो अब लौट जाओ। मन में बैठा हुआ पापी मार मौके बेमौके ऐसी ही चोटें किया करता है पर मुझे नहीं जीत पाता पापी मारने जब मुझे ऐसे ताने मारे तब मैंने उससे कहा—

मूर्ख तू त्याग के रहस्य को क्या जाने। दुनिया पशुबल के वैभव के और अधिकार के आगे झुकती है, त्याग की, सेवा की कद्र नहीं करती यह तो उस की बीमारी है जिसे मैं दूर करना चाहता हू। वैद्य अगर रोगी के रोग से घबरा जाय तो वह उस की चिकित्सा क्या करेगा। सन्निपात में रोगी वैद्य को गालियाँ भी देता है लातें भी मारता है पर वैद्य इन बातो का विचार नहीं करता वह उस की चिकित्सा करता है। मुझे उस की चिकित्सा का विचार करना है मूर्खता से किये गये अपमान या उपेक्षा पर ध्यान नहीं देना है। राजा बनकर मै आदर पा सकता हू पर अनन्त यश नहीं। वह यश जो अपने हृदय से निकलता है और जगत् की पर्वाह नहीं करता।

मेरी बातो से पापी निरुत्तर हो जाता है।

(४)

पीछे भी जाऊँ कहाँ आगे बढना है कठिन।
अन्धकार घन घोर है हुआ एक सा रातदिन ॥

अभी तक सत्य नहीं पा सका। पाच वर्ष निकल गये पर विश्वसेवा

की कोई योजना न बन सकी। सोचा कि प्रसिद्ध प्रसिद्ध आचार्यों के पास जाकर सत्य प्राप्त करूंगा पर वहां कुछ न पाया जो कुछ पाया वह निःसार था। आलारकालाम, उद्दक रामपुत्र बड़े बड़े आचार्य हैं पर योग के नाम पर कुछ व्यायाम सिखाने के सिवाय उनके पास कुछ न था। जगत को इस व्यायाम से क्या लाभ? उनने मुझे आचार्य बनने को कहा था पर सत्य को पाये बिना आचार्य बनने से क्या लाभ? इसकी अपेक्षा राजा ही क्या बुरा था। कभी कभी चिन्ता होती है कि क्या मेरा जीवन व्यर्थ ही जायगा। मैं कितनी तपस्याएँ कर चुका हूं, रूक्ष से रूक्ष आहार ग्रहण कर चुका हूं, महीनों निराहार रह चुका हूं, मुर्दे के समान स्थिर पड़ा रहा हूं पर सत्य नहीं मिला। लेकिन आश्चर्य तो यह है कि उसी समय दुनिया ने मुझे महान समझा। पांच भिक्षु मुझे महाज्ञानी समझकर वर्षों मेरी झाड़ूबर्दारी करते रहे दुनिया मुझे पूजने को आती रही जब कि मैं दुनिया को कुछ नहीं देता था। दुनिया को यह एक बीमारी है कि वह निकम्मे लोगों को पूजती है। जो इसका पशुबल से दमन करता है दुनिया पर बोझ डालता है वही दुनिया का सम्राट् है, सन्त है, योगी है। उन भिक्षुओंको देखो न, जबतक मैं निकम्मा रहकर कष्ट-सहन करता रहा, सबके सब दासदासी की तरह मेरी सेवा करते रहे, मैंने उन्हें कुछ नहीं दिया पर सन्तुष्ट थे। और आज जब व्यर्थ का देहदंड छोड़ कर उन्हें कुछ देना चाहा समझाना चाहा तब सबके सब भाग गये। यद्यपि मैंने अभी सत्य नहीं पाया है पर अनेक असत्यों को पहिचान गया हूं और उनसे हट गया हूं अब मुझे सत्यके दर्शन होने में देर न लगेगी। पर मेरी इस उन्नति

को उनने पतन समझा और भाग गये, अब साधारण जगत से क्या आशा की जाय ? वास्तव में यह उनका पतन है इसलिये जहा वे गये है उसे मैं ऋपिपतन कहूगा। दुनिया आज इसी पतन के मार्ग पर जारही है, वह सत्यशिव सुन्दर से डर कर भागती है और असत्य अशिव असुन्दरसे डरकर भक्ति करती है। दुनिया मूर्ख है भीत है, समझ मे नहीं आता कि इन पशुतुल्य मनुष्यों पर दया करू या इन नृकीटोसे घृणा।

पापी मार कहता है—मार्प, दुनिया तुम्हे न समझेगी वह तुम्हारी दयाके योग्य नहीं है वह दड के योग्य है। घर लौट चलो राजदड धारण करो दुनिया के सिर पर सवार हो जाओ दुनिया तुम्हे समझेगी।

मैं कहता हू—पापी मार, तू मुझे क्या सिखाता है ? दुनिया मुझे समझे या न समझे इसकी मुझे पर्वाह नहीं है। मै असत्य का आश्रय लू और दुनिया मुझे समझे इससे मुझे क्या लाभ ? जिसने अपने को भी नहीं समझ पाया उसको दुनियाने समझ भी लिया तो उसे क्या लाभ है। सामने वह चट्टान पडी है मै उसे समझता हू तू उसे समझता है जो यहा आते है सब उसे समझते है पर इससे उसे क्या लाभ? वह अपने को तो समझती ही नहीं है। जिसे दुनिया समझे किन्तु वह अपने को न समझे ऐसा पत्थर मै नहीं बनना चाहता। मैं अपने को समझूगा दुनिया के समझने न समझनेकी पर्वाह न करूगा।

मेरी बातो मे मारपापी भाग गया है पर वह जहा चोट कर गया है वहा अब भी दर्द है।

(६)

इन पिछली कई रात्रियों मे बहुत विचारमग्न रहा। जिस सत्य को पाने के लिये घर द्वार छोड तपस्याएँ कीं उस सत्यके जब दर्शन हुये तब मैं चकित हो गया। उसके दर्शन से मेरा जीवन सफल हो गया।

पर क्या जीवन की सफलता इतने मे ही है? मै सत्यके दर्शन पाजाऊ, उसके आनद में जीवन भर मस्त रहू और अविद्या मे डूबी हुई दुनियाँ को भूल जाऊ तो क्या मेरा जीवन सफल होगा? क्या समाज के भीतर एक मनुष्य इतना ऊचा रह सकता है कि जहा दुनिया की नजर ही न पहुँचे। चारों तरफ जहा नरक बन गया हो, चीत्कार से कान फटे जाते हों दुर्गन्ध से नाक पकी जाती हो उस जगत के बीच अपनी छोटी सी फुलवाडी बनाकर फूलों की सुगध लू, दिव्य सगीत गाऊँ और इस प्रकार आनन्द में मस्त रहूँ तो क्या सम्भव है? समष्टि के उद्धार के बिना व्यक्ति का उद्धार कहाँ तक होगा। जगत मे अगर पाप है तो उसका थोडा बहुत फल मुझे भी सहना पडेगा। जगत को उठाये बिना मै कहाँ तक उठूगा।

पर जगत को उठाऊँ कैसे? जगत क्या उठना चाहता है? क्या वह सच्चे रास्ते पर चलना चाहता है। जिस परम सत्यका मुझे दर्शन हुआ है उसका तेज क्या जगत सह सकेगा?

जगत अतिवाद का पुजारी है। अति को ही वह महान समझता है। उसी के सामने वह सिर झुकाता है। वह धन वैभव की अति करनेवाले सेठों की पूजा करेगा, अधिकार की अति

को उनने पतन समझा और भाग गये, अब साधारण जगत से क्या आशा की जाय ? वास्तव में यह उनका पतन है इसलिये जहा वे गये है उसे मैं ऋषिपतन कहूगा। दुनिया आज इसी पतन के मार्ग पर जारही है, वह सत्यशिव सुन्दर से डर कर भागती है और असत्य अशिव असुन्दरसे डरकर भक्ति करती है। दुनिया मूर्ख है भीत है, समझ में नहीं आता कि इन पशुतुल्य मनुष्यो पर दया करू या इन नृकीटोंसे घृणा।

पापी मार कहता है—मार्ष, दुनिया तुम्हे न समझेगी वह तुम्हारी दयाके योग्य नहीं है वह दड के योग्य है। घर लौट चलो राजदड धारण करो दुनिया के सिर पर सवार हो जाओ दुनिया तुम्हें समझेगी।

मैं कहता हू—पापी मार, तू मुझे क्या सिखाता है ? दुनिया मुझे समझे या न समझे इसकी मुझे पर्वाह नहीं है। मैं असत्य का आश्रय लू और दुनिया मुझे समझे इससे मुझे क्या लाभ ? जिसने अपने को भी नहीं समझ पाया उसको दुनियाने समझ भी लिया तो उसे क्या लाभ है। सामने वह चट्टान पडी है मै उसे समझता हू तू उसे समझता है जो यहा आते है सब उसे समझते हैं पर इससे उसे क्या लाभ? वह अपने को तो समझती ही नहीं है। जिसे दुनिया समझे किन्तु वह अपने को न समझे ऐसा पत्थर मैं नहीं बनना चाहता। मैं अपने को समझूगा दुनिया के समझने न समझनेकी पर्वाह न करूगा।

मेरी बातों से मारपापी भाग गया है पर वह जहा चोट कर गया है वहा अब भी दर्द है।

(६)

इन पिछली कई रात्रियों में बहुत विचारमग्न रहा। जिस सत्य को पाने के लिये घर द्वार छोड तपस्याएँ कीं उस सत्यके जब दर्शन हुये तब मैं चकित हो गया। उसके दर्शन से मेरा जीवन सफल हो गया।

पर क्या जीवन की सफलता इतने मे ही है? मैं सत्यके दर्शन पाजाऊ, उसके आनद में जीवन भर मस्त रहू और अविद्या में डूबी हुई दुनियाँ को भूल जाऊ तो क्या मेरा जीवन सफल होगा? क्या समाज के भीतर एक मनुष्य इतना ऊचा रह सकता है कि जहा दुनिया की नजर ही न पहुँचे। चारो तरफ जहा नरक बन गया हो, चीत्कार से कान फटे जाते हों दुर्गन्ध से नाक पकी जाती हो उस जगत के बीच अपनी छोटी सी फुलवाडी बनाकर फूलों की सुगध लू, दिव्य सगीत गाऊँ और इस प्रकार आनन्द में मस्त रहूँ तो क्या सम्भव है? समष्टि के उद्धार के बिना व्यक्ति का उद्धार कहाँ तक होगा। जगत में अगर पाप है तो उसका थोडा बहुत फल मुझे भी सहना पडेगा। जगत को उठाये बिना मै कहाँ तक उठूगा।

पर जगत को उठाऊँ कैसे? जगत क्या उठना चाहता है? क्या वह सच्चे रास्ते पर चलना चाहता है। जिस परम सत्यका मुझे दर्शन हुआ है उसका तेज क्या जगत सह सकेगा?

जगत अतिवाद का पुजारी है। अति को ही वह महान समझता है। उसी के सामने वह सिर झुकाता है। वह धन वैभव की अति करनेवाले सेठों की पूजा करेगा, अधिकार की अति

करनेवाले राजाओ की पूजा करेगा, देहदड की अति करनेवाले तापसो की पूजा करेगा । वह अगम्यका पुजारी है, आश्चर्य का पुजारी है, भय का पुजारी है, निरर्थकता का पुजारी है, पर प्रेम का पुजारी नही है, सरलता का पुजारी नही है ।

जगत के सारे अतिवाद दु ख देनेवाले है । एक ही रसकी अधिकता से भोजन स्वादिष्ट नहीं बनता केवल नमक ही नमक डालने से या केवल मिर्च ही मिर्च डालने से या गुड ही गुड डालने से भोजन स्वादिष्ट नहीं बनता । स्वादिष्टता के लिये मित मात्रा मे सब की जरूरत है। जीवन के लिये भी यही बात है उसमे त्याग की जरूरत है । पर अनावश्यक देह दड की नहीं, उस मे भोग की जरूरत है पर इद्रियों का गुलाम बनने की नहीं, मार्ग मध्यमे है, निरति में है। पर क्या जगत इस बात को समझ सकता है तब मै जगत् को सत्य दर्शन कैसे कराऊँ।

एक और बाधा है जगत की दृष्टि बिलकुल उलटी है। जो जरूरी है उसे यह गैरजरूरी समझता है जो गैरजरूरी है उसे जरूरी समझता है। जो ध्येय है उसे गौण बनाता है जिसका ध्येय से कुछ सम्बन्ध नहीं उसे मुख्य बनाता है । इस तरह जब उसकी नजर ही खराब है तब उसे दिखाऊँ क्या ?

मनुष्य सुख चाहता है दु ख से डरता है पर न तो सुख दु ख समझने की चेष्टा करता है न उसके कारण,जिन मनोविकारों से मनुष्य दु खी होता है जगत को दु खी करता है उन मनोविकारों को हटाने की उसे चिन्ता नहीं है । हमारे चारो तरफ जो दु.ख के कारण भरे पडे हैं उनको दूर करने की चिन्ता नहीं है । चिन्ता है

उसको इन बातो की कि स्वर्ग कहॉ है, कैसा है, वहॉ अप्सराएँ मिलती है कि नहीं, नरक कहॉ है, ईश्वर कहॉ है कैसा है, परलोक कहॉ है कैसा है। इस तरह की निरर्थक बातो मे अपनी सिरपच्ची करता है। इन्हीं बातो को लेकर दलबन्दी करता है। लडता झगडता है, निन्दा करता है। फिर इसे कहता है धर्म। ऐसे पागल जगत को मैं क्या समझाऊँ कैसे समझाऊ। उसे तो दम्भ चाहिये। कोई आदमी परलोक आदि के नामपर उसको खुश करनेवाली कल्पनाएँ सुनाये, सर्वज्ञता का दम भर कर उसे ठगे तो दुनिया उसपर खुश है। परन्तु कोई सच्ची बात कहे, अज्ञेय को अज्ञेय कहे, सुख का सीधा और सरल रास्ता बताये तो यह पागल जगत उसे ही पागल कहेगा। वह तो चाहता है कोई उसे अंधेरे में टटोलने का काम दे दे कि जिस से वहा मन की कल्पनाएँ करने को खूब जगह मिले। वह प्रकाश नहीं चाहता क्योंकि प्रकाश में कल्पनाओं को जगह नहीं है। प्रकाश के द्वारा परमित दिखता है पर ठीक दिखता है किन्तु मनुष्य को इससे सतोष कहा। वह अधकार मे रहकर अनन्त कल्पनाए करना चाहता है। ऐसे जगत को मैं प्रकाश कैसे दू ? उल्लू को प्रकाश देने का क्या अर्थ ? न बाबा, मैं कुछ नहीं करना चाहता। जगत अपने में मस्त रहे मै अपनमें मस्त हू।

पापी मार कहता है— यही ठीक है। मार्ष, तुम सेवा के फन्दे में मत पडो। तुम सत्यशिव देना चाहते हो जगत सुन्दर चाहता है। तुम सीधा मार्ग बताना चाहते हो, जगत कहता है सीधा तो मै समझता हू उसमे तुम्हारी क्या जरूरत ? तुम जगत के काम के नहीं। मार्ष, जब तुम देखोगे कि दुनिया में ठगो की ही जय है

तुम पर तो दुनिया हँसती ही है उपेक्षा ही करती है तब तुम खिन्न हो जाओगे। जहा असफलता निश्चित है वहा जाना ही क्यो? तुमने सिद्धि पा ली, बस आनन्द करो। जगत नरक के द्वार मे जा रहा है तो जाने दो, वह तो जायगा हाँ, तुम क्यो उसके लिये परेशान हो रहे हो? कीचड को दूध मलाई बनाने के लिये उसमे अपना दूध क्यो डाल रहे हो?

पर इस पापी मार को हटाने के लिये मेरे अन्तस्तल का ब्रह्म जोकि सम्पूर्ण सद्वृत्तियों का सभापति है, सदा जगता रखता है। उसने मार पापी से कहा—धूर्त, दुनिया के धूर्तो की विजय होती है तो क्या सब धूर्तों के सम्राट तेरी भी विजय होने दी जाय। जगत नहीं समझता तो क्या हुआ? कम से कम एक आदमी तो समझेगा। अगर बुद्धने एक आदमी का भी उद्धार कर दिया तो क्या हानि है एक से दो तो हुए। फिर जो बुद्ध है ज्ञानी है जिन है योगी है उसे सफलता असफलता की क्या पर्वाह। असफलताएँ उसे निराश और दुखी नहीं कर सकतीं। कर्म करना मनुष्य का स्वभाव है वह कर्म किये बिना सुख से नहीं रह सकता, ऐसी जडता उसे पसन्द नहीं है, इस प्रकार जब हर हालत मे कर्म करना स्वाभाविक है तब बुद्ध जनजागरण का काम क्यों न करें?

यह ब्रह्मानुरोध ही मुझे ठीक मालूम होता है। मुझे निरपेक्ष सेवक बनना चाहिये। जगत पागल रोगी के समान है। जो अपने वैद्य को नहीं पहिचानता। वह वैद्य को गाली देता है सताता है पर जो परोपकारी वैद्य है वह इस दुर्व्यवहार की पर्वाह न करके रोगी की चिकित्सा करता है मै भी जगत की चिकित्सा करूगा।

मेरे इस निरपेक्ष दृढ निश्चय से पापी मार फिर पराजित होकर भाग जाता है।

(७)

इस देश की विचार शक्ति नष्ट हो गई है। लोग यह सोच नहीं सकते कि कोई मनुष्य कुछ विचार करके जगत के सामने भी कुछ रख सकता है। अपने अनुभव से खोजकर कोई कुछ सत्य जगत के सामने रक्खे तो जगत यही पूछताहै—कहा से लाये तुम यह सत्य, किस शास्त्र या किस गुरु से पाया है यह तुमने। भले आदमी यह नहीं सोचते कि शास्त्रों का मूल और गुरुत्व का मूल भी तो अनुभव है। अगर शास्त्रकारों ने इस जगत को अनुभव से पढा तो आज कोई क्यों नहीं पढ सकता।

बेचारा उपक आजीवक भी ऐसाही भोला निकला। मेरा परिचय पाकर और मेरे मुँह से कुछ नई बाते सुनकर वह चकित हुवा। पर बेचारा यह न सोच सका कि वर्षों तपस्या करके दिन रात ध्यानमग्न रहकर यह अमूल्य सत्य मैंने खोज लिया है। उसने मेरी नई बाते सुनकर यही पूछा— तुम्हारा गुरु कौन है ?

मैंने कहा—कोई व्यक्ति विशेष मेरा गुरु नहीं है, यह सारा जगत् मेरा गुरु है। प्रकृति ही एक खुली हुई पुस्तक है उसे मैंने अपने अनुभव से पढा इसलिये मै स्वय अपना गुरु हू। मै अर्हत् हू, शास्ता हू, सबुद्ध हू, जगत में धर्मचक्र घुमाने के लिये काशियो के नगर को जा रहा हू।

उपक हँसकर बोला—महाशय, जैसा तुम दावा करते हो

वैसे होते तो अनन्त जिन बन जाते।

मैंने कहा–मुझ सरीखे प्राणी ही अनन्त जिन कहलाते हैं। जिनत्व चमडे पर नहीं दिखाई देता और न जिनत्व का कोई बाहरी ठाठ होता है। वह तो आत्मशुद्धि पर निर्भर है। जिसने सत्यका दर्शन किया है विकारों पर विजय पाई है वही जिन हैं।

'अच्छा भाई होगे तुम जिन' यह कह कर नाक मुँह सिकोडता हुआ उपक चला गया।

उपक कुछविद्वान था सन्यासी था पर वह भी मुझे न समझ पाया। सोचता हू यह दुनिया मुझे कैसे समझेगी ?

जीवन में लोग किसी को नहीं समझते। मुझे भी न समझेंगे। पर मुझे विश्वास है कि एक न दिन दिन मेरे मार्ग पर लोग चलेंगे। मैं जो सत्य जगत को दे रहा हू उससे जगत का कल्याण है इसलिये वह आज नहीं तो कल समझेगा। हॉ, समझने का ठेका विद्वानो ने नहीं लिया है। जनसाधारण की अपेक्षा विद्वान कहलानेवाले की अन्धश्रद्धा भयंकर होती है। जनसाधारण अपनी अन्ध-श्रद्धापर बुद्धिवाद का आवरण नहीं चढाता जब कि पडित चढाता है। इस आत्मवञ्चना से पडितलोग सत्य के दर्शन नहीं कर पाते साधारण समझ के भावुक व्यक्ति ही सत्य के दर्शन कर पाते हैं। पडित अगर सौमे एक सत्यदर्शन करेगे तो साधारण जनमें सौमें दस या बीस सत्यदर्शन करेंगे। उपक पडित है उसकी अन्धश्रद्धा अनन्त है। अपनी अन्धश्रद्धा को वह खुद नहीं समझ पाता। उसने उस पर बुद्धिवाद का आवरण चढा लिया है। जगत में न जाने कितने उपक भरे होंगे, वे मुझे न पहिचानेंगे जिन मे अन्धश्रद्धा नहीं है, अहकार नहीं है जो जिज्ञासु

और मुमुक्षु हैं, वे विद्वान हों या न हों मुझे पहिचानेंगे और मैं उन्हें सत्यदर्शन करा सकूंगा।

खेद है कि आलारकालाम जिन्दा नहीं है और उद्दक राजपुत्र के मरने के समाचार भी अभी अभी मिले हैं ये लोग सुपात्र थे। इनके पास समझदारी भी थी निष्पक्षता भी थी और जिज्ञासा भी थी।

जब मैं इनके पास शिक्षण लेने के लिये गया और शीघ्र ही शिक्षण समाप्त करके मैंने कहा कि और सिखाइये आपके पास क्या है ? तब इन दानो ने बिलकुल साफ दिल से कह दिया कि अब हमारे पास कुछ नहीं है अब तुम सब सीख गये हो इसलिये आचार्य बनजाओ। पर मैंने आचार्य बनने से इनकार किया और अंतिम सत्य पाने की इच्छा प्रगट की। तब उनने अन्यत्र जाने की अनुमति दी। जगत में ऐसे सरल-हृदय विद्वान बडी मुश्किलसे मिलते हैं। अगर आज वे जिन्दा होते और मेरे इस अंतिम सत्य को सुनते तो अवश्य प्रसन्न होते और मेरे मार्ग को स्वीकार करते।

परन्तु आज यह प्रारम्भ ही बुरा हुआ, पहिले ही कौर में मक्खी निकली। क्या इसे अपशकुन समझूं ? छि., अब मैं शकुन और अपशकुन से परे हूं। यह भी दुनिया में एक भ्रम है। शकुन और अपशकुन कल्पना के भूत है जो निर्बलहृदयो को डराया करते हैं। मेरा ये क्या कर सकते हैं ? अगर सौ वार असफलता हो तो एक सौ एक वार मैं प्रयत्न करने को तैयार हूं। अगर अपशकुन कोई चीज भी होती तो वार वार निष्फल होकर भी मै उनकी शक्ति क्षीण कर देता। मुझे शकुन अपशकुन की पर्वाह न करना चाहिये और न मान अपमान की चिन्ता।

उपक ने जो आज मेरा अपमान या तिरस्कार किया ऐसे अपमान तिरस्कार तो मुझे बहुत से सहना पड़ेंगे। मुझे यह विष पीना ही न पड़ेगा पचाना भी पड़ेगा। जो महादेव है उसे विष पचाना ही पड़ता है।

[८]

आशा नहीं थी कि मुझे समझने वाले इतने अधिक लोग इतनी जल्दी मिल जॉयगे। इस साधुसंस्था का यह गौरव है कि लोग लाखों की सम्पत्ति छोड़ कर इसमे शामिल होते है। वैभव का त्याग करनेवाले जितने शिष्य मुझे मिलेंगे यह संस्था उतनी ही गौरवान्वित होगी। ऐसे लोग प्रलोभनो को अधिक जीत सकते हैं। उन को बात बात पर इस बात का खयाल आता है कि इससे अच्छा तो हम गृहस्थ अवस्था में खा सकते थे, पहिन सकते थे, और स्वतन्त्रता से कर सकते थे अब भिक्षा से भोग भोगने का क्या अर्थ है। जो लोग अपनी गरीबी को छुपाने के लिये या किसी तरह पेट भरने के लिये मेरी साधु संस्था मे आयेंगे और यह देखेंगे कि खाने पीने की सुविधा पहिली अवस्थासे अच्छी है या नहीं, वे कुछ नहीं दे सकते न कुछ पा सकते है, उन्हें साधु बनना कठिन है।

यह अच्छी बात है कि बहुत से वैभवत्यागी भी मेरी संस्था में है। उन्हे त्याग का आनन्द आ गया है। शारीरिक सुखो की अपेक्षा मानसिक सुख मे वे अधिक सन्तुष्ट है। वास्तव मे सुख मनकी ही चीज है पर दुनिया इसे समझती कहाँ हैं? वह बाहर ही सुख देखती है। दुनिया यह नहीं सोचती कि यदि प्रकृति

अच्छी न हो, जीभ अच्छी न हो, भूख न हो तो षड्रस व्यजन भी बेस्वाद मालूम होंगे। यदि भूख हो, नीरोगता हो, तो सूखे चने भी षड्रस व्यजन से लगेंगे। आनन्द का श्रोत भीतर से है बाहर से नहीं। जिसने इस तत्त्व को समझ लिया है वही त्यागी या साधु बन सकता है।

जब भद्रा और पिप्पली की बात पर विचार करता हू तब त्याग की महत्ता के आनन्द से दिल भर जाता है। भद्रा सरीखी सुवर्णवर्णा सौन्दर्य मूर्त्ति युवती, एक विपुल श्रीमन्त की बेटी, एक विपुल श्रीमन्त की पुत्रवधू, एक विद्वान श्रीमान स्वस्थ सुन्दर युवक की पत्नी, उसने ससार-हित और आत्महित के लिये गृहत्याग कर दिया। और ऐसी पत्नी और विशाल वैभव का त्याग करके सैकडों दास दासियो को स्वतन्त्र करके पिप्पली भी गृह त्यागी हो गया और आज वह मेरे पास ब्रह्मचर्य चरण कर रहा है। ऐसे ही लोगो से सघ की महिमा है। ऐसे ही लोग बिना किसी प्रलोभन मे पडे जनता की सेवा कर सकते हैं। पिप्पली के त्यागने सैकडों दास दासियों को स्वतन्त्र कर दिया उसकी सम्पत्ति सैकडों घरों मे बटकर आनन्द वर्षा करने लगी यह क्या जगत की कम भलाई है?

खाने और पहिरने के लिये मनुष्य को बहुत थोडा चाहिये। अगर सब लोग अपनी आवश्यकता के अनुसार खाया और पहिना करें तो जगत में गरीबी दिखाई ही न दे। आर्थिक सघर्ष रुक जाने से जगत् के प्राय सभी पाप नि शेष हो जॉय। पर मनुष्य में ऐसी तृष्णा है कि उसने जगत् को दु खागार बना रक्खा है। इस दुःखागार को जितना सुखमय बनाया जासके उसीके लिये मेरा यह प्रयत्न है।

जितने लोग मेरी साधु संस्था मे प्रविष्ट होंगे जगत का आर्थिक संघर्ष उतना कम हो जायगा। जगत् की सम्पत्ति को बटवाने वाले कम होंगे। खास कर श्रीमन्तो के सन्यास से जगत् का बहुत लाभ है क्योकि सम्पत्ति उनके पास रुकी रहकर दूसरों की हानि करती है।

अगर भद्रा पिप्पली सरीखे श्रीमान लोग गृहत्याग करने लगें तो जगत से दासता बिलकुल नष्ट हो जाय, गरीबी अदृश्य हो जाय। देखू, मैं कहा तक सफल होता हू।

जगत पर इन श्रीमन्तो का बोझ ही नहीं है किन्तु साधु-वेषियों का भी बोझ है। ये साधुवेषी भी परिग्रह के घर बन गये हैं। इनके ठाठ राजाओं से कम नहीं होते। ये सत्य को ग्रहण करने को तैयार नहीं है। कोई लुप्ततत्त्व का आविष्कार करे, जगत को विवेक और सच्चे त्याग के रास्तेपर ले जाय तो ये लोग उसमें बाधा डालते है। पर सारिपुत्र और मौद्गल्यायन को धन्य है जो इस चक्कर से निकल कर आज मेरे पास ब्रह्मचर्य चरण कर रहे है।

आज के बहुत से साधुवेषी लोग परलोक के नामपर भोले लोगों को लूटते है, ज्ञान के विकास को रोकते है, कुरूढियों की पूजा करते है विचारकता का दमन करते है। फिर भी आज वे लोकपूज्य है श्रीमान् है महन्त है। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन भी इसी साधु संस्था मे थे पर ये जिज्ञासु थे सत्य के खोजी थे इसलिये जब इनने अश्वजित् को भिक्षा लेते देखा और उस के मुँहसे मेरा सन्देश सुना तो तुरत ही मुझे शास्ता मान लिया और परिव्राजक

संघ की महन्ताई का प्रलोभन छोड़ कर मेरे पास ब्रम्हचर्य-चरण को आगये ।

सजय परिव्राजक ने इन से कहा–आवुसो, यह अनर्थ मत करो । तुमने परिव्राजक संघ से सब कुछ पाया है तुम दोनों को मैं आज ही परिव्राजक सघ का महन्त बना देता हू । अनेक श्रीमान इस सघ के भक्त हैं वे तुम्हारे इशारे पर नाचेंगे । तुम्हारी तारीफ करेंगे । शाक्यपुत्र के पास जाकर तुम क्या पाओगे ? बहुत से शिष्यों में तुम भी एक शिष्य बनकर रहजाओगे । यहाँ तुम महन्त बनोगे वहाँ तुम सिर्फ सेवक शिष्य रहोगे । सोचलो आवुसो, तुम्हारा हित किस मे है ? पर सारिपुत्र और मौद्गलयायन ने कहा-उस महन्ताई से जीवन की सफलता नहीं है । जीवन की सफलता है सत्य के पाने से । महात्मा गौतम के पास जाकर हम जिस सत्य को पायेंगे जिस शान्ति को पायेंगे जैसा जनहित कर सकेंगे वैसा यहाँ नहीं कर सकेंगे । ऐसी नि सार महन्ताई किस काम की ? वहाँ हम शिष्य रहेगे, हमें किसी की सेवा करना पडेगी, कदाचित् यहा के समान वहा पूजा न होगी तो इससे हमारा क्या बिगड जायगा ? भक्ति के वश होकर अपने से महान की सेवा करना धर्म और सौभाग्य ही नहीं है किन्तु आनन्द भी है । इस आनन्द से क्यों डरना चाहिये । साधु होकर परिश्रम से क्यों डरना चाहिये ? रहा सन्मान और यश, सो इस का श्रोत तो भीतर से है । सत्य पर प्रतिष्ठित होने से जो आत्मसन्तोष होता है वह दुनिया की प्रशसा से हजारगुणा सुखद है । आवुस, अब हमें बाहर की महन्ताई नहीं चाहिये भीतर का राज्य चाहिये । अब हम जाते है ।

इस प्रकार सत्य की भक्ति, जनसेवा की भावना और आत्म-शान्ति से प्रेरित होकर लोग मेरे पास आ रहे हैं। ऐसे त्यागी जबतक इस जगत मे हैं तबतक यह कहा जा सकता है कि मनुष्य समाज का भविष्य उज्वल है। यदि मानव समाज में उपक हैं तो सारिपुत्र मौद्गल्यायन भद्रा पिप्पली आदि भी हैं। निराश होने का कोई कारण नहीं है।

(९)

आज समाचार मिले हैं कि आनन्द के तीस शिष्य प्रव्रज्या छोडकर गृहस्थ हो गये। वे सब के सब इकदम तरुण थे। दूसरा समाचार यह भी मिला है कि मेरे भिक्षु अत्यन्त असभ्यता का आचरण करते हैं। भोजन को जाते है तो इतना शोर मचाते हैं मानो युद्ध कर रहे हों। भीख माँगने में आगे आगे दौडते है जहा चाहे वहा जूँठा पात्र पसार देते है। इन्हें देखकर कौन कहेगा कि ये प्राकृत जन से कुछ विशेष हैं।

इन मोघ पुरुषो को, नालायकों को, मैने बहुत फटकारा और इन लोगों को व्यवस्था से रहने के लिये मैने इनके उपाध्याय और आचार्य बना दिये। ये लोग अपने उपाध्याय और आचार्य की सेवा किया करेंगे और आचार्य और उपाध्यय इनकी सहायता किया करेगे। इस प्रकार इनकी अव्यवस्था दूर हो जायगी। परस्पर अवलम्बन से ये निराकुल भी रहेगे।

आनन्द के तीस शिष्य साधु भाग गये इसके लिये महा-कास्यपने आनन्द को बहुत फटकारा है। वास्तव मे आनन्द में

दीर्घदृष्टि नहीं है वह वर्तमान को ही देखता है और नगद पुण्य का पुजारी है। बहुत जल्दी प्रसन्न भी होता है। कोई भी काम जल्दी कर डालता है। भविष्य मे उसका क्या होगा इस की चिन्ता नहीं करता। महाकाश्यपने उसे ठीक ही फटकारा। मेरे पास आता तो शायद मै उसे इतना न फटकारता पर शिष्यमोह से दूर रहने के लिये चेतावनी अवश्य देता।

किसान जब खेती करता है तब अनाज के पौधो के साथ घास भी ऊगता है पर घास के डरसे वह खेती बन्द नहीं कर देता। मेरे सघ की भी यही बात है। मेरे सघ क्षेत्र में जहाँ सारिपुत्र मौद्गल्यायन सरीखे अनाज के पौधे है वहा भिक्षा के लिये शोर मचानेवाले, भिक्षु बनकर भागजानेवाले घास भी हैं। सो वह घास उखाड दिया जायगा, या स्वय उखड जायगा, जैसे कि आनन्द के शिष्य भाग गये। इस में डरने या शरमिन्दा होने की क्या बात है। बल्कि मैं तो यही ठीक समझता हू कि कुछ समय के लिये ही क्यों न हो हर एक मनुष्य को गृहत्यागी के जीवन का अनुभव मिले तो उस का बहुत लाभ होगा। सघ में जिसे जितने दिन रहना हो रहे, जाना हो जाये, इस की मुझे चिन्ता नहीं है न इसमे मैं सघ की निन्दा समझता हू।

जो इन बातों से मेरे सघ की निन्दा करते हैं उनसे मैं कहता हू कि वे ऐसी खेती कर दिखाये जिसमें घास न ऊगता हो।

(१०)

लोग कहते है श्रमण गौतम घर उजाडता है। वह पतियों को साधु बनाकर स्त्रियो का सुहाग लूटता है, बूढों के सहारे

नष्ट करता है बेटों के बाप लूटता है अच्छे अच्छे श्रीमन्त घर इसने उजाड दिये हैं एक हजार जटिलों के सिर मुडा दिये। सञ्जय के ढाई सौ शिष्यों को भी मूड ले गया। अब न जाने किसे हडपने यहा आया है।

मूढ लोग जो इस प्रकार की निंदा करते हैं उसका समाचार लेकर मेरे शिष्य मेरे पास आये थे। मैने उनसे कह दिया— तुम लोग चिन्ता न करो एक सप्ताह से अधिक यह निन्दा न रहेगी और सत्यके दर्बार तक तो एक क्षण भी न पहुचेगी।

यह तो प्रसव-पीडा है। समाज में समता लाने के लिये यह पीडा आवश्यक है। मैं अमीरोके घर उजाडना चाहता हू क्योंकि ऐसा होने से ही गरीबो के घर बसेंगे। भोग में उन्मत्त ललनाएँ सम्पत्ति की निःसारता समझेंगीं, दान देना सीखेंगीं। अभी समाज भोग विलास की तरफ इतना झुक गया है कि उसे दूसरी दिशा में लाने के लिये यह करना ही चाहिये। समय आयगा जब मै इस काम में रोक लगाऊगा। मेरा मार्ग मध्यमें है, मै निरतिवादी हू। विलासियों की सख्या घटाना आवश्यक है। सम्पत्ति के विभाजन के लिये भी यह जरूरी है। बाद में जब ऐसा अवसर आयगा कि सन्यास का अतिरेक होगा समाज सन्यासियो का बोझ न सह सकेगा गृहस्थाश्रम को ही धक्का लगने लगेगा तब मै अवश्य इस विषय में रोक लगा दूगा। अभी तो मुझे श्रीमानों के घर उजाडना है इससे समाज का विकार कम होगा और समाजके लिये योग्य सेवक भी मिलेगे।

जनता तो पागल रोगी के समान है उसे तो सिर्फ चिकित्सा का कष्ट मालूम होता है। चिकित्सा से क्या लाभ होगा इसे वह नहीं

देख सकती। वह तो वैद्य ही देख सकता है इसलिये वह रोगी के आक्रोश की चिन्ता नहीं करता । समाज की चिकित्सा के लिये मुझे भी जनता के आक्रोश की चिन्ता न करना चाहिये।

(११)

अब मुझे मातृभूमिका मोह नहीं है, अब तो सारा विश्व मेरे लिये मातृभूमि है, फिर भी जब आज कपिलवस्तु आया तो ऐसा न मालूम हुआ कि सारे विश्व मे से किसी एक स्थान पर आया हू। पूर्व सस्कार से अन्य स्थानो की अपेक्षा कुछ विशेष अनुभव हुआ। यद्यपि मै बुद्ध होगया हू फिर भी पापी मार के आक्रमण होते ही रहते हैं। वह बोला- मार्ष, यद्यपि तुम गृहत्यागी हो फिर भी जब कुलनगर में आये हो तो जो तुम्हे देखने के लिये अधिक उत्सुक हैं उनके यहाँ तुम्हें पहिले जाना चाहिये। तुम्हारे पिता और तुम्हारी पत्नी तथा अन्य स्वजन परिजन वर्षों से तुम्हे देखने को तरस रहे हैं तब सब घर छोडकर तुम पहिले अपने ही घर में भिक्षा माँगने जाओ।

मैंने कहा- मार, जो बुद्ध है, वीतराग है, जिन है, उसे यह पक्षपात शोभा नहीं देता। मेरे लिये कौन उत्सुक है कौन अनुत्सुक इस का विचार करने की अपेक्षा मुझे यही देखना चाहिये कि मेरे सघ के लिये कौन उत्सुक है और कौन अनुत्सुक, इस दृष्टि से मुझे यही मालूम होता है कि मेरे घर के स्वजन परिजनों की तरह अन्य नागरिक भी उत्सुक हैं। अब मै स्वजन परिजन का पक्षपात नहीं करता। इसलिये घरों के क्रम से भिक्षा लूंगा।

मै क्रमसे ही भिक्षा के लिये बढ रहा था पर वहीं प्रासाद

मुझे दिखाई दिया। मै उस पर अपनी दृष्टि न रोक सका। प्रासाद के एक झरोखे मे मुझे राहुलमाता दिखाई दी। ओह, कितना अन्तर था। जिसे मैने रातको सोते छोडा था वह एक राजकुमारी थी, और अब जिसे देखा वह राजकुमारी होकर भी एक भिक्षुणी सी मालूम हुई।

मुझे देख कर ही वह भीतर चली गई, कदाचित् महाराज को समाचार कहने गई होगी। शायद उसने महाराज से ताना मारकर कहा होगा-देखो, तुम्हारा बेटा आज भिखारी है, क्योंकि थोडी देर बाद ही महाराज शुद्धोदन महल से निकल कर मेरे पास आये।

मोह कितना प्रबल है। महाराज शुद्धोदन मुझे अब भी अपना बेटा समझते है, इसीलिये भिक्षाटन के मार्ग मे ही आकर वे बोले– बेटा, मुझे क्यो शर्मिन्दा करते हो ? क्यो भिक्षा माँगते हो ? क्या तुम्हें और तुम्हारे शिष्यो को मै भोजन नही दे सकता ?

मैंने कहा– महाराज हमारे वशका यही रिवाज है।

महाराजने कहा– बेटा अपना वश तो महान् क्षत्रिय वश है। अपने वश मे कभी किसीने भिक्षा नहीं माँगी। भिक्षा दी तो है पर ली कभी नहीं।

मैं– महाराज, आप जिस वश की बात कर रहे है वह शरीर वश है पर मै आध्यात्मिक वश की बात कर रहा हू। मैं अब शाक्यवशी नही हू श्रमणवशी हू।

महाराज– बेटा भौतिक भोजन के लिये तो भौतिक वश का विचार करना चाहिये।

मैं— महाराज जिनका भोजन भूतपोषण अर्थात् शरीर-पोषण के लिये है वे भौतिक वंश का विचार करते हैं और जिनका भोजन आध्यात्मिकता के लिये है वे आध्यात्मिक वंशका विचार करते हैं।

महाराज--अच्छा है बेटा, जैसा समझो वैसा करो। पर मेरे जीते जी मेरे ही नगर में इस प्रकार पहिले ही दिन भिक्षा न माँगो। अपने सब भिक्षुओं को लेकर महल में चलो। वहीं सब लोग भोजन करें और तुम वर्षों से प्यासे नयनों को दर्शनामृत पिलाओ।

इस प्रकार महाराज के अनुरोध से मुझे राजप्रासाद में जाना पड़ा। यद्यपि श्रमण को राजा रंक में समभाव रहता है जिसका परिचय मैं गृहक्रम से भिक्षा लेकर दे चुका हूं फिर भी अन्धसमभाव ठीक नहीं। समभाव के नामपर हठवाद न होना चाहिये, व्यर्थ ही लोगों के दिल न दुखाना चाहिये। मार्ग मध्य में है अतिवाद में नहीं। श्रेष्ठ पुरुषों के अनुरोध का भी कोई मूल्य होता है, सिर्फ इसी दृष्टि से मैंने महाराज शुद्धोदन का अनुरोध माना। दुनिया समझे कि गौतम, बुद्ध है। वह हठी नहीं है, लकीर का फकीर नहीं है।

एक बात और है, वहाँ मुझे एक बार जाना तो था ही। और यह भी देखना था कि राहुल-माता के ऊपर इन परिस्थितियों का क्या प्रभाव पड़ा है? इसमें सन्देह नहीं कि मैंने उसके साथ बड़ा अन्याय किया हैं, उसके जीवन का रस छीन लिया है पर

जब तक संसार में पाप है तब तक उसके चिकित्सकों को इस प्रकार का कष्ट सहना ही पडेगा और अपने सम्बन्धियों को देना ही पडेगा।

फिर एक क्षत्राणी को तो ऐसे वैधव्य के लिये सदा तयार रहना पडता है। अगर मैं घर में रहता, राजा बनता, युद्ध में जाता, कदाचित् मारा भी जाता, तो भी राहुलमाता को वैधव्यका कष्ट सहना पडता। सच्चा वीर इतना ही कह सकता है कि अन्याय के लिये युद्ध न करूंगा, पर न्याय के के लिये युद्ध करना पडे तो उसमें वह मारा भी जा सकता है। एक वीरपत्नी को राजस चिकित्सा में अगर वैधव्य की सम्भावना है तो इस श्रमणपथ की सात्त्विक चिकित्सा में भी हो तो क्या आश्चर्य है। एक साम्राज्य के लिये हजारों वीरों की जानें जातीं हैं, हजारों नारियाँ विधवाएँ होतीं हैं, हजारों बहिनों के भाई बिछुड जाते हैं, हजारों माता पिता अपुत्रक हो जाते हैं हजारों शिशु पितृहीन हो जाते हैं, इतने पर भी युद्ध में जाते हुए वीरों को विदाई दी जाती है उन्हें मालाएँ पहिनाईं जातीं हैं, तब धर्मसाम्राज्य की स्थापना में, दुनिया से पाप और दुःख को दूर करने में, युवकों को और महर्द्धिकों को गृहत्याग करना पडे तो इसमें क्या आश्चर्य है?

राहुलमाता बुद्धिमती है, विदुषी है, वह इस तत्त्व को समझती है, अथवा उसे समझना चाहिये। मुझे उसके विषय में इसी बात की उत्सुकता थी कि वह कैसी है, मेरे जीवन में जो क्रान्ति हुई उसका उसके जीवन पर क्या प्रभाव पडा है? मोह न होने पर भी यह सहज उत्सुकता थी जोकि आज शान्त हो गई।

मुझे इस बात से प्रसन्नता हुई कि राहुलमाता एक वीरपत्नी है वीरमाता है वीरनारी है। मेरे जाने पर सब मेरे दर्शनों को आये पर वह न आई। सब भिक्षुओं के साथ मैंने भोजन किया पर वह परोसने भी न आई, दिखी भी नहीं। उसका यह आत्मगौरव ठीक ही था। आखिर मैं उसका अपराधी हूं। गृहत्याग भले ही किसी हालत में उचित और आवश्यक हो, पर इस प्रकार चोर की तरह भागना तो उचित नहीं कहा जा सकता है। अधिक से अधिक वह आवश्यक कहा जा सकता है और इतने ही अंश में उसका औचित्य है अन्यथा वह अपराध तो है ही।

उसका यह स्वाभिमान उचित ही नहीं था आवश्यक भी था। इससे मालूम हुआ कि उसने विषयों पर विजय पाई है, बाहर से सहगामिनी न होने पर भी वह भीतर से सहचरी रही है। उसे मेरा मोह नहीं था प्रेम था, इसीलिये इतने वर्षों के बाद घर में आने पर भी वह मेरे देखने के लिये बाहर न निकली। धन्य उसका धैर्य, और धन्य उसकी महत्ता।

मैं बुद्ध जिन या अर्हत हो गया हूं पर जबतक इस शरीरमें हूं तबतक इस शरीर के सम्बन्धों से सर्वथा उदासीन नहीं हो सकता। गृहस्थ जीवनमें पतिरूप में जो मैंने अन्याय किया--चोरी से गृहत्याग किया, उसका नाममात्र का प्रायश्चित्त करना जरूरी था, इसके अतिरिक्त एक गौरवशालिनी नारी के गौरव की रक्षा करना भी जरूरी था, इसलिये मैं अन्त पुर में राहुलमाता को दर्शन देने या उसके दर्शन करने गया।

यह अच्छा हुआ कि महाराज मायमें थे और यह उससे भी अच्छा हुआ कि मैंने अपने दोनो मुख्य शिष्यों-सारिपुत्र और मौद्गल्यायन को साथ मे ले लिया था । पर उनको कह दिया था कि राहुल माता मेरे साथ जो भी व्यवहार करे, करने देना, तुम लोग बीच में न बोलना । वह चाहें राग प्रगट करती या द्वेष, मैं दोनो परिस्थितियो का सामना करने की तयारी से गया था । पर धन्य है उस देवी को, उसने न तो राग प्रगट किया न द्वेष । उसने सिर्फ सिर झुकाकर मुझे प्रणाम किया ।

पहिले तो मैंने यही समझा कि देवीने प्रतिशोध लिया है । जैसे मैंने उपेक्षा करके उसका त्याग किया उसी प्रकार मेरे ऊपर उपेक्षा कर रही है । अच्छा होता अगर उसके दिलमें प्रतिशोध की भावना होती, उस की इस उपक्षा से मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो जाता और मन का बोझ भी उतर जाता; पर इसी समय महाराज ने मेरा सारा भ्रम दूर कर दिया । महाराज बोले---

भन्ते, मेरी बेटी बडी गुणवती तपस्विनी त्यागशीला और पति-भक्ता है । जिस दिन इसने सुना कि मेरे पति गेरुए कपडे पहिनने लगे है तबसे यह गेरुए कपडे पहिनने लगी है, जब से सुना कि मेरे पति एक बार भोजन करते है, तभी से एक बार भोजन करती है, जब से सुना कि मेरे पति पलग पर नहीं सोते तभीसे इसने भी पलंग छोड दिया है, जब से सुना कि तुमने गन्ध माला आदि का त्याग कर दिया है तभी से इसने इन सब का त्याग कर दिया है पीहरवाले अनेक बार बुलाने आये, उनने बहुत कहा कि हम तुम्हारी

हर तरह सेवा सुश्रूषा करेंगे, पर इसने उनकी बातों पर जरा भी ध्यान नहीं दिया।

महाराज की बात सुनकर मै सिहर उठा। अच्छा हुआ कि मै बुद्ध हो गया हू नहीं तो महाराज की बाते सुनकर मै रो देता।

मैंने राहुलमाता की खूब तारीफ की उपदेश दिया और चला आया। कदाचित मै उसकी पतिभक्ति, त्याग, और तप के तेज को अधिक देर तक सह भी न पाता।

नारी, तेरे बन्धन कितने कोमल पर कितने मजबूत हैं! उन्हे तोडना क्या सरल है? उस रात को अगर मैंने चोरी से गृहत्याग न किया होता तो क्या तेरे इस कोमल बन्धन को तोडकर निकल सका होता? अथवा क्या मुझे अस्वाभाविक रूपमें निष्ठुर न बनना पडा होता। पर उस दिन वह निष्ठुरता ठहरती किसके सहारे? मैं किसलिये गृहत्याग करता हू यह तो मैं भी नहीं जानता था। इस प्रकार एक तरफ तो निष्ठुरता को खडे होने के लिये जगह नहीं थी दूसरी तरफ पत्नी के प्रति भी कुछ कर्तव्य था, उसके ऊपर एक तरह से वैधव्य का वज्र बरसाने का भी भय था, ऐसी अवस्था मे वह निष्ठुरता क्या मनुष्यता का अग रहपाती? उसकी मनुष्याङ्गना मैं भी कैसे समझता, और मै समझ भी जाता तो देवी को कैसे समझाता?

वीराङ्गनाएँ मृत्युमुख मे जाते हुए अपने पति को विदा देती है, पर उनके सामने युद्ध, विजय, राष्ट्ररक्षा आदि कर्तव्य का स्पष्ट निर्देश रहता है, पर मेरे सामने क्या था? मेरे सामने ध्येय भी

धुँधले रूपमें दिखाई देता था, मार्ग का तो पता भी नहीं था, तब क्या कहकर मै राहुलमाता से विदा माँगना और ऐसे अनिर्दिष्ट-पथ-विहार के भरोसे प्रेम-बन्धन को कैसे तोड़ पाता। आज जो मैंने पाया इसका तो उस दिन मुझे भी पता न था, फिर राहुलमाता को कैसे समझाता ?

पुरुषने नारी को कैद करने की कोशिश की, पर नारीने अपनी असाधारण योग्यता से उस कैद को स्वर्ग बनाकर पुरुष को भी कैद कर लिया। पुरुष ने शक्ति का प्रदर्शन किया पर नारी ने प्रेम और सुहानुभूति से शक्ति को पराजित करके पुरुष को अपने मे मिला लिया।

आज राहुलमाता की इस प्रचड शक्ति का परिचय मिला। सुदूर रह कर भी राहुलमाता ने मुझे अपनी कैद मे रक्खा। मैंने उसे खोया पर उसने मुझे पाया। नारी की इस प्रचड सात्विक शक्ति को पुरुष के सौ सौ प्रणाम।

पापी मार आज जितना दुर्दान्त था उतना कभी नहीं हुआ, वह जब विपत्ति बनकर आता है तब एक कर्मठ व्यक्ति उसे सहज में ही जीत सकता है, जब प्रलोभन बनकर आता है तब जीतना कुछ कठिन होनेपर भी एक साधु उसे सरलता से जीत सकता है, परन्तु जब वह प्रेम या कर्तव्य बनकर किसी महान कर्तव्य के मार्ग में बाधा डालता है तब उसे जीतना बुद्ध और जिन के लिये भी कठिन हो जाता है। यद्यपि अन्त में बुद्ध या जिन की ही जीत होती है पर इसमे बुद्ध जिन या अर्हत् की शक्ति की पूरी कसौटी हो जाती है। आज मेरी शक्ति की ऐसी ही कसौटी हुई।

१२

राजनैतिक साम्राज्य की अपेक्षा धार्मिक साम्राज्य की स्थापना बड़ी कठिन है। राजनैतिक साम्राज्य की स्थापना में पशु और नर-पशु तक काम दे जाते हैं और उनसे डंडे के बल से काम लिया जा सकता है परन्तु धर्म-साम्राज्य के लिये ऐसे सैनिक काम नहीं देते। उसके लिये तो उच्च कोटि के सैनिक ही विशेष उपयोगी हैं भले ही वे संख्या में थोड़े हों। भुख-मरे आदमी भिक्षु बनकर धर्म-साम्राज्य के सैनिक कहलाने लगें तो वह धर्म-साम्राज्य घड़ियों में उखड़ जायगा। आज जो मुझे सफलता मिली है, मिल रही है उसके अनेक कारणों में से एक बड़ा भारी कारण यह है कि जनता समझती है कि मैंने इसके लिये राज्य-वैभव, सुन्दर पत्नी और अच्छे कुटुम्ब का त्याग किया है। जिस चीज़ के लिये मैंने इतना त्याग किया है वह चीज़ अवश्य अच्छी होगी अगर जनता के दिल पर यह छाप न होती तो मेरा काम आधा क्या चतुर्थांश भी न हो पाता। जनता की इस मूढ़ता पर मुझे खेद होता है कि वह कैसी भद्दी कसौटी से सत्य की परीक्षा करती है ? वह वस्तु की परीक्षा नहीं करती सिर्फ जिस पात्र में वह वस्तु रक्खी है उसे ही देखती है। सोने के पात्र में रक्खा हुआ वह विष भी पी लेगी और मिट्टी के पात्र में रक्खे हुए अमृत से भी नाक मुँह सिकोड़ेगी, फूल चढ़े हों तो विष्ठा भी पूजेगी, फूल न हों तो देवता को भी ठुकरायेगी उसकी यह मूढ़ता वास्तव में खेद-जनक है।

पर खेद करने से क्या होगा ? वैद्य अगर रोगी की मूढ़ता पर खेद ही करता रहे तो रोगी मर जाय और वैद्य 'वैद्य' न रहे।

मै जनता पर खेद ही करता रहू तो जनता का नाश तो जाय और मैं भी तीर्थंकर न रहूं। इसलिये मैंने यही निश्चय किया है कि मेरी साधु-सेना में अधिक से अधि" महर्द्धिक युवक आवे। यद्यपि वुड्ढे और गरीबों के आने की मनाई नहीं है फिर भी जो प्रभाव और जो काम महर्द्धिको और युवकों से हो सकता है वह गरीबो और वुड्ढों से नहीं।

वृद्धों में उत्साह नहीं होता, क्रान्ति की भावना भी नहीं होती, वे शान्त और पवित्र जीवन विता सकते हैं पर एक तीर्थ-स्थापना में काम नहीं दे सकते। जिंदगी के विषय मे वे यही सोचते हैं कि 'गई बहुत रही थोडी' अब इस थोडी के लिये क्या सिरपच्ची की जाय ? अपवाद--रूप में कोई वृद्ध भी ऐसे होते है जो जवानों से बाजी लेते हैं और जो जवानी से क्राति के काम करते चले आते है वे बुढापे मे भी क्रान्ति का काम करते रहते हैं। पर ये सब अपवाद हैं।

गरीबों का त्याग ऐसे आदमी का ज्ञान है जिसने परीक्षा नहीं दी है। परीक्षा दिये विना भी मनुष्य पडित हो सकता है पर उसके विषयमे कुछ कहा नहीं जा सकता। गरीब भी प्रलोभनों को कहा तक विजय करेगा--कहा नहीं जा सकता। आज कोई भुखमरा साधु-सस्था में आ जाय और कल कोई प्रलोभन मिलने लगे, वैभव मिलने लगे तो वह उनका गुलाम जल्दी हो सकता है जब कि महर्द्धिक यह सोचता है कि ऐसे ही प्रलोभन मे फँसना होता तो साधु क्यों बनते ? घर में ही क्या कमी थी ? इस दृष्टि से साधुओं की विशेष उपयोगिता है।

युवकों और महर्द्धिको से प्रभाव भी अच्छा पडता है । वुड्ढों को साधु बनते देखकर लोग कहते है—उँह, बुड्ढा था दुनिया के किसी काम का न था चला गया। गरीबो को साधु बनते देखकर कहते हैं—उँह, कगाल था, घर में खाने को नहीं था, कमाया नहीं जाता था, साधु वन गया।

यद्यपि बुड्ढा भी सच्चा साधु और कर्मठ वन सकता है, और गरीब भी ईमानदार प्रलोभन-विजयी सच्चा साधु वन सकता है, इसलिये मैं वृद्धों और गरीबों का भी मंग्रह करूगा पर संघ की महत्ता के लिये यह आवश्यक है कि उस में अधिक से अधिक वैभव और विलास का त्याग करने वाले बिलकुल तरुण व्यक्ति अच्छी सख्या में आवें। सघ की इस महत्ता से उसकी सेवा-शक्ति बढेगी। महत्ता की छाप से लोग जितना लेते हैं उतना सिर्फ सच्चाई से नहीं लेते।

मैं जानता हू कि जनता की यह भूल है मूढता है तव तक उसीके ढग से काम करना पड़ेगा। यह मूढता दूर करने के लिये भी जनता के पास जाना अनिवार्य है तबतक के लिये यह महत्ता की छाप अवश्य चाहिये।

यही कारण है कि इस एक ही सप्ताह में मैं मुझे सत्य की वेदी पर अपने दो कुटुम्बियों का वलिदान करना पडा और जिस प्रकार एक साम्राट् को दिग्विजय के लिये कुछ न कुछ कुटिल नीति से काम लेना पडता है उसी प्रकार मुझे भी लेना पड़ा—मर्मस्थल पर चोट करना पड़ी। अपनी इस सफलता पर मुझे हँसना भी आता है और रोना भी आता है।

परसों जब मैं राजमहल में भिक्षा के लिये गया तब नन्दकुमार को देखकर यह इच्छा हुई कि अगर नन्द प्रव्रजित हो जाय तो न केवल संघ की महिमा बढ़े किन्तु संघ को एक अच्छा सेवक भी मिल जाय। नन्द बड़ा संकोची लड़का है, संकोच में पड़कर ही अगर वह दीक्षा ले ले तो अभिमान के कारण वह प्रव्रज्या को निभा लेगा। यह सोचकर मैंने अपने हाथ का कमण्डलु नन्द के हाथ में दे दिया। नन्द सोचता रहा होगा कि अब भगवान् कमण्डलु लेकर मुझे वापिस करेंगे पर मैंने उसे वापिस जाने को नहीं कहा।

जब नन्द मेरे साथ बाहर निकलने लगा तब किसी दासीने कहा—अज्जे, अज्जे, देखो कुमार भगवान् के साथ जा रहे हैं वे उन्हे सदा के लिये ले जायेंगे। नन्द की पत्नीने तब झरोखे मे से कहा—आर्य पुत्र, जल्दी आना। फिर भी मुझे अपना दिल पत्थर सरीखा बनाकर नन्द को खींचकर लाना पड़ा और जब नन्द विहार मे आ गया, तब मैंने कहा—

नन्द, तुम बड़े शक्तिशाली हो।

नन्द–सो कैसे भन्ते?

मैं–बुद्ध का कमण्डलु तुम राजमहल से विहार तक लासके। इतनी दूर से बुद्ध का कमंडलु लासकने की ताकत श्रमण के सिवाय और किसी में नहीं हो सकती।

नन्द चुप रहा।

मैं–तो क्या सोचते हो नन्द, उस शक्ति का उपयोग करना चाहते हो या उस शक्ति को व्यर्थ जाने दोगे?

नन्द--उस शक्ति का उपयोग करूँगा भन्ते।

मैं–तो इसके लिये तुम्हें प्रव्रज्या लेना होगी क्या इसके लिये तुम तैयार हो ?

नन्द कुछ विचार में पड गया। फिर बोलाः-

तैयार हूं भन्ते।

इस प्रकार नन्द प्रव्राजित किया गया।

जानता हूँ कि नन्द नव-विवाहित था इस लिये नन्द की पत्नी के विषय में कुछ अन्याय हुआ, पर विश्व-कल्याण के लिये व्यक्ति का वलिदान आवश्यक है। राहुल की दीक्षा भी आज एक विचित्र ढंग से हुई आज जब मैं राजमहल मे गया तब राहुल-माता ने राहुल को यह सिखा कर भेजा कि तू अपने पिता से अपनी विरासत माँग।

राहुलने कहा–भन्ते, आप मेरे पिता है; पिता की तरफ से मुझे विरासत मिलना चाहिये।

मैंने पूछा–तुम अपने पिता की विरासत ले सकोगे ?

राहुल–लूंगा भन्ते।

मैं–सम्हाल सकोगे ?

राहुल-सम्हाल लूँगा भन्ते।

मै--अच्छा तो सम्हाल, यह श्रमण-प्रव्रज्या ही मेरी विरासत है, तू भी उसे ले। सारिपुत्र, राहुल को प्रव्रजित करो।

इस प्रकार राहुल का भी एक तरह से अपहरण किया और उसका जीवन विश्वकल्याण के यज्ञ में लगा दिया।

विश्वकल्याण के लिये जो स्वय-सेवक-सेना मुझे तैयार करना है उसके लिये इस प्रकार के अपहरण मुझे जरूरी हो गये थे यद्यपि ये प्रारम्भ में अपवाद-रूप ही थे । अब इन अपवादों का मैं अन्त कर देना चाहता हू ।

शामको महाराज शुद्धोदन आये और बोले भन्ते, मै आपसे एक वर चाहता हू ।

मै--महाराज, एक भिक्षुक एक महाराज को क्या वर दे सकता है ?

महाराज--भन्ते, जो शक्य है उचित है वही वर चाहता हू ।

मैं--अच्छा कहिये ।

महाराज आपके प्रव्रजित होने पर मैं दु खी हुआ था, नन्द के प्रव्रजित होने पर और भी दु खी हुआ किन्तु अब राहुल के प्रव्राजित होने पर तो मेरे हृदय के टुकडे टुकडे हो रहे हैं । भन्ते, पुत्रप्रेम मेरी छाल छेद रहा है, छाल छेद कर मास छेद रहा है, मास छेद कर नस छेद रहा है, नस छेदकर हड्डी छेद रहा है, हड्डी छेद कर घायल कर दिया है, अच्छा हो आप माता पिता आदि की अनुमति के बिना किसी को प्रव्राजित न करें ।

मैं--महाराज, इस विषय में मै नियन्त्राण करने वाला हू फिर भी इतना तो ख्याल रखना ही पडेगा कि जबतक इस प्रकार के श्रेष्ठ बलिदान नहीं किये जावेगे तबतक विश्व--कल्याण या समाज-सेवा नहीं हो सकती ।

महाराज--भन्ते, जब आप इस प्रकार घर उजाडने लगेंगे तब

आप से कौन प्रेम करेगा ? सब भय करेंगे । भयंकर बनने से कदाचित् सम्राट् बना जा सकता है पर तीर्थंकर या जनसेवक नहीं बना जा सकता । भन्ते, ऐसा कीजिये जिससे आप की तरफ से जगत निर्भय हो । आज तो नारियाँ इसलिये आपसे डरती हैं कि कहीं आप उनके पति या पुत्र न छुड़ालें, लड़के इसलिये डरते है कि कहीं आप उनके बाप न छीनलें, वृद्ध इसलिये डरते है कि कहीं आप उनके जवान बेटों का हरण न करलें, क्या इस भयपूर्ण वातावरण मे सेवा का काम हो सकता है ? आप का तीर्थ क्या लोकप्रिय बन सकता है ?

मै–महाराज, जब हम ऊँचे से ऊँचा महल बनाना चाहते है तब पहिले नीचीसे नीची नींव खोदना पडती है । ध्येय ऊपर की ओर रहता है पर प्रारम्भिक कार्य नीचे की ओर होता है । इसी प्रकार लोकहित के कार्य में भी पहिले लोकविरोध सहन करना पडता है, उससे एक क्रान्तिकारी बुद्ध घबराता नहीं है । नींव का काम हो जाने पर जैसे कार्य की दिशा बदल जाती है उसी प्रकार क्रान्तिकारी का जनक्षोभ का कार्य पूरा हो जाने पर उसकी दिशा बदलती है । मेरे कार्य की दिशा भी बदलनेवाली है क्योंकि अब प्रारम्भिक कार्य समाप्त हो गया है । फिर भी एक बात ध्यान मे रखना चाहिये, आपको ही नहीं समाज को ध्यान में रखना चाहिये कि जिस चीज की हम तारीफ करते हैं, जिस चीज़ से हम आकर्षित होते है उसकी पूर्त्ति अगर हमें करना पडे तो हमें क्षुब्ध न होना चाहिये ।

महाराज--इस का क्या मतलब है भन्ते ।

मै--मेरे सघ की आज तारीफ होती है, मेरी वात को लोग ध्यान से सुनते हैं, उसकी सुविधा सन्मान का भी खयाल रखते है, उस तरफ आकर्पित होते हैं, उसकी वातों को यथाशक्ति जीवन में उतारने की कोशिश करते हैं इन सव का मुख्य कारण यही है कि मेरे सघ में अनेक महर्द्धिक लोग वैभव और जवानी का सुख छोड़कर शामिल होते है । इन्हे देखकर लोग सोचते हैं कि अगर इस सघ में कोई महत्ता और कल्याणकारकता न होती तो लोग धन वैभव और जवानी का आनन्द छोड कर शामिल क्यो होते ? यह वात ठीक है या नहीं महाराज ?

महाराज-हाँ, भन्ते ठीक है !

मैं-तव यह वतलाइये महाराज, कि मेरे सघमे वे महर्द्धिक युवक क्या आकाशसे वरसेंगे ? दुनिया चाहती तो यह है कि जिस सघ में महर्द्धिक युवक हों उसी को अच्छा समझे, आप सरीखे वडे वडे महर्द्धिक भी उसी कसोटी पर सघ को कसते है, पर जव सघ की इसी विशेपताके लिये उन्हीं के घरसे सामग्री ली जाती है तव वे ही क्षुव्ध होते हैं । जगत इतना स्वार्थी है कि वह अपनी प्रसन्नता का वोझ सदा दूसरों के सिर पर लादना चाहता है पर इस तरह सभी लोग अगर विचार करें तो कौन लाभ उठा पायेगा ? इसलिये उचित यह है कि या तो कोई मॉग ही पेश न करना चाहिये अथवा जिस चीज की आवश्यकता हमें मालूम होती हो उसकी पूर्त्ति में हमे भी सहयोग देना चाहिये।

महाराज-परन्तु भते, ऐसी मॉग कौन करता है ? क्या किसीने आपसे आकर कहा ?

मैं– महाराज, ऐसी मॉग कहकर नहीं की जाती, अपने व्यवहार से की जाती है। जिस चीज को आप आदर देंगे, पूजा करेंगे, प्रशंसा करेंगे उस चीजकी मॉंग आप पेश कर रहे हैं यही समझा जायगा। जगत मेरे संघ की जिस बातसे परीक्षा करेगा, जिसे देखकर वह मेरे सत्य को लेना चाहेगा वही बात संघ में लाना पडेगी। दुनिया अगर अपनी ऑखें ठीक करले, वह सत्य को अपनी विवेक-बुद्धि से समझने की कोशिश करे, ऋद्धि-सिद्धि वैभव को सचाई की कसौटी न बनावे, तब मुझे सिर्फ कर्मठता की दृष्टिसे संघ में आदमियों की भरती करना पडे, महर्द्धिक आदिका विचार न करना पडे। मै नहीं चाहता कि नवविवाहिता पत्नियॉ पतिहीन हो कर वैधव्य की यन्त्रणा सहें, पर करू क्या, दुनिया ही मुझे विवश करती है। दुनिया की इस प्रकार की अनुचित मॉगें ही धर्मसंस्थाओं के भीतर पापका बीज डलवातीं हैं, धर्मसंस्थाओं को दंभ, अन्धविश्वास तथा भौतिक वैभव का केन्द्र बनातीं हैं। यद्यपि मैं इस बीज को रहने न दूगा पर दुनिया ने प्रारम्भ में थोडी बहुत मात्रा में वह आवश्यक बना दिया है।

महाराज—ठीक कह रहे हैं भन्ते, अब मै अपनी भूल समझ रहा हू।

मैं—महाराज, यह खास आपकी भूल है सो बात नहीं है, यह जनता की साधारण बीमारी है, उसे अपनी बीमारी का प्रायश्चित्त करना ही चाहिये।

महाराज—परन्तु भन्ते, आपको खोकर ही मैंने अपनी बीमारी का पूरा प्रायश्चित्त कर लिया था। आप सैकडो राजकुमारो से बढकर है यह बात आज मैं ही क्या सारा जगत् मान रहा है, प्रायश्चित्त

के रूप में इतनी अमूल्य निधि देकर भी आज नन्द और राहुल क्यों देने पड रहे है ?

मै—महाराज, मेरी अमूल्यनिधिता की पूरी परीक्षा तब तक नहीं हो सकती जब तक जनता की नजरों से मेरा सारा जीवन न गुजर जाय। आज शब्दों से अमूल्य निधि कहते हुए भी जनता यह कह सकती थी कि श्रमण गौतम पक्षपाती है वह दुनिया के घर उजाडता है परन्तु अपने घर से उसने एक भी आदमी नहीं लिया। यहाँ तक कि दुनिया की नजर ऐसी तीक्ष्ण और विषैली है कि नन्द के ले लेने पर भी वह कह सकती थी कि श्रमण गौतम ने नन्द को तो लिया पर अपना बेटा छोड दिया उसने अपने बेटे के रास्ते का काँटा हटाया है, श्रमण गौतम गृहत्यागी है तो क्या हुआ बेटे के स्वार्थ की रक्षा के लिये अपना कुल बनाये रखने के लिये अब भी मरा जाता है। महाराज, निन्दा झूठी हो या सच्ची, पानी में पडे हुए तेल की तरह जल्दी फैलती है यह निन्दा मेरी अमूल्य-निधिता धोडालती और आज जो लोग बाहर से जितनी निन्दा करते है उससे दस गुणी निन्दा भीतर से तब अवश्य करते जब मैंने नन्द और राहुल को न लिया होता। दुनिया दिल नहीं पढ सकती वह तो उसके कार्यों पर से कल्पना लडाया करती है और जहाँ उसका स्वार्थ नहीं रहता वहाँ किसी की भलाई तभी स्वीकार करती है जब बुराई ढूँढने की कोशिश करते करते थकजाती है और बुराई नहीं ढूँढ पाती।

महाराज—ठीक कह रहे हैं भन्ते, आज जो मेरा घर उजड गया है उसमे आपका दोष नहीं है, दोष दुनिया का है, समाज की

मूढ़ता का है। मैंने जो आपको उलहना दिया उसका मुझे खेद है। अब मै अपना उलहना वापिस लेता हूँ, आप जैसा उचित समझे करें।

मैं– महाराज, मैंने यह नियम तो बना ही दिया है कि मातापिता आदि की अनुज्ञा के बिना किसी को प्रव्रज्या न दीजाय। यह नियम मुझे जल्दी ही बनाना था। हॉ, अगर आज आप न कहते तो यह नियम चार दिन बाद बनता परन्तु यह बनता अवश्य।

महाराज के चले जाने पर मैंने वह नियम बना दिया यह अच्छा ही हुआ। दवाई उतनी ही देना चाहिये जितनी से रोगी को वमन न हो जाय। अगर मैं इस प्रकार का नियम शीघ्र न बनाऊँ तो समाजरूपी रोगी इतना बेचैन हो जायगा कि वह मेरी औषध का वमन कर देगा।

[१३]

स्वयंसेवकों की सेना पर्याप्त संख्या मे इकट्ठी हो रही है। भिक्षु-संघ में शाक्य-कुमारों की भीड़ सी लग रही है। पर साथ ही साथ मेरी जिम्मेदारी और बोझ भी बढ़ रहा है। संघ में सच्चे त्यागियों की जरूरत है जिन में न तो अहंकार या अविनय हो न लोभ-लालसा हो। भिक्षुओं में प्रारम्भ में तो ये दुर्गुण मुरझाये रहते हैं परन्तु थोड़ी देर में फिर पनपने लगते हैं। एक पौधा जब एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगाया जाता है तब वह मुरझाने लगता है बाद में वहा भी वह पहिले की तरह पनपने लगता है। दुर्गुणरूप विषवृक्षों की भी यही दशा है वे गृहस्थाश्रमी हृदय से

हटकर जब श्रमणहृदय में पहुचते है तब पहिले तो मुरझाते है बाद मे फिर पनपते हैं । सघ में जो गरीब या दीन लोग आते हैं वे अपने पुराने जीवन से अधिक आराम साधु-जीवन में देखते हैं और इसी मे रम जाते है । जो अमीर या विद्वान् आते हैं वे अपने त्याग का बदला अहकार की पूजा द्वारा लेना चाहते है । आदर यश और नाम-कीर्तन के मारे मरे जाते हैं । आज जो मेरे चरण चूमते है वे ही कल मेरी कमाई पर अपना दावा सिद्ध करने के लिये अपनी सारी शक्ति लगाना चाहेंगे इस अन्याय का फल होगा सघ में साधुता का अभाव और विक्षोभ । इन महर्द्धिकों और कुलीनो से कल यही परेशानी होनेवाली है ।

उस दिन जब शाक्यराज भद्दिय तथा अनुरुद्ध आनन्द भृगु किम्बिल और देवदत्त ये शाक्य युवक दीक्षित होने के लिये आये तब मुझे ऐसे ही विचार आने लगे इसलिये मैंने इनकी परीक्षा लेने का विचार किया । शाक्य-युवकों के साथ उनका एक सेवक उपालि नाई भी था वह उन से उम्रमें अधिक भी था और बुद्धिमान भी था । उसी को ज्येष्ठ बनाने के विचार से मैंने उन लोगो से पूछा । शाक्यपुत्रो ! तुममें से पहिले किसे दीक्षा दी जाय ?

भगवान् जिसे उचित समझे ।

पहिले दीक्षित होने के लाभ तुम्हें मालूम है ?

नहीं भन्ते ।

देखो, श्रमणों का यह व्यवहार है कि जो पहिले दीक्षित होता है वह उम्र आदि मे छोटा हो या बडा, वह पीछे के श्रमणो से बड़ा माना जाता है । जैसे गृहस्थाश्रम में बडे भाई का आदर छोटे भाइयो

को करना पडता है उसी प्रकार पीछे के दीक्षितो को पहिले के दीक्षित का आदर सत्कार करना पडता है। तुम मे से जो पहिले दीक्षित होगा उसका आदर सत्कार बाकी के लोगो को करना पड़ेगा। अब क्या कहते हो? शाक्यपुत्रो! किसे पहिले दीक्षित किया जाय

भगवान् जिसे उचित समझें।

तुम लोगों को जातिमद तो नहीं है? महर्द्धिकता का मद तो नहीं है? तुम अपने को शुद्ध मनुष्य समझने लगे हो या नहीं?

हॉ भन्ते।

यदि तुम्हारे इस सेवक उपालि नाई को मैं पहिले दीक्षित करू और इसे दीक्षा में तुम्हारा बडा भाई बनाऊ तो तुम इस का विनय खुशी से कर सकोगे या नहीं?

कर सकेंगे भन्ते।

अच्छा अब यही तुम्हारा बडा भाई बना।

इसके बाद मैंने उपालि को ही पहिले दीक्षित किया। इन दिनो मैंने गौर से देखा है कि शाक्य-पुत्र उसका विनय करते है। एक देवदत्त ही ऐसा है जो कुछ सकोच करता है। ऐसा मालूम होता है कि एक दिन यह देवदत्त सघ के लिये विपत्ति सिद्ध होगा। देवदत्त में नाम-मोह बहुत है। मैं समझता हू कि अगर इसका बश चले तो वह हरएक साधु के कमण्डलु पर देवदत्त देवदत्त ही लिखा डाले। देखता हू कि वह जिस आम के झाड के पास रहता है उस झाड पर उसने अनेक जगह देवदत्त लिख डाला है, अपने आसन के चारों तरफ उसने ईंट के टुकडे इस तरह सजाये हैं कि

देखनेवाला पढकर तुरन्त कह सके कि यहा देवदत्त आसन लगाते हैं। जब वह झाड़ू लगाता है तब इस ढगसे लगाता है मानो जमीन पर देवदत्त लिख रहा हो। देवदत्त शब्द का प्रयोग लोगों द्वारा नाना अर्थों मे दिन मे बीसो बार करता है, जब वर्षा होती है तब वह यह नहीं कहता कि वर्षा हो रही है, कहता है देवदान हो रहा है। धीरे धीरे वह ईश्वरवादी भी इसीलिये बनता जा रहा है जिससे देवदत्त शब्द का प्रयोग करने का अवसर मिले। कहा करता है सारी भलाइया देवदत्त है अर्थात् देवने-ईश्वरने दीं हैं। वह सारिपुत्र उपालि आदि का अतिक्रमण करना चाहता है। उस दिन नगर में जब भिक्षा के लिये गया तब किसीने पूछा—यह किसका सघ है, किसने बनाया है? तब देवदत्तने कहा—यह हम लोगो का श्रमण-सघ है, हम लोगों ने इसे इसलिये बनाया है कि मनुष्य को मध्यम-मार्ग दिखायें आदि। दूसरे साधु इस अवसर पर इस प्रकार उत्तर देते है कि यह भगवान् बुद्ध का सघ है, भगवान् ने राज-वैभव छोड कर छः वर्ष तपस्या करके यह दिव्यज्ञान पाया है, हम लोग उन्हीं के शिष्य है। उन भगवान् के मन मे प्राणिमात्र के कल्याण करने की भावना है, वे ऊचनीच सब से प्रेम करते है और मध्यम-मार्ग का प्रचार करते हैं।

इन साधुओं के उत्तर से लोगो को ऐसा लगता है कि इस सघ के मूल में कोई असाधारण महान् पुरुष है जिसकी छाया में जाकर हम राज्यवैभव के सुखसे अधिक सुख पायेंगे। जब कि देवदत्त के उत्तर से यह मालूम होता है कि यह सघ अनायक है इस के मूल में कोई असाधारण व्यक्ति नहीं है, देवदत्त सरीखे दो

चोर चञ्चल युवकों ने यह दूकान खोल ली है । इसप्रकार देवदत्त सत्र को अतिक्रमण करने की धुन में सघ को गिरा रहा है । यद्यपि शब्दो की दृष्टि से यह बहुत छोटीसी बात है, परन्तु शब्द-भेद से जो जनता के मन पर प्रभाव का अन्तर पडता है वह जमीन आसमान के समान है । शाक्यो में जितने लोग प्रव्रजित हुए हैं उन में यह देवदत्त ही ऐसा है जो न्याय अन्याय औचित्य अनौचित्य की पर्वाह किये बिना अपने त्याग की एक एक कौडी का फल ब्याज दरब्याज सहित प्रतिदिन लेता रहता है । पर एक दिन वह देखेगा कि इतना फल पाकर के भी इसने कुछ नहीं पाया । लोगों के मनपर वह महत्त्व की छाप लगाना चाहता है पर उससे उसने लघुत्व और घृणा ही पाई है ।

परन्तु उपालि देवदत्त से बिलकुल भिन्न है । इस की महत्त्वाकांक्षाएँ बिलकुल आध्यात्मिक हैं यह मेरे सिद्धांतों को अच्छी तरह पढना चाहता है पढता भी है, बडा विनीत है, जातिमद तो उसे होगा ही क्या नाम-मोह भी बिलकुल नहीं है । एक दिन अवश्य ही यह महान् श्रुतधर बनेगा और मेरे साहित्य को सुरक्षित रक्खेगा और अर्हत बन जायगा ।

आनन्द एक विचित्र प्रकृति का युवक मालूम होता है । कुछ बिगडेदिलसा है, थोडा उत्तेजित हो जाता है फिर भी इसके दिल में सघ के विषय में और मेरे विषय में काफी अनुरक्ति है । इस की उत्तेजना स्थायी नहीं होती यह सघ का खास आदमी बनेगा पर अपनी चपलता और उत्तेजन-शीलता के कारण खास आदमी बन कर के भी, मेरी बहुत सेवा करके भी, लाञ्छित होता रहेगा ।

यह जो शाक्यों का राजा भद्रिक है यह बडा निर्दोष मालूम होता है । कल कुछ भिक्षुओं ने आकर मुझसे कहा-भद्रिक एकान्त में बैठ कर उदान कहा करते है--अहाहा, कैसा आनन्द है कैसा सुख है ! मैंने भद्रिक को बुलवाकर पूछा---भद्रिक क्या सचमुच तुम ऐसे उदान कहते हो ? अगर कहते हो तो क्यों कहते हो ?

भद्रिक--हाँ भन्ते, जबसे मैं भिक्षुक हुआ हू तबसे मुझे बडा आनन्द, बड़ी निराकुलता मालूम होती है जब मैं राजा था तब मुझे डरके मारे रात के नींद नहीं आती थी । शाक्य बडे चड होते हैं, न मालूम कब किसको रोष आ जाय और वह साधारण कारण से धोखे में या और किसी तरह मेरा धन लूटले, प्रजा में विद्रोह पैदा करदे, इन्हीं कारणो से भन्ते, मै दिन रात बेचैन रहता था, स्वादिष्ट व्यञ्जनों का भी मुझे स्वाद नहीं आता था, कोमल शय्या भी चुभती थी । अपने से बडे राजाओ की ईर्ष्या भी होती थी, कभी कभी उन को सिर भी झुकाना पडता था, वैभव के भीतर भी मैं नरक के दु ख और कारागार की पराधीनता भोग रहा था । परन्तु यहा आकर भन्ते, मुझे कहीं भी भय नहीं मालूम होता, मै अरण्य मे भी, शून्यागार में भी, नगर के बाहर भी बिलकुल निर्मम, अनुद्विग्न और निश्चिन्त रहता हू ।

मै--भद्रिक, पर तुम्हें क्या इस बात का विचार नहीं होता कि पहिले हर बात के लिये लोग तुम्हारा मुँह देखते थे परन्तु अब तुम्हे दूसरो का मुह देखना पडता है, भिक्षा में रोटी के एक एक टुकडे का विचार करना पडता है । छोटे से छोटा काम तुम्हें अपने

हाथ से करना पडता है दूसरो की छोटी छोटी सेवा भी करना पडती है, इतना ही नहीं दूसरों के उलहने भी सुनना पड़ते हैं, प्रिय हो या अप्रिय अपने दोषों की आलोचना सुनना पड़ती है । इससे क्या तुम्हारा मन खिन्न नहीं होता ?

भन्ते, कभी कभी ऐसे निःसार विचार आते है परन्तु वे अपनी नि सारता वताने के लिये ही आते हैं उनसे खेद नहीं होता। पहिले मुझमें राज मद था इसलिये सेवा से, आलोचना से मुझे अपमान माल्म होता था परन्तु जब से आपने मैत्री--भावना का पाठ पढाया है, सेवा में मुझे आनन्द ही माल्म होने लगा है । जब मैं छोटो की सेवा करता हूँ तब मैं एक माता की याद करता हूँ जो अपने बच्चे की सेवा करके अपने को अपमानित या तुच्छ नहीं मानती बल्कि गौरव का अनुभव करती है। जब मैं वडों की सेवा करता हूँ तब मुझे ऐसा माल्म होता है जैसे वालक अपने बाप की सेवा करता है । भन्ते, अपमान वहीं माल्म होता है जहा अपने मन में मद हो । एक बात और है भन्ते, पहिले जब मैं राजा था तब कोई छोटा काम करने से लोग मुझे छोटा, दीन या कजूस समझते थे—मेरी निन्दा करते थे परन्तु अब उन्हीं कामों से मुझे सेवाभावी, विश्वप्रेमी, विनीत साधु समझकर प्रशंसा करते है तब मुझे अपमान कैसे माल्म होगा ? मनुष्य मान-अपमान का विचार दुनिया की नजर में ऊँचा उठने के लिये करता है। जब दुनिया की नज़र ही अपने विषय में बदल गई तब अपमान होना ही बन्द हो गया फिर उसकी चिन्ता क्यों की जाय ?

रही आलोचना सो आलोचनाओं से ही तो मैंने इस तत्त्वको समझ पाया है और आज मैं अपने को एक राजा से भी अधिक सुखी सन्तुष्ट और समुन्नत समझता हूँ।

मैं– साधु साधु ! भद्रिक, तुमने सुखके मर्म को समझ लिया है, गौरव के मर्म को समझ लिया है, जीवन सफल बना लिया है।

इस प्रकार भद्रिक सच्चा साधु बनगया है परन्तु राहुल में अभी सच्ची साधुता नहीं आने पाई वह मेरा पुत्र है शायद यही बात उसकी साधुता में बाधक हो रही है। उस में जो सबसे बडा दोष है वह है झूठ बोलने का। मेरे सामने भी वह अपना दिल नहीं खोलता। जब मैं उसका कोई दोष पकडकर बताता हूँ तब भी वह स्वीकार नहीं करता, कोई न कोई बहाना बनाता है। जब मैं उसका कोई दोष इस तरह पकडलेता हूँ कि वह बहाना न बना पावे या उसके छल की निःसारता बताता हूँ तब भी वह पश्चात्ताप प्रगट नहीं करता या कभी ऐसे शब्दों में प्रगट करता है मानो पश्चात्ताप प्रगट करके मुझपर दया कर रहा है उसका अर्थ या भाव पश्चात्ताप का नहीं होता। वह इतना भोला है कि अभी तक वह यह नहीं समझता कि अगर कोई मनुष्य अपना बाल भी हिलावे तो तथागत (बुद्ध) से उसका मतलब छिपा नहीं रह सकता और तब तक कोई मनुष्य पवित्र नहीं बन सकता जब तक उचित स्थान पर भी वह शुद्ध आलोचना न कर सके। अर्थ-हीन आलोचना अनालोचना से भी बुरी होती है। अभी उस दिन जब मैंने उसकी असत्यता प्रमाणित कर दी तब भी उसने शुद्ध अन्तःकरण से अपराध स्वीकार न किया, यही कहता रहा आप बडे हैं, आप मुझे

अपराधी समझते हैं तो अपराधी सही, मै दंड भोगने को तैयार हूँ। इस तरह विनय की ओट मे उसने अपराध छिपाया। और कभी कभी जब उसमें इतना सा निष्प्राण विनय भी नहीं रहता है तो गर्जकर कहने लगता है कि मैं आपका बेटा हूँ फिर भी आप विश्वास नहीं करते मानों गर्जने से उसकी विश्वसनीयता बढती हो। विश्वसनीयता विश्वसनीय कार्यों से बढेगी, छलरहित होकर अपने हृदय को खोलने से बढ़ेगी पर राहुल इस बातको नहीं समझता। इसलिये कल मैं अम्बलट्ठिका में गया और एकान्त में राहुल को समझाया।

मैंने कहा-किसी राजा का हाथी लड़ाई के मैदान में जाकर पैरों से काम ले, पूँछ से काम ले किन्तु सूंड को पेट के नीचे दबाकर रह जाय तो क्या उसकी सेवा मूल्यवान् होगी ? क्या वह विश्वसनीय होगा ?

राहुल—नहीं भन्ते।

मैं—तो देखो राहुल, जो आदमी शरीर के सभी अंगों से सेवा करता है परन्तु मन को छिपा रखता है, छल करता है, झूठ बोलता है वह विश्वसनीय नहीं हो सकता है। उसकी और सेवाओं का भी मूल्य नहीं के बराबर ही हो जाता है। राहुल तुझे प्रत्यवेक्षण अवश्य करते रहना चाहिये, तुझे देखते रहना चाहिये कि जो कार्य करता हूँ उससे लालसा की या अहंकार की पूजा तो नहीं होती, किसी के प्रति अन्याय तो नहीं होता। शायद ये बातें तेरी समझ में न आवें तो तुझे शास्ता (बुद्ध) के पास या किसी विज्ञ-गुरु-भाई के पास अपनी मनोवृत्ति खोलकर बता देना चाहिये अगर कभी वे तुझ से पूछें तो झूठ तो कभी भी न बोलना चाहिये। जो शास्ता के सामने या गुरु के सामने झूठ बोलता है उसकी साधुता व्यर्थ जाती है। जैसे

कोई रोगी वैद्य को अपनी बीमारी न बतावे या उसके चिह्न छिपावे तो इससे रोगी का ही नाश होगा इसी प्रकार उस श्रमण का भी नाश होता है जो शास्ता के सामने भी अपने अपराधों को छिपाता है, झूठ बोलता है, वचनछल करता है । इसलिये राहुल तुझे प्रत्यवेक्षण सीखना चाहिये ।

मेरी बातों से राहुल का चेहरा फीका पड गया वह कुछ चिन्तातुर हो गया । पर मैं समझता हूँ अब वह अपने दोष अच्छा तरह समझ गया है । सम्भवत अब वह प्रत्यवेक्षण अवश्य करेगा, छल न करेगा, सच बोलेगा ।

इस समय मेरे संघ में नाना तरह के इतने मनुष्य आ गये है, उनकी मनोवृत्तियाँ ऐसी विचित्र हैं कि अन्य सस्थाओं-वालों को भी सब नमूने यहाँ मिल जाँयँगे । पर मुझे तो इन सब की चिकित्सा करना है । परन्तु चिकित्सा के कार्य में श्रद्धा मुख्य है । जब तक वैद्य की योग्यता और चिकित्सा के विषय में और उसकी निर्दोपता पर रोगी को श्रद्धा न होगी वह वैद्य से लाभ नहीं उठा सकता ।

शाक्य-कुमारों को मैंने इसीलिये एकत्रित करके पूछा था— शाक्यपुत्रो, क्या तुम सोचते हो कि तथागत के चित्तमल नहीं छूटे हैं क्योंकि वे तपस्या नहीं करते, साधारण जनके समान कभी एक को स्वीकार करते हैं कभी दूसरे को, कभी किसीपर प्रसन्न होते हैं कभी किसी पर अप्रसन्न।

अनुरुद्ध— नहीं भन्ते, हम ऐसा नहीं समझते हम समझते हैं कि तथागत के चित्तमल छूटगये हैं । विश्व-मैत्री के कारण वे जगत्

का सुधार करना चाहते हैं इस के लिये हम लोगो की चिकित्सा करते हैं। प्रसन्न और अप्रसन्न भी वे इसीलिये होते है जिससे हम लोग किसी काम की बुराई या भलाई समझ सकें। जैसे पशुको ठीक रास्तेपर चलाने के लिये द्वेष न होने पर भी यष्टि या कशा से ताडने का दृश्य बताना पडता है, कभी कभी ताडन भी करना पडता है उसी प्रकार हम लोगों को सुराह पर लाने के लिये तथागत को सब करना पडता है। इससे तथागत के चित्तमल सिद्ध नहीं होता किन्तु विश्वमैत्री-जन्य चिकित्सकता सिद्ध होती है।

मैं—साधु साधु! शाक्यपुत्रो, तुमने तथागत को अच्छी तरह समझ लिया है ऐसी ही मनोवृत्ति से तुम तथागत के जीवन से लाभ उठा सकोगे। परन्तु जब कोई पृथग्जन तुमसे आकर यह पूछे कि तथागत तपस्या नहीं करते, वे उतना कष्ट भी नहीं उठाते जितना उनके शिष्य उठाते है ऐसी हालत में तथागत शास्ता कैसे हो सकते हैं? तब तुम क्या कहोगे? शाक्यपुत्रो!

अनुरुद्ध--भन्ते, हम कहेंगे कि तथागत के मार्ग में अनावश्यक देहदंड वर्जित है। अनावश्यक दुःख उठाने से धर्म नहीं हो जाता। असली तपस्या मनकी है सो तथागत महातपस्वी हैं क्योंकि वे मनको पूरी तरह वश कर चुके है। सारे शिष्यों की तपस्या तथागत की तपस्या के पासंग बराबर भी नहीं है। हम लोग प्रयत्न कर के यमनियमों के अनुसार चलते हैं पर तथागत जैसे चलते हैं वैसे यमनियम बनते हैं। उनका जीवन इतना पवित्र है कि उन्हे यमनियमों की चिन्ता नहीं करना पडती।

मै--साधु साधु ! शाक्यपुत्रो, तुमने तथागत को समझने के साथ तथागत के धर्म को भी अच्छी तरह समझा। पर क्यों शाक्यपुत्रो, अगर कोई पृथक्जन तुमसे कहे कि मैं भी तथागत हूँ या उनके समान हूँ, मैं भी यम नियमो की पर्वाह नहीं करता तो तुम उनसे क्या कहोगे ?

अनुरुद्ध--भन्ते, रोगी मनुष्य को जिस प्रकार पथ्य की जरूरत होती है उस प्रकार नीरोग को नहीं होती। नीरोग को देखकर अगर रोगी दावा करने लगे कि मै भी पथ्य न करूंगा, मै नीरोग हू तो उसका दावा व्यर्थ है। इससे उसका रोग ही बढेगा और वह मर जायगा। जो तथागत नहीं है किन्तु तथागत के समान होने का दावा करके यमनियम रूप पथ्य का सेवन नहीं करता उसका पतन होगा उसका चित्तमल बढेगा और अन्त में वह दुनिया की नजर में भी गिर जायगा। हम लोग दावा करने से ही किसी को तथागत के समान शुद्ध नहीं मानेगे, उसके चित्तमल की परीक्षा करेंगे। इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए विना अगर वह दावा करेगा तो उसे दम्भी समझेगे।

मै--साधु साधु ! शाक्यपुत्रो, तुमने तथागत के धर्म से विवेक भी सीख लिया है। अब तुम लोग जाओ और इसी प्रकार विनय और विवेक को बढ़ाने का सदा प्रयत्न करो।

शाक्यपुत्रों के उत्तरों से मुझे बहुत सन्तोष हुआ है। संघ में ऐसे लोगों की जितनी बहुलता होगी संघ उतना ही महान् और प्रभावशाली बनेगा, जनता इससे उतना ही अधिक लाभ उठा सकेगी।

साधु होना एक बात है और साधुसघ के सदस्य होना बात दूसरी। मेरे सघ में ऐसे लोग भी आगये हैं जिनमें न तो विनय है न त्याग। घर द्वार छोडकर आये हैं पर घर द्वार का मोह अभी भी नहीं छूटा है। इन लोगो मे इतनी नीचता और अविनय है कि बडे से बडे त्यागी साधुओं की भी पर्वाह नहीं करते। कुछ भिक्षु ऐसे नीच हैं कि विहार की सब अच्छी अच्छी जगह पहिले से जाकर ले लेते हैं और खास खास साधुओं को बैठने को जगह भी नहीं मिलती। आज जब सुबह मैं उठा तो देखा सारिपुत्र विहार के बाहर एक झाडके नीचे बैठा है। पूछने पर पता लगा कि जगह न मिलने से उसे रातभर वाहर रहना पडा। कैसे आश्चर्य की बात है! सारिपुत्र मेरा सब से प्यारा शिष्य है बहुत से भिक्षुओं को गुरु के समान है पर इन सब भिक्षुओं में इतना भी विनय नहीं है कि सारिपुत्र को बैठने के लिये जगह छोड दें।

ये लोग मेरी साधु सस्था में इसलिये आये हैं कि ये जगत को बतलायें कि आदर्श मानव जीवन कैसा होता है, पशुबल की अपेक्षा न्यायबल ही महान् है, धन यश आदर सत्कार भोग उपभोग आदि की खींचातानी मे सुख नहीं है किन्तु औचित्य के अनुसार समर्पण करने में ही सुख है, पर ये मोघ पुरुष जब स्थान के लिये इस तरह छीनाझपटी करते हैं, उदार गम्भीर और महान् सेवक अपमानित होते हैं, उनको इस बात की चिन्ता रखना पडती है कि विहार में हमें स्थान मिलेगा या नहीं, इस प्रकार गुण-गुरुओं का अपमान करनेवाले ये नालायक जगत को क्या

सिखायेंगे ? जगत का क्या सुधार करेंगे ? अब तो मुझे नये विहार में प्रसन्नता के बदले स्थान की चिन्ता लेकर घुसना पडेगा और सब के मनमे एक ही मुख्यचिन्ता रहेगी कि हमे उपयुक्त स्थान मिलेगा या नहीं ? यह भी हो सकता है कि किसी दिन ये मेरे लिये भी उपयुक्त स्थान न छोडें। जब कोई सघ के दर्शनार्थ आवे और मेरे स्थानपर इन्हें देखे तो क्या कहे ? सघ बर्बाद होजाय।

गृहस्थों में भी मोह ममता स्वार्थ सघर्ष होते हैं पर इन भिक्षुओ सरीखे भुखमरे गृहस्थ भी बहुत कम होंगे। उनमे विनय होता है, अविनय उसी का करते हैं जिसे समझते नहीं या बुरा समझते हैं, नासमझी में भी शिष्टाचार का पालन तो करते ही हैं पर ये नालायक भिक्षु विनय तो जानते ही नहीं पर शिष्टाचार का पालन भी नहीं करते। अगर मेरा सघ ऐसा ही अशिष्ट रहा तो दुनिया के लिये यह बोझ हो जायगा और जल्दी नष्ट हो जायगा। आज मैंने इनको बुलाकर काफी फटकारा और निम्न लिखित बातें और विनयके नियम सिखाये।

विनय-पात्र

१--जो तुमसे दीक्षा में ज्येष्ठ हो वह तुम्हें वन्दनीय है।

२--जो धर्मपालनमें श्रेष्ठ हो वह वन्दनीय है।

३--जो सघ-सेवामें श्रेष्ठ हो वह वन्दनीय है।

४--जो आचार्य उपाध्याय पद पर हो वह वन्दनीय है।

५- तथागत समस्त भिक्षु--सघ से और समस्त लोक से वन्दनीय है।

विनय-नियम

वन्दनीय गुरुओ का विनय इस तरह करना चाहिये।

१ मिलने पर खडे हो जाना, हाथ जोडना, कुशल प्रश्न पूछना।

२ जबतक वे तुमसे बातचीत कर रहे हो या पास मे खडे हो तबतक खडे रहना।

३ अगर उन्हें देर तक काम हो या चक्रमण कर रहे हो और वहीं तुम्हें बैठकर काम करना हो तो उनके लिये श्रेष्ठ आसन खाली छोड कर दूसरे आसन पर बैठकर काम करना।

४– जाते समय उठ खडे होना, हाथ जोडना।

५– भिक्षा मे मिला हुआ अन्न पहिले उन्हे देना।

६– शय्या स्थान आदि उन के लिये सुरक्षित रखना, जब उन्हें मिलजाय तब बचे हुए स्थान का स्वय उपयोग करना।

७– ऐसा व्यवहार न करना जिससे वन्दनीयों को लोग वन्दनीय समझने में भ्रम करने लगें उनमें और तुममें अन्तर न मालूम हो।

८– सिर्फ रास्ता बताने आदि के लिये उन के आगे चलना अन्यथा सदा पीछे चलना।

९– यथाशक्य उनकी सेवा करना।

१०– वे कोई काम कर रहे हों और वह अपने करने योग्य हो तो खुद करने लगना। जैसे शय्या साफ करते समय उन की शय्या साफ कर देना, बुहारते देख बुहार देना आदि।

११– नम्रता से उत्तर देना। उत्तर देते समय घृणा से मुँह सिकोडने से, स्वर को रूखा करने से, दुष्कृत की आपत्ति होगी।

तथागत के विषय में इस नियमो का पूरी तरह पालन करना चाहिये, उपाध्याय आदि के विषय में भी करीब करीब इसी तरह, और अन्य वन्दनीयो को उस से कुछ कम।

भिक्षुओ, ये जरूरी विनय-नियम तुम्हारे लिये बनाये गये हैं। इनका पालन मन से होना चाहिये। अगर सिर्फ ऊपर से ही पालन करोगे, अर्थात् सिर्फ शिष्टाचार बताओगे तो तुम विनयी और सयमी नहीं हो सकते। विनयहीन शिष्टाचार मे वात्सल्य प्रेम आदि नहीं मिलता और शिष्टाचार भी न करने से वैर बढता है। विनय प्राण है, शिष्टाचार उसका शरीर है, तुम्हें दोनों रखना चाहिये।

इस प्रकार भिक्षुओं को मैंने विनय के नियम बता दिये हैं कदाचित् वे उसका पालन करेगे। व्यवहार का मूल विनय है। सघ की व्यवस्था के लिये विनय की बडी ज़रूरत है। परन्तु यन्त्र की तरह परिचालित होकर जो विनय-नियमो का पालन करते है वे क्या सच्चे विनयी है? सच तो यह है कि सच्चा विनयी जेसा आचरण करता है वैसे नियम बनते हैं, अर्थात् विनय-नियम मैंने बनाये हैं उनका पालन विनयी स्वभाव से करना है। जैसे मनुष्य जब किसी से डर जाता है तब आपसे आप काँपने लगता है, दूर भागने की कोशिश करने लगता है, पकडे जानेपर दीनता बताने लगता है, भीत को भयाचार सिखाने की जरूरत नहीं होती, उसी प्रकार विनयी को विनयाचार सिखाने की जरूरत नहीं होती। विनयी विनयाचार के ज्ञान के बिना ही उठ खडा होता है, हाथ जोड़ता है, सेवाके लिये आगे आगे आता है, उच्चासन वगैरह देता

है ये सब बातें सिखाना नहीं पड़तीं, ये सिखाना पड़तीं हैं उन्हे जो विनयी नहीं है और विनय का व्यवहार करना चाहते हैं। वास्तवमें साधुओं के लिये इन नियमो की जरूरत नहीं थी पर ये मोघ पुरुष साधु हैं कहाँ ? इसलिये व्यवस्था के लिये नियमपालन कराना ही उचित है ।

आखिर अनिच्छापूर्वक मुझे भिक्षुणी-संघ की स्थापना करना पड़ी । आनन्द ने बार बार अनुरोध करके मुझ से आज्ञा ले ही ली। आनन्द बहुत मूर्ख है वह दीर्घदृष्टि नहीं है । मैं मानता हूँ कि स्त्रियाँ अर्हत् पद प्राप्त कर सकतीं हैं अनेक बार मैंने यह बात कही भी है पर भिक्षुसंघ का उद्देश्य ऐसे जनसेवक तैयार करना है जो पवित्र जीवन बिताकर समाज की बुराइयाँ दूर करे। अर्हत् पद तो क्या स्त्रियाँ क्या पुरुष घर में रह कर भी पा सकते हैं पर घर मे समाज को ऐसे साधु सेवक नहीं मिल सकते जो निष्परिग्रह हों, निर्भय हों निस्वार्थ हों, राजा रंक को समदृष्टि से देखते हो। इसीलिये मैंने यह धर्म-सेना खड़ी की है । यह सेना या तो स्त्रियो स्त्रियों की ही होना चाहिये थी या पुरुषों पुरुषो की ही । पुरुषों की सेना में कुछ सुविधा अधिक थी और मैं स्वयं पुरुष हूँ इसलिये पुरुष-सेना का सञ्चालन ही अच्छी तरह से कर सकता हूँ इसलिये मैंने यह पुरुष सेना बनाई। स्त्री और पुरुषों की सेना बनाने से यहाँ भी वही संसार बन जायगा जिसे छोड़कर ये भिक्षु मेरे पास आये हैं । बल्कि घर में मनुष्य लोक से निर्भय हो कर दाम्पत्य बिता सकता है भिक्षु-संघ में तो दाम्पत्य को जगह नहीं है इसलिये यह आकर्षण अन्तर्गामी हो जायगा और धीरे धीरे संघ को खोखला कर देगा ।

अभी उसदिन एक भिक्षु एक भिक्षुणी के निवासस्थान के सामने चक्कर मार रहा था। कभी वहाँ खडे खडे दतौन करता था, कभी वहाँ से पानी लेने जाता था। मैंने इस प्रकार करने को मना किया। तब मैंने देखा कि वह अवसर अनवसर का विचार किये बिना उस भिक्षुणी की तारीफ ही करता है उसकी चर्चा करने का अवसर बनाया करता है वह बडी शीलवती है बडी गुणवती है बडी विदुषी है, अच्छा शका-समाधान करती है अच्छा बोलती है। नि सन्देह वह ऐसी ही है, वह एसे भिक्षुओं का शिकार भी न बनेगी पर इनसे कुछ न कुछ लैंगिक आकर्षण तो बढता ह ह।

कोई चर्चा करने के बहाने भिक्षुणियों के पास जाते हैं, कोई उन्हें परेशान करके उनकी झिडकियाँ का मजा ही लूटना चाहते हैं, कोई विनय का ढोग करके उनके हाथ जोडने जाते हैं, कोई किसी चतुर भिक्षुणी से उपदेश सुनने के बहान जाते हैं। मैंने इन सब बातों की मनाई करदी है। कोई भिक्षु भिक्षुणियों का विनय न करे उनका उपदेश न सुने, कोई भिक्षुणी भिक्षुको झिडकियाँ न बताये गाली गलौज न करे आदि। पर क्या इन नियमों से दोनों का आकर्षण कम हो जायगा? बहाना सबसे सुलभ वस्तु है। मै सौ नियम बनाऊंगा तो एकसौ एकवाँ बहाना निकल आयगा। नियम तो रास्ता बनाते है, चला नही सकते। जिन भिक्षुओं मे सयम नहीं ह वे नियमो मे कैद नहीं हो सकते। मुझ तो ऐसा लगता है कि भिक्षुणियो से सघकी शीघ्र अवनति होगी। धीरे धीरे सघ पापाचार का घर बन जायगा। सघ की जन-सख्या दूनी हो जायगी पर सघ का जीवन आधा ही रह जायगा

और पवित्रता तो नामशेष ही समझो। आनन्द ने भलाई करने का जो प्रयत्न किया है वह कई गुणी बुराई का कारण होगी।

(१५)

धर्म का कार्य है प्राणिमात्र को सुखशान्ति देना। जो इस मार्ग पर अधिक से अधिक चलता है, इस के लिये अधिक से अधिक त्याग करता है वही सच्चा धर्मात्मा है। पर दुनिया ऐसी अंधी है कि धर्म का पालन करना तो दूर उस की कसौटी भी अच्छी तरह नहीं कर सकती। कोई किसी के वैद्यकज्ञान से धर्म की परीक्षा करता है कोई ज्योतिषज्ञान से धर्म की कसौटी करता है कोई नटकला आदि से। इस मूढ़ता का कुछ ठिकाना है! आत्मशुद्धि और जनसेवा इन के बिना भी होती है और इनके होने पर भी नहीं होती फिर भी लोग ऐसी ही बातों से धर्म का कसौटी करते हैं।

उसदिन राजगृह के नगरसेठ को यही पागलपन सूझा-उसने एक चन्दन का पात्र बनवाकर एक लम्बे बाँसपर लटका दिया और जो कोई भिक्षु आता उससे कहता अगर आप अर्हत् हैं तो आप बाँसपर चढ़कर पात्र लीजिये। मानो अर्हत्पन की कसौटी बाँसपर चढ़ने योग्य नटकला हो। ये मूर्ख इतना भी नहीं समझते कि कोई भी नट बाँसपर चढ़कर पात्र उतार सकता है तो क्या वह अर्हत् हो जायगा? और अर्हत भी बाँसपर चढ़ने की कला या शक्ति से वञ्चित हो सकते हैं तो क्या वे अनर्हत् हो जाँयगे। वह सेठ भी मूर्ख, दुनिया भी मूर्ख और मेरे बहुत

से शिष्य भी मूर्ख । मेरे शिष्यों में से वह पिंडोल भारद्वान उस सेठ के यहाँ जा पहुँचा उसने नट की तरह बाँसपर चढकर पात्र उतार लिया। उसने समझा कि बडी धर्म-प्रभावना हो गई। भीड उसके पीछे लग गई, पिंडोलने समझा मै सचमुच अर्हत् हो गया।

यदि पिंडोल सरीखे मूर्ख शिष्य धर्म की ऐसी ही प्रभावना करने लगेंगे तो धर्म में सच्चे त्यागियों और समाजसेवकों को स्थान ही न रह जायगा। धर्मसस्था नटों का अखाडा हो जायगी इसलिये भिक्षु सघको बुलाकर मैंने सबके साम्ने पिंडोल को डाँटा और उसके चन्दन के पात्र के टुकडे टुकडे करवा दिये।

मैंने तो लकडी के पात्र की इसलिये अनुज्ञा दी थी कि यह कीमती नहीं होता इसलिये भिक्षु का अपरिग्रह व्रत पलता रहता है। पर इस बहाने चन्दन के पात्र रक्खे जाने लगें तो धातु के पात्र भी इससे सस्ते होंगे और उनमें निष्परिग्रहता अधिक होगी अन्यथा इन भिक्षुओं की साधुता तो साँप की तरह चन्दन के पात्र से ही लिपटकर रह जायगी। इसलिये मैंने नियम कर दिया कि अब कोई भिक्षु लकडी के पात्र भी न रक्खे, धातु के पात्र भी न रक्खे सिर्फ लोहे के और मिट्टी के पात्र रक्खे।

मै सोचता था कि अपनी धर्मसस्था में कड़े नियम बनाकर अपनी धर्मसस्था को पवित्र रख सकूँगा पर देखता हूँ कि इससे काम नहीं चलता। कल राजा बिम्बसार मेरे पास आया और बोला- क्या आपने शिष्यों को चमत्कार बताने की मनाई की है ? इससे तो धर्मप्रचार में बडी बाधा पडेगी।

मैंने कहा-- चमत्कार (पाटिहारिय-प्रातिहार्य) से मनुष्य की वदमाशी का परिचय मिलता है धर्म का परिचय नहीं।

बिम्बसार-- यह ठीक है परन्तु जब तक दुनिया इस तत्त्व को नहीं समझती तब तक तो उसे उसी के रास्ते से खींचना पडेगा। अगर वह चमत्कार से सत्य को पाती है तो उसे उसी रास्ते से पाने देना चाहिये।

मैं-- राजन्, चमत्कार खुद इतना वडा असत्य है कि उसके घुसजाने पर और सत्य को जगह ही नहीं रह पाती। जो लोग ऐसे चमत्कार को नमस्कार करते हैं और समझते हैं कि हम सत्य को नमस्कार करते हैं वे लोग स्वय धोखा खाते हैं और दुनिया को भी धोखा देते हैं। चमत्कार तो एक कला है, छल है, इन्द्रजाल है, इसे कोई भी इन्द्रजालिया दिखला सकता है पर इन्द्रजालिया अर्हत् नहीं होता, अर्हत् होने के लिये आत्मशुद्धि की आवश्यकता है, इन्द्रजाल आदि चमत्कारों की नहीं।

बिम्बसार-- यह ठीक है भगवन्, पर आप के शिष्य तो चमत्कार बतलायेंगे नहीं और दूसरे लोग चमत्कार बतलायेंगे तब इस का परिणाम यह होगा कि जनता उन्हीं इन्द्रजालियों के चक्कर में फँस जायगी और आपके सत्यधर्म से विमुख हो जायगी।

मैं-- जनता सत्यधर्म से विमुख हो जाय तो इसका अर्थ इतना ही होगा कि सत्यधर्म का लाभ थोडेसे ही लोग उठा सकेंगे पर जनता सत्यधर्म में घुसकर सत्यधर्म का असत्यधर्म बनादे तो इस का फल यह होगा कि न तो वे थोडेसे लोग ही सत्यधर्म

को पासकेंगे न बाकी जनता पासकेगी । जब पानेयोग्य वस्तु ही न रह जायगी तब उसका पाना क्या और न पाना क्या ?

बिंबसार-- भगवन्, जनता को इन चमत्कारों के मोह से हटाने के लिये तो कोई चमत्कार होना चाहिये । कम से कम आप जनता को चमत्कारों की निःसारता तो समझाइये जिससे लोग ढोंगियों के जाल में न फँसें ।

मैं-- हा, इसके लिये तुम लोगों को एकत्र करो । घोषणा करादो कि मैं यमक प्रातिहार्य बतलाऊगा ।

जब सब लोग इकट्ठे हुए तब मैंने उनसे पूछा– तुम लोगों ने क्या कभी दूसरे प्रतिहार्य चमत्कार देखे हैं ।

एक ने कहा– भगवन्, एक बार एक अर्हत् यहॉ आये थे वे एक ऐसा दीपक जलाते थे जिसके बीच मे से जलधारा प्रगट होती थी । इस प्रकार आग और पानी का मेल देखकर हम लोग चकित हो गये ।

मै– और तुम लोग इसीलिये उन्हे अर्हत् मानते थे ?

वह– जी हॉ ।

मैं– पर बादलों मे जो बिजली चमकती है वह तो दीपक मे से निकलती हुई जलधारा से भी बढकर चमत्कार है ।

वह– पर वह तो ईश्वरीय चमत्कार है, जो आदमी ईश्वरीय चमत्कार को अपने हाथों से करके दिखा सकता है वह कोई सिद्ध पुरुष तो होना ही चाहिये ।

मैं– तुम्हारी पत्नी कभी गरम पानी कर सकती है या नहीं ?

वह– कर सकती है।

मैं– वह पानी तुम्हारे हाथ पर डाला जाय तो तुम्हारा हाथ जलेगा या नहीं ?

वह– जलेगा।

मैं– वही गरम पानी अगर आग पर डाला जाय तो आग बुझेगी या नहीं ?

वह– बुझेगी।

मैं—देखो, यह कितना बडा चमत्कार है एक ही चीज़ जलाती भी है और बुझाती भी है। और यह चमत्कार तुम्हारी पत्नी पैदा कर सकती है इसलिये तुम अपनी पत्नी को अर्हत् मानते हो कि नहीं ?

सब हँसने लगे।

मैं—क्यों, हँसते क्यों हो ? तुम्हारी पत्नी भी तो ईश्वरीय चमत्कार को अपने हाथ से कर दिखलाती है तब तुम्हारे नियम के अनुसार वह अर्हत क्यों नहीं ?

वह—इस तरह पानी गरम करने से क्या कोई अर्हत् होता है ? यह तो साधारण बात है।

मैं— तब दीपक में से जलधारा निकालनेवाला अर्हत् कैसे हो जायगा ? तुमने फव्वारा निकलना तो देखा है। अगर फव्वारे के समान छोटीसी नलीके चारों तरफ बत्ती लगाई जाय और खूब तेल भर दिया जाय तो दीपक जलेगा और दीपक के बीच में जो नली है उसमें से पानी भी आता रहेगा, इसमें आश्चर्य क्या है ?

वह—भगवन्, हम लोग नहीं समझते इसलिये हमें आश्चर्य होता है।

मैं– यह ठीक है कि तुम दुनिया भर की बातें नहीं समझ सकते पर इतना तो समझ सकते हो कि इस जगतमें एक से एक बढ़कर आश्चर्य भरे हुए हैं। कोई काम प्रकृति के नियम को तोड़कर नहीं हो सकता, किसी नियम को समझ कर अगर कोई चमत्कार दिखाये तो इस से वह चतुर खिलाड़ी कहा जायगा अर्हत् नहीं। भौतिक बातों के खेल दिखाने से कोई अर्हत् नहीं हो जाता। अर्हत् के चमत्कार आध्यात्मिक होते हैं।

वह– आध्यात्मिक चमत्कार कैसे?

मैं– जैसे तुम आग और पानी को एक साथ रखने को चमत्कार कहते हो उसी प्रकार जो शत्रु और मित्र दोनों को एक साथ रख सकता है - समभाव रख सकता है वह भी चमत्कार है। कोई अगर तुम्हारी भलाई करे और कोई तुम्हारी बुराई करे तो क्या तुम उन दोनों पर समभाव रख सकोगे?

वह– नहीं।

मैं-- जिस आदमी ने दीपक में से जलधारा दिखलाई थी वह ऐसा समभाव रख सकता था?

वह-- नहीं। बल्कि एक आदमी ने सिर्फ इतना कहा था कि तुमने भीतर जल संग्रह कर रक्खा है जिसमें से यह पानी आता है तो वह उसपर खूब क्रुद्ध हुआ था और उसे अविश्वासी नास्तिक कहकर निकलवा दिया था। वह सम-भावी बिलकुल न था।

मैं– बस, तो अब तुम समझ गये कि आग पानी को एक जगह दिखलाना सरल है पर शत्रु-मित्र को दिल मे एक समान विठलाना अर्थात् उनके साथ निष्पक्ष व्यवहार करना कठिन है। शत्रु मित्र पर एक सरीखा भाव रखना ही यमक प्रतिहार्य है। जो यह यमक प्रतिहार्य दिखा सकता है वही अर्हत् है! तुम लोगों को चाहिये कि तम इन्द्रजालियों के पुजारी न बनो पर जो लोग सबके साथ समभाव रखते है, शत्रु-मित्र ऊच-नीच, धनी-गरीब आदि सबकी भलाई चाहते हैं वे ही सच्चे अर्हत् हैं! उन्हीं की तम्हें पूजा करना चाहिये!

(१६)

ऐसा मालुम होता है कि दुनिया में दण्ड की आवश्यकता सदा रहेगी! इस संघ में आकर मेरे निरन्तर उपदेश पाकर भी बहुत स भिक्षु ऐसे लड़ाकू और घोर अहकारी हैं कि वे विनय अविनय को भूलकर मेरे सामने भी मुँह बजाने लगते है। कुछ भिक्षु ऐसे हैं कि अगर उन्हें किसी बुराई से रोकने जाओ तो वे बुराई का ही समर्थन करने लगेंगे भले ही टोकने के पहिले वे उस बुराई को बुराई समझते रहे हों। 'बस, बस समझ गया, समझ गया' कहकर उस बात को टाल देंगे यद्यपि वे समझेंगे खाक नहीं। फिर भूल होने पर कह बैठेंगे हमें क्या मालूम था? समझाने जाओ तो पूरी बात सुने बिना 'समझ गये, समझ गये' कहकर भागना चाहते हैं, समझाये जाने में अपमान का अनुभव करते हैं, जो मुँह पर आता है बोल बैठते हैं, समझाना बन्द कर दो तो मन-चाही भूल करके कहते है, हमें क्या मालूम?

कभी शब्दों से विनय प्रगट करते हैं पर स्वर से महान् अविनय प्रगट करते हैं, मुँह बिगाडते हैं कभी दिल नहीं खोलते । जो किसी के सामने अपना दिल नहीं खोल सकता वह किसी से अपना सुधार कराना चाहे तो यह असम्भव है । न उसका मन पवित्र हो सकता है न वह निर्भय बन सकता है न विश्वसनीय हो सकता है । ऐसे लोग कितने भी वाचाल हो जायें पर अन्त में समाज से दुतकारे जाते हैं ।

आज वे कौशाम्बी के लडाकू भिक्षु आये उस दिन मैंने कितना समझाया पर न माने और एक छोटीसी बात को लेकर संघ के गौरव को धक्का लगाया ।

एक भिक्षु शौच के लिये गया तो पात्र मे पानी छोड आया । दूसरे भिक्षु ने कहा कि इस प्रकार पानी छोडना न चाहिये । सीधीसी बात थी व्यवहार की इस गल्ती को स्वीकार करलेना चाहिये था पर किसी की सीधी सूचना को स्वीकार करले तो भिक्षु कैसे ? बस उसने इसीपर वाद छेड दिया । जगत तो क्षणिक है इस मे पवित्र क्या और अपवित्र क्या इसीपर व्याख्यान चलने लगा । ये अतिवादी मूर्ख नहीं समझते कि जीवन मे बुद्धि और भावुकता का समन्वय करना पडता है, इस नासमझी का परिणाम यह हुआ कि इन भिक्षुओं में दलबन्दी हो गई और दोनों दल आपस में खूब लडने लगे । मेरे पास समाचार आया तो मै समझाने गया । पर वे बोले-- आप धर्मस्वामी है तो आराम से रहे हमारे बीच में न पडें हम स्वयं निपट लेंगे ।

उन की यह उद्दडता देखकर मुझे आश्चर्य तो हुआ पर जगत् का स्वरूप विचार करके मैंने मनको सान्त्वना दी।

उन को समझाना वृथा था। बहुत से प्राणी ऐसे होते हैं कि वे ठोकर खाकर ही ठिकाने आते हैं इसके पहिले उन्हें समझाओ तो वे नहीं समझते। समझने की पात्रता जब तक न आजाये तब तक समझाना वृथा है इतना ही नहीं बल्कि ऐसे लोगों को समझाने से उन की जड़ता बढ़ती है अथवा वे वक्रजड़ हो जाते हैं। इसीलिये मैंने उन्हें न समझाया। इतना ही नहीं मै उन्हें लडते झगटते छोडकर कौशाम्बी से चला आया।

मेरे चले आने पर कौशाम्बी के उपासकों को बहुत बुरा लगा। उनने भिक्षुओं के पास आना जाना बन्द कर दिया, मिलना जुलना बन्द कर दिया, भिक्षा देना भी बन्द कर दिया, तब इन की अक्ल ठिकाने आई। और अब अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये ये कौशाम्बी से श्रावस्ती तक मेरे पास दौडे आरहे हैं।

मैं सोचता हूँ जब इन गृहत्यागी भिक्षुओं को भी नीतिपर चलाने के लिये इतनी कडाई की आवश्यकता है तब साधारण जनता का तो कहना ही क्या है इससे कहना पडता है कि उपदेश और दड दोनों की आवश्यकता है।

पर दड पशुताकी निशानी है। मनुष्य और पशु में मुख्य अन्तर है तो यही है कि मनुष्य बुराई को स्वय समझता है या सकेतमात्र में समझता है और दूर करता है जब कि पशु

समझता तो है नहीं, विवश हो कर दूर रहता है या उसे रहना पड़ता है। कौशाम्बी के भिक्षुओं का पश्चात्ताप ऐसा ही है।

अब वे बहुत पश्चात्ताप करके भी उसके वास्तविक फल से वञ्चित रहेंगे, पहिले वे थोडे पश्चात्ताप से भी इससे असख्यगुणा फल पासकते थे, मेरा स्नेह और जनता की भक्ति सम्पादन कर सकते थे।

इसमे सन्देह नहीं-मन का असयम परलोक में ही नहीं इसी लोक में भी फल देता है।

इस घटना से एक बात यह भी मालूम होती है कि उपासक वर्ग अगर विवेकी हो तो भिक्षु सघ में विकार आना कठिन हो जाता है। मेरा भिक्षु सघ तब तक सच्चा भिक्षुसघ रहेगा जब तक उपासक वर्ग कौशाम्बी के उपासक वर्ग की तरह विवेकी रहेगा।

(१७)

आज कुछ दम्पति मेरे पास आये और प्रणाम करके उनने कुछ चर्चा करनी चाही। तब मैंने पूछा—आप लोग किस जाति के दम्पति हैं ?

उनमें से कोई बोले— हम ब्राह्मण है, कोई बोले— हम क्षत्रिय है, कोई बोले-- हम वैश्य है, कोई बोले-- हम शूद्र है।

मैंने कहा—ये मनुष्य के भेद नहीं हैं, ये जीविका के भेद हैं। इनमे किसी का अच्छापन बुरापन या पात्रता अपात्रता का पता नहीं लगता। दम्पति के विषय मे यह देखना चाहिये कि शब-

दम्पति कौन है ? शवपतिक दम्पति कौन है ? शवपत्नीक दम्पति कौन है ? और जीवित दम्पति कौन है ?

उनने कहा— इन भेदों का क्या अर्थ है भन्ते !

मैं—देखो, जहाँ पति-पत्नी दोनों दुराचारी संयमहीन, कलहप्रिय और आलसी हैं वह शव-दम्पति है, जिसमें पति तो दुराचारी आदि है और पत्नी सदाचारिणी शांत कर्मठ है वह शव-पतिक दम्पति है क्योंकि इसमें पति शव रूप अर्थात् मुर्दा है पत्नी जीवित है, जिसमें पत्नी दुराचारिणी आदि है और पति सदाचारी होता है वह शवपत्नीक दम्पति है, जिसमें दोनों सदाचारी कर्मठ आदि हैं वह जीवित दम्पति या दिव्य दम्पति है।

वे बोले- भन्ते, तब तो हम लोग शवदम्पति हैं, आशीर्वाद दीजिए कि हम सब जीवित दम्पति बनें।

आशीर्वाद तो मैंने दे दिया, पर क्या आशीर्वाद से ही मुर्दे जिन्दे बन सकते हैं ? जीवन तो स्वहित परहित के समन्वय से बनता है।

(१८)

[१] जिस ब्राह्मण ने इस नगर में आने के लिये निमन्त्रण दिया था उसका अब मुँह भी नहीं दिखाई देता। भोजन के अभाव में भिक्षु-संघ की काफ़ी दुर्दशा हुई है। इस नगर में भिक्षुओं को कोई भिक्षा तक नहीं देता। भिक्षु घुड़सार में जाकर घोड़ों का दाना लाते हैं और ऊखल में कूट कूट कर खाते हैं, मेरे लिए भी आनन्द थोड़े से दाने कूट देता है। मैं तो संतुष्ट हूँ पर ये भिक्षु भी असन्तुष्ट नहीं हैं।

यह विपत्ति किसी भी कारण आई हो पर इसका फल अच्छा है, भिक्षुओं की अच्छी परीक्षा हो रही है। ऐसे अवसर पर जो भिक्षु सघ मे टिकेंगे वे ही कुछ अपनी और दुनिया की भलाई कर जायँगे। विपत्ति ही तो मनुष्य की सच्चाई की कसौटी है। पीछे तो एक दिन ऐसा आयगा जब इन भिक्षुओ को राजाओं से भी बढ कर भोजन मिलेगा, पर उस समय तो ये मोघ पुरुष (हरामखोर) हो जायेंगे। आज जो भिक्षु अनाज कूट कूट कर खा रहे हैं, वे ही सघ की जड को गहराई तक पहुँचा रहे है, वे अमर होंगे और उनसे सघ अमर होगा।

प्रसन्नता की बात यह है कि इस विपत्ति से भिक्षु दु खी नहीं हैं, अगर दु । मे दुःखी हो जाय तो वह भिक्षु कैसा? सेवक कैसा? इस कसौटी में से हर एक सेवक को पार होना ही पडता है। जगत् सचाई को जल्दी नहीं पहिचानता, जीवन में अगर वह किसी को पहिचान ले तो समझो जल्दी पहिचान लिया, नहीं तो साधारणत वह मरने के बाद ही सच्चे सेवक को अच्छी तरह पहिचान पाता है। दुनिया का एक बँधा हुआ माप होता है पर क्रातिकारी उस माप को ही बदलना चाहता है। पहिले पहिले दुनिया उसे अनुत्तीर्ण समझती है बाद में जब वह क्रातिकारी के माप को मान लेती है तब उसे स्वीकार करती है तब वह क्रान्तिकारी सेवक जीवित हो या मर चुका हो दुनिया उसे पूजती है। मेरे सघ की भी यही हालत होगी, अभी वह दुनिया के माप में अनुत्तीर्ण हो रहा है। जो इस समय टिके हुए हैं जिन्हें सहन करने का मजा आ रहा है, उन्हीं की कमाई पर आगे की दुनिया अमरफल चखेगी।

२-कल की चिन्ता आज शान्त हो गई। वह वैरंजक ब्राह्मण आज आया और आते ही उसने शिकायत की कि इस नगर के जो वृद्ध ब्राह्मण–अच्छे अच्छे विद्वान–आपके पास आते हैं उन्हें आप नमस्कार क्यों नहीं करते ? उनके लिये उठ कर खड़े क्यों नहीं होते ?

उसकी शिकायत सुनकर मैं समझा कि शायद इसीलिये वेरजा में मेरे सघ के विरोध का आन्दोलन किया गया है और इसी से सघ को भिक्षा नहीं मिलती है। ब्राह्मणों की महत्ता को धक्का लगा है और उन्हीं ने जनता को मेरे सघ पर उपेक्षा करने के लिये तैयार किया है।

खैर, मनकी इस बात को दबाकर मैंने उस ब्राह्मण से पूछा– तुम मुझ से अभिवादन करने के लिये क्यों कहते हो ?

क्योंकि ब्राह्मण आपसे ज्येष्ठ हैं।

किस बात मे ज्येष्ठ हैं ?

और किसी बात में ज्येष्ठ हों या न हो पर उम्र में तो ज्येष्ठ हैं।

देखो, एक मुर्गी के बहुत से अंडे हैं जो अच्छी तरह सेवित हैं, उनमें से एक अडा फूटा और उसका बच्चा बाहर निकल आया तो वह बच्चा बाकी अडों की अपेक्षा ज्येष्ठ होगा या कनिष्ठ ?

ज्येष्ठ होगा।

तो बस, जो लोग अविद्या के बन्धन में बँधे हैं उनकी अपेक्षा वह ज्येष्ठ है जो अविद्या के अडे को फोडकर बाहर निकल आया है। ब्राह्मण, अब तुम समझे कि मैं उन्हें क्यों अभिवादन नहीं करता हूँ ?

समझ गया भंते। अब मुझे क्षमा करें, और संघ सहित आपका मेरे यहा निमन्त्रण है सो आप स्वीकार करें।

मैंने निमन्त्रण स्वीकार किया और ब्राह्मण चला गया। जगत् में आज कहीं धनकी पूजा है कहीं जाति की पूजा है कहीं अधिकार और पशुबल की पूजा है पर सत्य और संयम की पूजा नहीं है। दुनिया अभिमान-वश अज्ञान-वश सत्य और सयम को जाति के आगे या धन या अधिकार के आगे झुकाना चाहती है पर मै ऐसा नहीं करने देना चाहता हूँ, इसे दुनिया मेरा अहकार समझती हे दुनिया के इस भोलपन पर मुझे दया आती है।

[१९]

आज श्रावस्ती में आये हुए पाँच सौ ब्राह्मणो ने अश्वलायन को अपना प्रतिनिधि बनाकर वाद-विवाद के लिये भेजा। मैं चारो वर्णों की शुद्धि करता हूँ—इसी पर उन्हें आपत्ति थी। अश्वलायन ने आकर मुझ से कहा—

ब्राह्मण ही श्रेष्ठ है, वे ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, वे अन्य वर्णो से अलग है, उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता।

मैंने कहा—ब्राह्मणों की स्त्रियाँ भी अन्य स्त्रियो की तरह ऋतुमती होती हैं उसी तरह सन्तान प्रसव करती है फिर ब्राह्मणों में क्या विशेषता है?

यह ठीक है, फिर भी ब्राह्मण जैसे स्वर्ग के अधिकारी हैं वैसे दूसरे नहीं।

तो क्या अश्वलायन, तुम यह समझते हो कि चोरी, झूठ,

व्यभिचार हत्या आदि से जिस प्रकार दूसरे वर्ण के लोग नरक जाते है उस प्रकार ब्राह्मण न जायेंगे ?

नहीं, ऐसी बात तो नहीं है गौतम, पापी ब्राह्मण भी उसी तरह नरक जायेंगे। इस दृष्टि से ब्राह्मण में विशेषता नहीं है पर इतनी बात अधिक है कि वह धर्मात्मा अधिक होता है।

अच्छा तो अश्वलायन, क्या तुम यह समझते हो कि हत्या, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदि का त्याग ब्राह्मण ही करता है दूसरा नहीं ?

यह बात भी नहीं है गौतम, त्याग तो सभी करते है फिर भी ब्राह्मण-सन्तान में जो वंश परम्परा से विशेषता है वह दूसरे मे नहीं है।

अच्छा, जैसे घोड़ी और गदहे के सम्बन्ध से खच्चर पैदा होता है उसी प्रकार ब्राह्मणी तथा ब्राह्मणेतर के सम्बन्ध से कोई अलग जाति का प्राणी पैदा होगा ?

यह बात भी नहीं है गौतम, ऐसा कोई अन्तर न होगा पर संस्कार-विधि का अन्तर तो रहता है।

अच्छा, एक ब्राह्मण ऐसा है जिसकी उपनयन आदि संस्कार-विधि हुई है पर वह दुराचारी है पापी है और एक आदमी का उपनयन संस्कार नहीं हुआ है पर वह सदाचारी और पुण्यात्मा है तब तुम किसे महत्व दोगे, ब्राह्मण !

सो तो सदाचारी पुण्यात्मा को ही महत्व देना होगा।

अब सोचो मेरी चतुर्वर्णी शुद्धि में और तुम्हारे कहने मे क्या अन्तर रहा। आचार से ही मनुष्य की शुद्धि–अशुद्धि का पता लगता है अन्यथा कोई देखने जाता है कि मेरी माता का सम्बन्ध

किससे हुआ या मातामही आदि मान पीढ़ियों में कभी किसी का सम्बन्ध दूसरे से नहीं हुआ ?

नहीं भन्ते, कोई नहीं जानता ।

तब फिर वंशपरम्परा का अभिमान क्यों ? तब तो सभी की शुद्धि करना चाहिये, जो शुद्ध हो जाय वही अच्छा ।

मानता हूँ भन्ते, अब आप मुझे अपना उपासक समझें ।

अश्वलायन चला गया, इसमें सन्देह नहीं—अश्वलायन में शुद्ध जिज्ञासा थी इसलिए वह सत्य को समझ सका ।

[२०]

आज मैं राजगृह में भिक्षा के लिये गया तो मैंने देखा कि एक गृहस्थ गीले कपडे पहिने हुए पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ऊपर नीचे सब दिशाओ को नमस्कार कर रहा था । बेचारा खुद भी नहीं समझता था कि दिशा पूजन क्यो किया जाता है, बापदादों की रीति मानकर पूजन कर रहा था । इस प्रकार के अर्थशून्य क्रियाकाड मनुष्य की शक्ति व्यर्थ नष्ट करते हैं बल्कि इनसे धर्म के विषय में वृथा सतोष होता है । धर्म तो कुछ होता नहीं है और लोग समझ लेते हैं कि हमने धर्म किया । इसकी अपेक्षा यह अच्छा है कि लोग यह सब कुछ न करें, कम से कम उन्हे इतना भान तो होता रहेगा कि हम धर्म नहीं कर पाते । धर्म के नामपर व्यर्थ के क्रियाकाड से लाभ तो कुछ होता नहीं, साथ ही उसके भरोसे पाप को उत्तेजन मिलने लगता है । लेकिन अगर लोगों से यह कहा जाय कि इसमें कुछ लाभ नहीं है इसलिये तुम छोड दो तो वह

अच्छी से अच्छी और सीधी से सीधी बात भी न समझेंगे, समझकर भी पसन्द न करेंगे इसलिये मैंने उसे समझाने के लिये दूसरा ढंग निकाला।

मैंने उससे कहा— तुम छः दिशाओं की पूजा किसलिये करते हो?

उसने कहा--मैं यह तो नहीं जानता, भन्ते!

बिना जाने पूजा से क्या फायदा होगा?

भन्ते, आपही बतलायें कि दिशाओं की पूजा क्यों करना चाहिये?

देखो, पहिले दिशाओं का अर्थ समझलो। जिन दिशाओं का तुम पूजन कर रहे हो वे वास्तव में दिशाएँ नहीं हैं, पूजा करने की दिशाएँ दूसरी होती हैं।

सो कौनसी, भन्ते!

गृहपति, मातापिता पूर्वदिशा हैं, आचार्य दक्षिण दिशा है, स्त्रीपुत्र पश्चिम दिशा हैं, मित्र वगैरह उत्तर दिशा हैं, नौकर चाकर नीची दिशा हैं, श्रमण ब्राह्मण ऊंची दिशा हैं, इन छः दिशाओं की पूजा करना चाहिये।

वह बोला— भन्ते, माता-पिता की पूजा तो ठीक है पर सेवकों की पूजा कैसे करूँ? सेवक तो मेरी ही पूजा करते हैं!

मैंने कहा— पूजा का अर्थ सिर्फ हाथ जोड़ना नहीं है किन्तु योग्य विनय प्रेम आदि के साथ उनका पालन पोषण रक्षण आदि है। नौकरों से तुम पूजा लेते हो सो लो, पर उसका ठीक ठीक बदला दो, उनके साथ वात्सल्य रखो—यही उनकी पूजा है।

इस प्रकार इन छः दिशाओं की पूजा करने से धर्म का पालन होता है।

उस गृहपति को मेरी बात बहुत पसन्द आई और उसने यह दिशा-पूजन छोड़ दिया, मेरे बताए हुए दिशा-पूजन को स्वीकार किया।

[२१]

आज मैं पिंडचार के लिये जब वस्ती में गया तब भिक्षा का समय न आया था इसलिये मैं उदायी परिव्राजक के यहा चला गया। वह बैठे बैठे कुछ गप्पें लडा रहा था। मेरे पहुँचते ही उसने 'भन्ते' कह कर स्वागत किया। मैंने पूछा--क्या बातें हो रही है, उदायी ?

उदायी बोला—यही चर्चा चल रही थी कि किसके शिष्य अपने गुरु का अधिक सन्मान करते हैं ? उसमें आपका भी नाम आया था। मेरा कहना था कि आपके शिष्य आपका बहुत सन्मान करते हैं।

यह कैसे जाना तुमने ?

भन्ते, एक दिन आप उपदेश दे रहे थे कि शिष्य को खाँसी आई, तब दूसरे शिष्य ने कहा भाई, खाँसो मत, चुपचाप सुनने दो, शास्ता उपदेश दे रहे हैं। इस प्रकार जब आप बोलते है तब कोई शिष्य इधर उधर देखता भी नहीं है बिलकुल निःशब्द होकर एकाग्रचित्त से आपकी बात सुनता है। यहा तक देखा गया है कि कोई शिष्य सब छोड़कर गृहस्थ भी हो जाता है तो आपकी

तारीफ करता रहता है, संघ में न रह सकने के कारण अपनी निन्दा करता है। इससे मैं समझता हूं कि आपके शिष्य आपका बहुत गौरव करते हैं। इसीसे आपके शिष्य आपके पास से बहुत कुछ सीखकर विद्वान विवेकी और संयमी बन सके हैं। आपका आदर करके उनने बहुत लाभ उठाया है।

मैंने पूछा--उदायी, इस पूज्यता का कारण तुम क्या समझते हो?

उदायी बोला--इसके मैं पाँच कारण समझता हूं। पहिली बात तो यह कि आप बहुत थोडा खाते हैं, दूसरी बात यह कि आप सादा कपडा पहिनते हैं, तीसरी बात यह कि आप सादा भोजन करते हैं, चौथी बात यह कि आप मामूली आसन पर सो जाते हैं, पाँचवीं बात यह कि आप एकान्त में रहते हैं।

मैंने कहा--उदायी, इन गुणों से कोई आदमी महान नहीं बनता, दभी लोग इन बातो में खूब बढ सकते हैं। मेरे बहुत से शिष्य मेरी अपेक्षा अधिक अल्पाहारी है। मेरी अपेक्षा खराब कपडा पहिनते है खराब और रूखा भोजन करते हैं वस्त्र पहिनते हैं, झाड के नीचे जमीन पर सो जाते हैं, गुफाओं में अकेले पडे रहते हैं वे सिर्फ आलोचना के लिये संघ में आते है। इन सब बातो में मेरे शिष्य मुझ से बहुत बढ जाते हैं इसलिये इन बातों के कारण वे मुझे क्यों पूजेंगे। इन बातों से कोई मनुष्य पूज्य आदरणीय नहीं होता। दुनिया ऐसी ही बातों से लोगों को पूज्य मान लेती है इसलिये जगत् में दंभियों की संख्या बढती हैं और सच्चे साधु सच्चे सेवक--दुर्लभ हो जाते हैं। लोगों में यह अविवेक जितना कम होगा जगत में सच्चे साधु उतने अधिक होंगे।

उदायी—भन्ते, अगर इन बातों से मनुष्य पूज्य नहीं बनता और आप भी पूज्य नहीं हैं तो वे कौन से कारण हैं जिनसे आप पूज्य हैं।

मैंने कहा—उदायी, वे कारण दूसरे ही हैं जिससे मेरे शिष्य मुझे पूज्य समझते हैं। पहिला कारण तो यह है कि मैं शीलवान अर्थात् सयमी हूँ, अपनी मनोवृत्तियों पर अकुश रखता हू, विश्वहित के अनुकूल काम करता हू, विश्वहित का नाश नहीं करता हूँ। दूसरी बात यह है कि जो कुछ मैं कहता हू अनुभव से कहता हू, इधर उधर से सुनकर विना अनुभव किये कोई बात नहीं कहता। तीसरी बात यह है कि हर एक बात के परिणाम और भविष्य का खयाल रखता हू इसलिये मेरी बात का खण्डन नहीं हो पाता है। चौथी बात यह हैकि मैंने शिष्यों के ऊपर व्यर्थ ज्ञान का बोझ नहीं लादा है। मैंने दुःख का स्वरूप, उसका कारण, दु.ख का नाश और दुःख के नाश का रास्ता बताकर आदर्श और सुखमय जीवन बनाने का मार्ग बताया है। पाँचवीं यह कि मैंने उनके सामने ऐसा कार्यक्रम रक्खा है कि वे बडी सरलता से मार्ग में आगे बढते जाते हैं, कोई अर्हत् हो जाते हैं, कोई अच्छे साधक बन जाते हैं। ये पाच कारण हैं उदायी, जिससे मेरे शिष्य मुझे पूज्य समझते हैं। खाने पीने की बातों से नहीं। संयमी आदमी को खाने पीने की पर्वाह नहीं होती, न वह विलासी बनता है, न उनसे डरकर दूर भागता है। वह समभावी रहकर अच्छा बुरा जो मिलता है उसमें सन्तुष्ट रहता है। उसे प्रदर्शन की पर्वाह नहीं होती। इसीलिये मुझे प्रदर्शन की पर्वाह नहीं है। इन सब

बातों से मेरे शिष्य मुझे पूज्य समझते हैं। उदायी ने मेरी बातों का समर्थन किया।

[२२]

विवेक हीन आदमी के हाथ में कोई भी धर्म सुरक्षित नहीं है। वह अच्छी से अच्छी बात का ऐसा दुरुपयोग कर सकता है कि प्रलय मच जाय, जीवन की जगह मौत का नाच होने लगे।

उस दिन मैंने इन्द्रियों और शरीर की गुलामी से छूटने के लिये अशुभ भावना का उपदेश दिया था और इसलिये शरीर को घृणित बतलाया था कि लोग शारीरिक विषय भोगों में फँसकर कर्तव्य न भूल जायँ। शरीर की निःसारता व घृणितता का उपदेश भी इसीलिए दिया था।

उपदेश देकर मैं पन्द्रह दिन के एकान्तवास को चला गया। वहा से जब लौटा तब मालूम हुआ कि भिक्षुओं की संख्या बहुत कम है और जब उसके कारण का पता लगाया तब तो मैं काँप उठा।

भिक्षुओं ने शरीर को घृणित समझ कर शरीर को नष्ट करना शुरु कर दिया था। बहुतों ने आत्महत्या करली थी, जो आत्महत्या नहीं कर सके उनने दूसरे भिक्षुओ से मौत माँगी और उनके हाथ से अपना वध कराया था। एक भिक्षुने तो धर्म समझ कर भिक्षुहत्या को ही अपना कर्तव्य बना लिया। तलवार लेकर वह भिक्षुओं के पास जाता था और कहता था बोलो—किसे मारूँ? जो मरना चाहता था उसी का वह सिर उड़ा देता था। इस प्रकार पन्द्रह दिन में उसने कई सौ भिक्षु मार डाले। धर्म

के नाम पर इन मूढ़ अविवेकियों ने जितना पाप कमाया उतना बड़ा से बड़ा पापी न कमा पाता ।

(२३)

अहंकार के कारण मनुष्य अपना कितना नाश कर लेता है इसका कुछ ठिकाना नहीं । अहंकार वश लड़ते समय वह यह भी भूलजाता है कि मैं कौड़ी के लिये मुहर गमा रहा हूं ।

आज शाक्य और कोलिय आपस में लड़ रहे थे । नदी के बांध के पानी का झगड़ा था । दोनों अपने अपने खेतों मे पानी लेना चाहते थे और इसी बात पर एक दूसरे का खून बहा रहे थे मानों खून की कीमत पानी से कम हो ।

मैंने जाकर कहा कि कोई आदमी एक घड़ा पानी लाकर तुम से खून माँगे तो तुम कितना खून दोगे ।

दोनों ने कहा—पानी के बदले तो कोई खून का एक भी बूंद न देगा ।

मैंने कहा—तब तुम लोग पानी के लिये सैकड़ों आदमियों का खून क्यों बहा रहे हो ?

दोनों दल लज्जित हुए और लड़ाई बन्द हुई ।

(२४)

विश्वसेवा का दावा करना सरल है पर विश्वसेवा करना कठिन है, भिक्षु कुटुम्ब छोड़कर जगत् की सेवा करने के लिये आते हैं पर संघ में एक छोटा सा संसार बनाकर बैठ जाते हैं और उसके बाहर कोई मरता है या जीता है इसकी पर्वाह नहीं करते । आज

मेरे सघ में हजारों साधु हैं पर उनके सैंकड़ों जगत हैं, अपने जगत के बाहर किसी को किसी से मतलब नहीं, यह कैसी तुच्छता या क्षुद्रता है । ये लोग अगर ऐसे ही सकुचित बने रहे तो दुनिया के क्या काम आयेंगे इनकी साधुता बडी से बड़ी असाधुता बनकर दुनिया के लिये बोझ होजाएगी ।

आज मैं आनन्द के साथ विहार में घूम रहा था, घूमते २ मैं एक ऐसी जगह पहुँचा जहा एक भिक्षुक कूलता कराहता हुआ पडा था उसे पेट की बीमारी थी और कोई भी भिक्षुक उसकी परिचर्या के लिये नहीं था । उसका शरीर गन्दा हो गया था उसकी यह दशा देखकर मुझे बडा दु.ख हुआ और भिक्षुओं की स्वार्थ वृत्ति पर रोष भी आया । मैंने आनन्द के हाथ से पानी मँगवाया उसे स्नान कराया, साफ कपडे पहनाये और चारपाई पर बिठा दिया । इसके बाद मैंने भिक्षुओं को जोडा और समझाया " भिक्षुओ, तुम्हारे माता नहीं, पिता नहीं, और कोई भाई बन्धु नहीं, तुम अगर एक दूसरे की सेवा न करोगे तो कौन करेगा । जरा सोचो तो, तुम लोग दुनियाँ की सेवा के लिये घर से निकले थे अगर तुम भिक्षुओं की ही सेवा नहीं कर पाते तो फिर किसकी सेवा करोगे । याद रखो, ऐसे स्वार्थी बनकर तुम श्रमण या साधु नहीं कहला सकते ।

(२५)

आज मेरे पास कोशलराज प्रसेनजित बैठे हुये थे । उपदेशके बाद उनका एक नौकर आया और उसने कहा कि " मल्लिकादेवी को कन्या हुई है " । मल्लिकादेवी प्रसेनजित की

पत्नी थीं। कन्या-जन्म की बात सुनते ही प्रसेनजित का मुह फीका पड़ गया, लज्जा के मारे उसकी नज़र नीची हो गई, उसको खिन्न देखकर मैने कहा, राजन्, कन्याजन्म से इतने खिन्न क्यों होते हो, जैसे कोई पुरुष स्त्रियों से श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार कोई स्त्री भी पुरुषों से श्रेष्ठ होती है, आवश्यकता दोनों की है। अगर सभी के घरों में पुत्रों का ही जन्म होने लगे, जैसा कि लोग चाहते हैं, तो एक दो पीढ़ी में दुनिया में एक भी मनुष्य न रह जाय। मनुष्य जाति की रक्षा के लिये पुत्रजन्म जितना आवश्यक है पुत्रीजन्म उससे कम आवश्यक नहीं है बल्कि अधिक ही है। पुत्री का पालन करना पुत्रके पालन करने की अपेक्षा जगत की बडी सेवा है। इस सेवा का अवसर मिलने स तुम्हें अप्रसन्न, खिन्न या लज्जित नहीं होना चाहिये।

(२६)

आज राजा उदयन के पुत्र बोधि राजकुमारने अपने नये प्रासाद में मुझे निमन्त्रित किया। भोजन के बाद उसने पूछा-भन्ते, सुख सुख से नहीं मिल सकता, सुख दुख से मिलता है।

मैंने कहा—राजकुमार, पहिले मुझे भी ऐसा मालूम होता था इसलिये मैंने सुन्दर पत्नी राजवैभव आदि का त्याग किया था। आलारकालाम के पास जाकर मैंने साधना की फिर उद्रक राजपुत्र के पास गया, वहां भी मैंने साधना की, वहा मुझे सुख न मिला, तब मैंने और भी कष्ट उठाने की ठानी, मैं गर्मी सर्दी में श्वास रोककर अनेक कष्ट सहने लगा, निराहार रहने लगा, कभी कभी सिर्फ़ दाल का पानी लेने लगा, इससे मैं कमज़ोर हो गया उठते ही गिर पड़ता

था, बाल झडने लगे, शरीर काला हो गया, इतना कष्ट उठाकर भी मुझे सुख न मिला, तब मुझे मालूम हुआ कि विवेकहीन अनावश्यक कष्ट सहने से सुख नहीं मिलता, सुख के लिये संयम की जरूरत है दुःख की नहीं। कल्याण-साधना के मार्ग में अगर दुःख आ जाय तो सहना चाहिये पर व्यर्थ ही दुःख उठाने से कल्याण नहीं होता।

मेरी बात सुनकर राजकुमार को सन्तोष हुआ और उपासक बन गया।

लोग कैसे अतिवादी है, कभी वे सुख के लिये दुःख के पीछे पड जाते हैं कभी सुख के लिये सुख के पीछे पड़ जाते हैं, भूल से उचित सुख को भी पाप समझते हैं और कभी कभी आवश्यक कष्ट को भी नहीं सहना चाहते। विवेक से काम नहीं लेना चाहते। विवेकहीन दुःख से सुख मिलता होता तो सभी पशु आदि सुखी होते। आज यही तो हुआ है। लोग सुख के लिये दुःख देखना चाहते हैं इसलिये बहुत से लोग साधु का वेष बनाकर अनावश्यक दुःख भोग रहे हैं। विवेकहीन होने से भीतरी सुख तो उन्हें मिल ही नहीं पाता और बाहरी सुख को हर हालत में पाप समझते हैं इस प्रकार धर्म के नामपर दुःख ही दुःख दिखाई देता है। इसी पाप को दूर करने के लिये मैंने मध्यम मार्ग निकाला है।

२७ देव-दत्त

नीति की कठिनाइयों को उसके जमाने के लोग नहीं समझते। एक धर्म-संस्था की स्थापना करने में और उसके संचालन

मे कितने अनुभव, मे लिक ज्ञान, असीम सयम, निराशा पर म. विजय करने की शक्ति, असाधारण मनोवैज्ञानिकता, निष्पक्षता आर निस्व-र्थता होती है उसे बहुत ही कम लोग समझ पाते है । वरसो की तपस्या के बाद जब कुछ सफलता मिलती है तब उसके बहुत से अनुयायी उस सफलता को ही देख पाते है किन्तु उसके मूल मे जो असाधारण मौलिकता योग्यता और गुण छिपे रहते हैं उनकी तरफ उनका ध्यान नहीं जाता । वे उस सफलता की दुर्लभता न समझकर या तो नकल करने के लिये उतारू हो जाते है या उस सफलता को ही छीन लेना चाहते है । इस प्रकार ये मुफ्तखोर लुटेरे बन कर अपना पतन तो करते ही है साथ ही और भी सैकडो को ले डूबते है । वे चाहते तो हैं तीर्थकरत्व आर गुरुत्व, पर अपनी छोटी सी साधुता भी खो बैठते हैं, साधु संस्था को भी तहस नहस कर देते हैं ।

साधुसस्था में आकर जब साधुता नष्ट हो जाती है, मनुष्य स्वपरकल्याण के लिये नहीं किन्तु अहकार की पूजा के लिए जब आतुर हो जाता है, तब वह ससार का भयकर से भयकर प्राणी हो जाता है । देवदत्त ऐसे ही भयकर प्राणियों मे से है । नाममोह के कारण उसका जैसा पतन हो गया है उसका मुझे पता है, और 'मुझे पता है' इस बात को वह भी समझता है । पर नाम-मोहान्धता से उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, साधारण व्यावहारिकता की भी समझदारी उसमें नहीं है । वह यह भी नहीं समझता कि कौनसी चीज मॉगना चाहिये, कौन सी नहीं, बहुत सी चीजें

मागन से भी दुर्लभ हो जाती है, सच्चे यश आदर पूज्यता आदि ऐसी ही चीजें हैं।

देवदत्त का दिनरात यही स्वप्न है कि मेरे समान पूज्यता उसे कैसे मिल जाय। मैंने जगत् को क्या दिया है और मुझे कितना त्याग करना पड़ा है इसकी तरफ उसका ध्यान नहीं है। एक कायर की तरह वह बाप की कमाई जल्दी से जल्दी हड़प लेना चाहता है।

उसदिन उसने मुझसे कहा—भन्ते, आप बूढ़े हो गये हैं इसलिये आराम करें और संघ का सञ्चालक मुझे बनादें

मैंने कहा—भाई, यह बात तो मेरे सोचने की है कि संघ का सञ्चालक किसे बनाऊं? जो संघ का संचालक हो सकेगा उसमें इतनी गम्भीरता अवश्य होगी कि वह अपने मुँह से सञ्चालकत्व न मांगे।

मेरी बात सुनकर देवदत्त क्रुद्ध और लज्जित होकर चुप हो गया। थोड़ी देर चुप रहकर बोला—भन्ते, मैं संघ का कितना खयाल रखता हूं, हर एक आदमी पर कितनी नजर रखता हूं इस पर आप ध्यान नहीं देते।

मैं—ठीक है इसीलिये संघ का भार तेरे ऊपर नहीं सौंपता। तेरा मुख्य ध्यान यह है कि कोई भिक्षु मेरा प्रेमपात्र न बन जावे, किसी की किसी योग्यता या श्रद्धा का मुझे पता न लग जावे। संघ का नियंता बन कर तेरे ढंग से तूने पाया सभी भिक्षुओं की भाजायत मुझे तुर्की है उधर बड़े ढंग से तूने भिक्षुओं के मन में

मेरे विषय में अश्रद्धा पैदा की है, इसमे कितने ही लोग जो श्र
श्रद्धा के साथ भिक्षुसघ मे शामिल हुए थे तेरी बातों से-चाल
बाज़ियों से-अश्रद्धालु होकर चले गये, गृहस्थ हो गये। मेरे
रहते और तेरे हाथ मे कुछ अधिकार न रहते तो सघ की
यह दुर्दशा कर दी है, अनेक राजाओ को तूने अश्रद्धालु बना
दिया है, तुझे सघ सौंप देने पर तो सघ नष्ट ही हो जायगा।
तेरी ऐसी कोई भी चाल नहीं है जो मुझ से छिपी हो, तेरी जिस
चालबाजी का तुझे भी पता न होगा उसका मुझे पता है। तूने
समझा होगा कि तूने मुझे ठग लिया है पर सच तो यह है कि
तू ही ठगा गया है। अगर तुझमें यह चालबाजी न होती, ईमानदारी
होती तो बहुत सम्भव था कि तुझे ही सघ का सञ्चालकत्व मिलता
पर तेरी ईर्ष्या ने, कृतघ्नता ने नाममोह और यश की लूटने तुझे
बर्बाद कर दिया। अभी तो तुझे भिक्षु बनने के लिये भी बहुत
कुछ आत्मशुद्धि की जरूरत है।

देवदत्त ने जब समझ लिया कि भगवान तो मेरे भीतर से
भीतर के पर्दे की बात जानते हैं तब निराश दु:खी क्रुद्ध और शत्रु
बनकर चल गया।

वह जाकर अजातशत्रु से मिला, मेरी हत्या करने के प्रयत्न
कराये पर सभी छल उसके व्यर्थ हो गये अन्त में छिपकर उसने
मेरे ऊपर पहाड पर से पत्थर लुडकाया, वह पत्थर तो न लगा पर
दूसरी शिला से टकराकर उसका टुकडा बडे जोर से लगा जिससे
पैर लोहूलुहान हो गया। नाममोह से मनुष्य कितना नीच बन
सकता है इसका उदाहरण यह देवदत्त है।

इसके बाद उसने जो चाल चली है वह तो और भी गजब की है। उस दिन सभा में आकर उसने सब के सामने कहा—भन्ते, आप नियम कर दीजिये कि भिक्षु किसी का निमन्त्रण स्वीकार न करें, और सब भिक्षु जगल में ही रहा करें और चिथडे ही पहना करें आदि, इससे भिक्षु निःसग वीतराग और निर्मलचरित्र रहेंगे।

देवदत्त अहकारवश यह साबित करना चाहता है कि सघ की निर्मलता के बारे में वह मुझसे अधिक सतर्क है और मेरेसे अधिक समझदार है। पापी मार लोगों को इसी तरह फँसाता है देवदत्त मार के चक्कर में आगया। वह मूर्ख नहीं समझता कि असयम को जगल और चिथडे नहीं रोकसकते। जगलमें भी रहने वाले भिक्षु समाज के लिये बोझा होजायेंगे। कभीकभी निमन्त्रण न स्वीकार करने से लोगों की परेशानी ही बढायेंगे जैसा कि किसी किसी निगठ साधु के द्वारा बढजाती है। पर देवदत्त को इन बातों से क्या मतलब, उसे तो अपना धर्मात्मापन बताना है और साबित करना है कि वह आचार्य बनने के योग्य है। अथवा अपना जुदा सघ बनाकर तीर्थंकर कहलाना है इसलिये वह मतभेद का बहाना ढूंढ रहा है, अन्यथा वह निमन्त्रण में न जाय, या जगलमें रहे या चिथडे ही पहिने तो उसे कौन मना करता है? पर उसे तो अपना सघ बनाना है, मेरी कमाई लूटकर धनवान कहाना है, अपनी पूजा कराना है, अपने को तीर्थंकर घोषित करना है। पर इन प्रकार के छलों से क्या कोई तीर्थंकर बन सकता है? लोगों को धोखा देकर चार दिन कोई तीर्थंकर कहला भी जाय, पर

अन्त में तो पोल खुल ही जाती है, उसके नाममोह पर लोग थूकते ही हैं इस प्रकार वह साधारण भिक्षु भी नहीं रहता।

देवदत्त ऐसा ही पतन कर रहा है। मतभेद और धर्मात्मापन की ओट में उसने पाँचसौ अनुयायी बना लिये थे पर अन्त में सब निकल गये। अब वह अकेला रह गया है। पापी मार ने इस देवदत्त का किस बुरी तरह से शिकार किया इसका थोडा खेद होता है।

मनुष्य ईमानदारी छोडकर जब स्वार्थवश दुनिया को ठगना चाहता है तब वह खुद ही किस तरह ठगा जाता है इसका उदाहरण दवदेत्त है।

२८ महानिर्वाण

सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के चले जाते ही भिक्षुसंघ सूना सूना मालूम हो रहा है। मेरा शरीर भी अब नाशोन्मुख हो गया है आज कल में मैं भी विदा लूंगा।

आनन्द को बुलाकर मैंने सब भिक्षुओं के सामने कह तो दिया है कि मेरे चले जाने पर शास्ता का काम मेरा धर्म और विनय करेंगे, शास्त्र ही शास्ता का काम देंगे। शिष्टाचार के विनय भी साफ कर दिये है जिससे इन बातों को लेकर सब में दलबदी न हो जाये। यह भी कह दिया है कि आवश्यकता होने पर छोटे छोटे भिक्षु-नियम छोड दिये जाँय। नियम तो देशकाल के अनुसार बनाये जाते हैं, साधारण बाह्याचार या बाह्य नियमों पर इतना जोर न देना चाहिये कि मनुष्य मनुष्य में भेद हो जाय संघ टुकडे टुकडे हो जाय।

सघ बनाकर मैंने अच्छा किया या बुरा, इस पर जब विचार करता हू तब दोनों पक्षों में कुछ न कुछ कहने को मिल जाता है पर यह साफ़ मालूम होता है कि अगर संघ न बनाया होता तो हानि अधिक हुई होती, मेरे उपदेशों से स्थायी लाभ बहुत कम ने उठाया होता, जो सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति आवश्यक थी वह न हुई होती और विशाल रूप धारण करने के लिये उसका बीज न बोया गया होता । आज एक विचार सुधार या क्रान्ति शताब्दियों तक काम करने के लिये खड़ी हो गई है ।

नि सन्देह इसमे कभी न कभी विकार आयगा पर तब तक इससे करोड़ों आदमी लाभ उठा लेंगे, समाज की काया पलट होजायगी । अन्त में तो सभी का नाश होता है इस जीवन का जसे नाश हो रहा है उसी तरह संघ का धर्म का भी नाश होगा, समाज का भी नाश होगा । जब सभी नाशशील है तो नाश की चिन्ता क्यों की जाय ।

हा, यह बात अवश्य है कि मैं सघ-स्थापन कार्य में न पड़ा होता तो जीवन कुछ अधिक शान्तिपूर्ण रहा होता । पर इससे क्या ? थोडे से स्वार्थ के लिये समाज के महान कल्याण की पर्वाह न करना कोई मनुष्यता नहीं है ।

आज मैं सन्तोष के साथ जा रहा हू । जाना तो हर हालत में था ही, पर कुछ करके जा रहा हू, जगत को कुछ ऊपर उठा कर, ऊपर उठने की-सुखी बनने की-सामग्री देकर जा रहा हूं, इससे बढ़कर इस जीवन का, इस क्षुद्र देह का क्या उपयोग हो सकता था ।

(समाप्त)

सत्यभक्त साहित्य

जीवन की, समाज की, धर्म की और देश विदेश की प्रायः सभी समस्याओं को सुलझाने वाले मौलिक विचार। गद्यपद्य, नाटक, कथा आदि अनेक ढंग से बुद्धि और मन पर असाधारण प्रभाव डालनेवाला साहित्य।

१. सत्यामृत मानवधर्मशास्त्र [दृष्टिकाण्ड]- १।)

अपने और जगत के जीवन को सुखी बनाने के लिये, सत्य पाने के लिये जीवन को कैसा बनाना चाहिये, जीवन कैसे और कितने तरह के होते है. धर्म जाति आदि का समभाव कैसे व्यावहारिक बन सकता है आदि का मौलिक विवेचन विस्तार से किया गया है।

२. कृष्णगीता—मूल्य बारह आना।

श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवादरूप होने पर भी चौदह अध्याय की यह गीता भगवद्गीता से बिलकुल स्वतन्त्र है। कर्मयोग के सन्देश के साथ इस में धर्मसमभाव जातिसमभाव नरनारीसमभाव अहिंसादिव्रत, पुरुषार्थ, कर्तव्याकर्तव्यनिर्णय आदि का बड़ा अच्छा विवेचन किया गया है। विविध छन्दों और गीतों में ९५८ पद्य है।

३. निरतिवाद—मूल्य छः आना।

साम्यवाद और पूंजीवाद के अतिवादों से बचाकर निकाला गया बीच का मार्ग। साथ ही विश्वकी सामाजिक धार्मिक राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने की व्यावहारिक योजना।

४ सत्य संगीत—मूल्य दस आना।

भ. सत्य, भ. अहिंसा, राम कृष्ण महावीर बुद्ध ईसा मुहम्मद

आदि महात्माओंकी प्रार्थनाएँ अनेक भावनागीत तथा भावपूर्ण कविताएं ।

५. जैनधर्ममीमांसा (भाग १) -मूल्य१)

तीन बडे बडे अध्यायोंमे धर्म की विस्तृत और मौलिक व्याख्या. महावीर स्वामी का बुद्धिसगत विस्तृत जीवन चरित्र, अतिशयो आदि का वास्तविक मर्म, जैनधर्म और उसके सम्प्रदाय उपसम्प्रदायों का और निन्हवों का इतिहास, सम्यक्दर्शन के आठ अग तथा अन्य चिन्हों का सनभावी और नये दृष्टिकोण मे विस्तृत वर्णन ।

६ जैनधर्ममीमांसा (भाग २)–मूल्य १॥)

इसमें सर्वज्ञताकी वास्तविक व्याख्या, उसका इतिहास, प्रचलित मान्यताओंकी आलोचना, मति आदि पाचों ज्ञानोंका विशाल वर्णन, उनका मर्मदर्शन; सक्षेपमें ज्ञान के विषयको लेकर युक्ति और शास्त्रके आधार पर किया गया विशाल मौलिक और वैज्ञानिक अभूतपूर्व विवेचन है, कठिन से कठिन विषय बडी सरलता से समझाया गया है ।

७. शीलवती–मूल्य एक आना ।

वेश्याओं के जीवन में भी सतीत्व लानेवाली, उनके जीवन को ऊचे उठानेवाली एक योजना जो कि एक वेश्याकुमारी के साथ चर्चारूप में बताई गई है ।

८. विवाह-पद्धति--मूल्य एक आना ।

सप्तपदी, भाँवर, मगलाष्टक मगलाचरण आदि के सुन्दर पद्य सबको समझ में आनेवाली एक नयी विवाह पद्धति. इस पद्धति से अनेक विवाह हुए हैं और विरोधी दर्शकों ने भी इसकी सराहना की है । पूरी विधि हिन्दी में ही है ।

९. सत्यसमाज और प्रार्थना—मूल्य एक आना।

प्रतिदिन सुबह शाम पढने योग्य प्रार्थनाएँ, सत्यसमाज के विषय में शंका समाधान और नियमावली।

१०. नागयज्ञ (नाटक)—मूल्य आठ आना।

भारत के आर्य और नागों का परस्पर द्वंद्व और अन्त में दोनों का मेल; एक ऐतिहासिक कथानकको लेकर अनेक रसपूर्ण चित्रण के द्वारा सांस्कृतिक एकता का उपाय बताया गया है।

एक लम्बी प्रस्तावना में हिन्दू मुसलमानों के झगडों का कारण और उनको दूर करने का उपाय भी बताया गया है।

११. हिन्दूमुस्लिम-मेल—मूल्य डेढ आना।

हिन्दू मुसलमानों में जिन जिन बातोंपर झगडा है उनका मर्म क्या है और किस तरह दोनों की भलाई हो सकती है दोनों की धार्मिक सामाजिक और राजनैतिक समस्या किस तरह सुलझ सकती है—इसका अच्छा विवेचन है। यह पुस्तक घर घर पहुँचना चाहिये।

१२ आत्म कथा—मूल्य सवा रुपया।

सत्यसमाज के संस्थापक श्री० सत्यभक्तजी की विस्तृत आत्मकथा जिसे पढने से जीवन की कितनी ही कठिनाइयाँ हल हो सकती हैं और जीवन निर्माण की कुञ्जी मिल सकती है।

१३. हिंदू मुस्लिम इत्तहाद (उर्दू अनुवाद)।

यह श्री. सत्यभक्तजी की 'हिन्दू-मुसलिम मेल' पुस्तक का उर्दू अनुवाद है, हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर आपने सत्यसन्देश में भी कुछ विचार प्रकट किए थे उनका भी समावेश इस अनुवाद में किया गया है। हर उर्दूदाँ को इसे जरूर पढना चाहिए।

१४ बुद्ध हृदय—मूल्य छ. आना। इस पुस्तक में महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाओं को लेकर उनके मनका ऐसा सुन्दर औ

स्वाभाविक चित्रण किया है मानों यह पुस्तक महात्मा बुद्ध की डायरी का ही अंश हो। पुस्तक बहुत ही रोचक और पठनीय है।

निम्नलिखित ग्रंथ छप रहे हैं:—

१५ **सत्यामृत** (आचार—कांड)--मूल्य करीब १॥)

अहिंसा सत्य आदि का मौलिक और विस्तारपूर्ण विवेचन, आचार सम्बन्धी प्रायः सभी बातों का विवेचन करनेवाला एक मौलिक महाशास्त्र।

१६. **जैनधर्ममीमांसा** (भाग ३)-मूल्य करीब १॥)

इसमें सम्यक् चारित्रका, साधु संस्था के नियमो का, उसके आधुनिक रूप का गुणस्थान आदि का नयी दृष्टिसे विवेचन किया गया है।

१७ **हिंदू-मुस्लिम-यूनिटी** (अंग्रेजी) लेखक रघुवीरशरण दिवाकर बी. ए. ऐल-ऐल. बी.। श्री. सत्यभक्तजी के हिंदू-मुस्लिम समस्या सम्बन्धी विचारों को अपने ढंग से दर्शाते हुए लेखक ने इस पुस्तक मे उक्त समस्या पर विचार किया है।

१८ **अनमोल पत्र**—श्री. सत्यभक्तजी के समय समय पर दिए गए पत्रों का सर्वोपयोगी और मौलिक भावों से परिपूर्ण अंश।

१९ **सुलझी हुई गुत्थियाँ**-विभिन्न जटिल समस्याओं को सुलझाने का अत्यन्त सुन्दर सरल और व्यावहारिक उपाय यहां मिलेगा।

२०—**कुरान की झाँकी**-इसे कुरान का सार कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

मिलने का पता—

—**सत्याश्रम, वर्धा**

[ये पुस्तकें हिंदी--ग्रन्थ रत्नाकर, हीराबाग, गिरगांव बम्बई से भी मिलेंगी।]

सत्यभक्त साहित्य

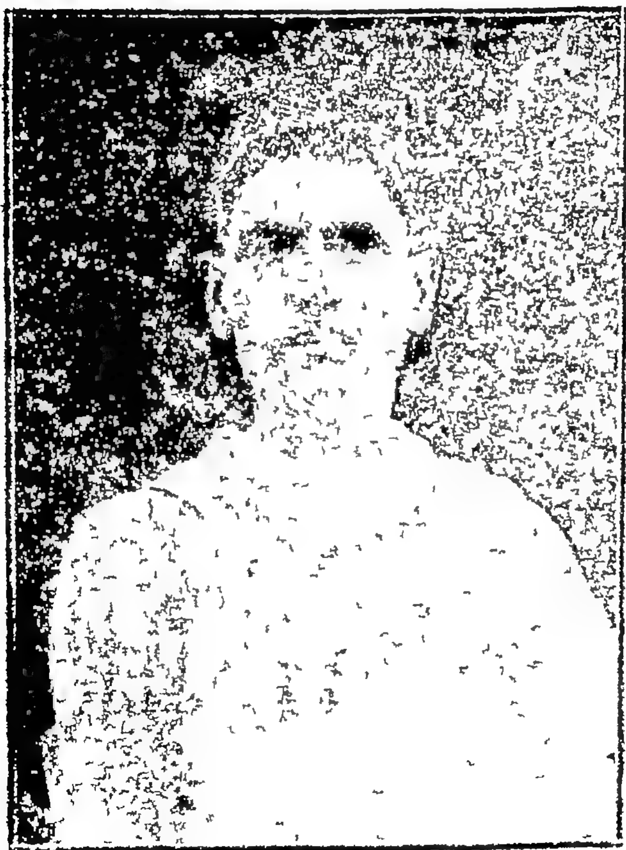


१—सत्यामृत—मानव-धर्म-शास्त्र [दृष्टिकांड]—		१।)
२—सत्यामृत [आचार—कांड]—		१।।।)
३—निरतिवाद—		।=)
४—सत्य संगीत—		।।=)
५—जैनधर्म-मीमांसा [भाग १]—		१)
६—जैनधर्म-मीमांसा [भाग २]—		१।।)
७—शीलवती—		-)
८—विवाह पद्धति—		-)
९—सत्यसमाज और प्रार्थना—		-)
१०—नागयज्ञ [नाटक]—		।।)
११—हिन्दू-मुस्लिममेल—		-)।।
१२—आत्म-कथा—		१।)
१३—हिंन्दू-मुस्लिम इत्तहाद [उर्दू अनुवाद]—		=)
१४—बुद्ध हृदय —		।=)
१५—कृष्ण गीता—		।।।)
१६—अनमोलपत्र—		-)
१७—सुलझी हुई गुत्थियाँ—		।)
१८—कुरान की झाँकी—		=)

मिलने का पता—सत्याश्रम, वर्धा.

नागयज्ञ

(नाटक)



सत्य-समाज संस्थापक

* स्वामी सत्यभक्त *

प्रकाशक—

सूरजचन्द डाँगी

सत्याश्रम वर्धा (सी• पी.)

मुद्रक—

सत्येश्वर प्रिन्टिंग प्रेस

बोरगांव वर्धा (सी. पी.

नागयज्ञ

(एक ऐतिहासिक नाटक)

लेखक—

सत्यसमाज संस्थापक

स्वामी सत्यभक्त

प्रकाशक

सत्याश्रम वर्धा (सी. पी.)

प्रथमावृत्ति अक्टूबर १९४०

मूल्य—आठ आना

—❀ नाटक के पात्र ❀—

पुरुष-पात्र

१	परीक्षित...	आर्यसम्राट्
२	जनमेजय....	परीक्षित के पुत्र, आर्यसम्राट्
३	शमीक	एक आर्य ऋषि
४	जरत्	एक आर्य ऋषि
५	आस्तीक ..	जरत् ऋषि के पुत्र, नागयज्ञ बन्द करानेवाले.
६	वासुकि ..	नाग लोगों के राजा
७	तक्षक ...	वासुकि के भाई
८	शृङ्गी	शमीक ऋषि के पुत्र
९	इन्द्र ...	त्रिविष्टप के सम्राट्
१०	चण्डभार्गव	यज्ञ करानेवाले ऋषि
११	देवशर्मा	यज्ञ करानेवाले ऋषि
१२	पिंगल	यज्ञ करानेवाले ऋषि
१३	गौरमुख	शमीक ऋषि के शिष्य
१४	कृश	शमीक ऋषि के शिष्य

स्त्री-पात्र

१५ कारु– वासुकि की बहिन, जरत् की पत्नी, आस्तीक की माता.

इसके अतिरिक्त मंत्री, पथिक दम्पति और उनके पुत्रपुत्री, अन्य पथिक, युवक दल, द्वारपाल, कारु की सखियाँ, नर्त्तिकाएँ और सभासद ।

प्रस्तावना

नागयज्ञ एक ऐतिहासिक घटना है जिसे अर्जुन के प्रपौत्र राजा जनमेजय ने किया था । महाभारत में जब मैंने यह घटना पढी तब मेरे मन में सहसा विचार आया कि इतिहास अपने को दुहरा रहा है । आज हिन्दू मुसलमानों की जैसी समस्या है वैसी किसी जमाने मे आर्य और नागों के बीच में भी थी और आर्य और नाग मिलकर किसी दिन एक होसकेंगे इसकी आशा उस समय दुराशासी थी । पर देखते हैं कि आज न वे आर्य बचने पाये न वे नाग । दोनों मिटकर या मिलकर हिन्दू बनगये । ये कैसे बने आदि प्रश्नों का उत्तर भी थोडे बहुत अश में महाभारत से समझा जा सकता है ।

आर्य और नागों का धर्म जुदा जुदा था । आर्य इन्द्र के पुजारी थे, यज्ञ करते थे, मूर्त्ति न मानते थे, वेषभूषा भिन्न थी, भाषा भिन्न थी, वशपरम्परा भिन्न थी, उत्पीडक थे । नाग लोग शिव के पुजारी थे, पूजा करते थे, मूर्ति मानते थे, पीडित थे, वशपरम्परा वेषभूषा भाषा में भिन्न थे ।

जब तक मनुष्यता का उदय न हुआ तब तक ये आपस में लड़ते रहे यहा तक कि क्रूरताकी हद करदी । पर जब मनुष्यता का उदय हुआ तब दोनोको एक दूसरे की बातें अच्छी लगने लगीं, मेरा तेरा भूलकर दोनों मे जो अच्छी बातें थीं उसे दोनों ने अपना लिया । आर्य मूर्तिपूजक हो गये, आर्यों ने अपने देव को देव कहा तो नागो के देव शिव को महादेव कहा इस उदारताने वैरभाव बोडाला

शताब्दियों का द्वन्द शान्त हो गया ।

इस काम में अतिम और मुख्य प्रयत्न था आस्तिक मुनिका। इनके पिता आर्य थे और माता नाग । इस प्रकार के विवाह और उनसे पैदा होनेवाली सन्तान दो जातियों के सम्मिलन में बहुत उपयोगी होती है ।

अपनी अपनी विशेषता से चिपके रहने से विशेपता और समानता सब नष्ट होजाती है । अहकार सब को खा जाता है । आर्यों और नागों ने जब इस तत्व को समझा तब दोनों में एकता हुई।

आज भी वैसी ही परिस्थिति है । हिन्दू मुसलमान मिलकर एक नहीं हो सकते यह मान्यता बहुतों की है । पर अगर आर्य और नाग मिलकर एक होगये तो मैं नहीं समझता कि हिन्दू मुसलमानों में उनसे अधिक क्या अन्तर है । नागयज्ञ सरीखी क्रूरता तो हिन्दू और मुसलमान दोनों में से कोई भी नहीं दिखासकता ।

हिन्दू मुसलमानों में क्या क्या भेद कहा जाता है इसकी एक तालिका बनाकर उसपर विचार करने से उन भेदों की निस्सारता मालूम होजायगी ।

	हिन्दू	मुसलमान
१	मूर्त्तिपूजक	मूर्त्तिविरोधी
२	मासत्यागी	मासभक्षी
३	गोवधविरोधी	शूकरवध विरोधी
४	बहुदेववादी	एकईश्वरवादी
५	पुनर्जन्म मानते हैं	कयामत मानते हैं
६	पूजामें गाते हैं बाजा बजाते है---	नमाज में शान्त रहते हैं

७	पूर्व तरफ़ प्रणाम करते हैं---	पश्चिम तरफ नमाज पढ़ते है
८	चोटी रखते है	दाढी रखते है
९	हिन्दुस्थानी हैं	अरबी हैं
१०	लिपि देवनागरी है	लिपि फारसी है
११	भाषा हिन्दी है	भाषा उर्दू है।
१२	धार्मिक उदारता अधिक	धार्मिक उदारता कम
१३	नारीअपहरण नहीं करते-	-करते हैं
१४	मुसल्मानों को अछूत समझते है	किसी को अछूत नहीं समझते

१ मूर्त्तिपूजा

१ आर्यसमाजी ब्राह्मसमाजी स्थानकवासी आदि अनेक सम्प्रदाय हिन्दुओं में भी ऐसे है जो मूर्त्तिपूजा के विरोधी हैं सिक्ख और तारणपथी अर्ध मूर्तिपूजक हैं अर्थात् वे शास्त्र की पूजा मूर्त्ति सरीखी करते हैं और मुसल्मान भी अर्ध मूर्त्तिपूजक हैं, वे ताजिया और कब्र पूजते हैं, काबा का पत्थर चूमते हैं, मसजिदों में जूते पहिन कर जाने की मनाई करते है, यह सब भी एक तरह की मूर्त्तिपूजा है, ईंट चूना पत्थर में आदरभाव भी मूर्त्तिपूजा है इसलिये हिन्दू मुसल्मान दोनों ही मूर्त्तिपूजक हैं। यों असल में न हिन्दू मूर्त्ति-पूजक हैं न मुसल्मान मूर्तिपूजक हैं । मूर्त्ति या ईंट चूना पत्थर को ईश्वर या खुदा कोई नहीं मानता, सभी इन्हें खुदा या ईश्वर को याद करानेवाला निमित्त मानते हैं । किसी को मसजिद देखकर खुदा याद आता है किसी को मूर्त्ति देखकर खुदा याद आता है। सब

धर्मस्थान या प्रतीक खुदा को पढने या समझने की कितावें है । रामजी की मूर्त्ति के सामने पूजा करनेवाला हिन्दू रामजी की नीतिमत्ता प्रजापालकता त्याग उदारता वीरता आदि गुणों का वर्णन करता है यह नहीं कहता कि हे भगवान, तुम सगमरमर के वने हो वडे चिकने हो वडे वजनदार हो आदि । इसी प्रकार मक्का की तरफ मुँह करने नमाज पढनेवाला मुसलमान मक्का के पत्थरों का ध्यान नहीं करता, दोनों सिर्फ सहारा लेते है ध्यान तो खुदा या ईश्वर का करते हैं इसलिये दोनों मूर्त्तिपूजक नहीं हैं ।

हा, इस्लाम में जो अमुक तरह की मूर्तिपूजा की मनाई की गई है उसका कारण यह है कि हजरत मुहम्मद साहिब के समय में मूर्तियों के नाम पर दलबन्दी लड़ाई झगडे वहुत हो गये थे । हरएक मूर्त्ति मानों ईश्वर हो और मनुष्यों के समान मानो ईश्वरों मे भी झगड़े होते हों । मूर्त्ति को आधार वनाकर ये सब बुराइयॉ फलफूल रही थी इसलिये मूर्तिया अलग कर दी गई । पर ईश्वर को याद करने के लिये जो सहारे थे वे नष्ट नहीं किये गये । मतलब यह कि बुराई मूर्त्ति में नहीं है किन्तु उसे ईश्वर मानने में, मूर्त्तियों के समान ईश्वर को जुदा जुदा कर लडाने में उनके निमित्त वैर विरोध वढाने में है । इस बात को हिन्दू भी मजूर करेगा मुसलमान भी मजूर करेगा । मूर्त्ति का सहारा लेना नास्तिकता नहीं है । यह तो रुचि योग्यता आदि का सवाल है । इसलिये मूर्त्ति अमूर्त्ति को लेकर सम्प्रदाय न वनाना चाहिये । हो सकता है कि मुझे मूर्त्ति के सहारे की जरूरत न हो और मेरे वच्चे को या पत्नी को हो अथवा मुझे उसकी जरूरत हो किन्तु मेरे वेटे को न हो इसलिये

मूर्त्ति अमूर्त्ति के सम्प्रदाय न बनना चाहिये । रुचि के अनुसार उपयोग करना ही उचित है ।

जब कि हिन्दू विना मूर्त्ति के सन्ध्या सामायिक प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रियाए करते हैं तब मूर्त्ति के बिना नमाज क्यों नहीं पढी जासकती और जब मुसलमान कब्र ताजिया काबा आदि का सहारा लेते हैं तब मूर्त्ति मे क्या झगड़ा है ' यह तो कोई बात न हुई कि हजरत मुहम्मद साहिब की कब्र का विरोध किया जाय पर दूसरे फकीरों की कब्रों पर रेवडिया चढाई जाय, अपनी अपने बाप की और राजा महाराजाओं की देशसेवकों की और अनेक सुन्द-रियों की तसवीरें घर में लटकाई जाय किन्तु हजरत मुहम्मद साहिब की तस्बीर का विरोध किया जाय । यह सब तो एक तरह से हजरत का अपमान कहलाया । हजरतने अगर अपना स्मारक बनाने की मनाई की थी तो यह तो उनकी नम्रता थी और यह विचार था कि लोग कहीं बुतपरस्त न बन जॉय। खैर, सीधी सी बात यह है कि यह सब रुचि और लियाकत का सवाल है । इसमे विरोध करने की या किसी बात पर जोर देने की जरूरत नहीं है । हिन्दू और मुसल्मान दोनों को रुचि और लियाकत पर ध्यान देना चाहिये । इन्हे मजहबी भेद का कारण न बनाना चाहिये । व्यवहार में तो हिन्दुओं में भी मूर्त्तिपूजक है और उसके विरोधी भी हैं और मुसल्मानों में भी मूर्त्तिपूजक है और उसके विरोधी भी हैं ।

२ मांसभक्षण

१--हिन्दुओं में सौ में पचहत्तर हिन्दू मासभक्षी है । शूद्र कहलानेवाली अधिकाश जातिया मास खाती है बंगाल उड़ीसा मे कुछ

धर्मस्थान या प्रतीक खुदा को पढने या समझने की किताबें हैं । रामजी की मूर्ति के सामने पूजा करनेवाला हिन्दू रामजी की नीतिमत्ता प्रजापालकता त्याग उदारता वीरता आदि गुणों का वर्णन करता है यह नहीं कहता कि हे भगवान, तुम सगमरमर के बने हो बडे चिकने हो बडे वजनदार हो आदि । इसी प्रकार मक्का की तरफ मुँह करने नमाज पढनेवाला मुसलमान मक्का के पत्थरों का ध्यान नहीं करता, दोनों सिर्फ सहारा लेते है ध्यान तो खुदा या ईश्वर का करते है इसलिये दोनों मूर्तिपूजक नहीं हैं ।

हा, इस्लाम में जो अमुक तरह की मूर्तिपूजा की मनाई की गई है उसका कारण यह है कि हजरत मुहम्मद साहिब के समय में मूर्तियों के नाम पर दलबन्दी लड़ाई झगड़े बहुत हो गये थे । हरएक मूर्ति मानों ईश्वर हो और मनुष्यों के समान मानों ईश्वरों में भी झगड़े होते हों । मूर्ति को आधार बनाकर ये सब बुराइयाँ फलफूल रही थीं इसलिये मूर्तिया अलग कर दी गईं । पर ईश्वर को याद करने के लिये जो सहारे थे वे नष्ट नहीं किये गये । मतलब यह कि बुराई मूर्ति में नहीं है किन्तु उसे ईश्वर मानने में, मूर्तियों के समान ईश्वर को जुदा जुदा कर लडाने में उनके निमित्त वैर विरोध बढाने में है । इस बात को हिन्दू भी मजूर करेगा मुसलमान भी मजूर करेगा । मूर्ति का सहारा लेना नास्तिकता नहीं है । यह तो रुचि योग्यता आदि का सवाल है । इसलिये मूर्ति अमूर्त्ति को लेकर सम्प्रदाय न बनाना चाहिये । हो सकता है कि मुझे मूर्त्ति के सहारे की जरूरत न हो और मेरे बच्चे को या पत्नी को हो अथवा मुझे उसकी जरूरत हो किन्तु मेरे बेटे को न हो इसलिये

मूर्त्ति अमूर्त्ति के सम्प्रदाय न बनना चाहिये । रुचि के अनुसार उपयोग करना ही उचित है ।

जब कि हिन्दू बिना मूर्त्ति के सन्ध्या सामायिक प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रियाए करते हैं तब मूर्त्ति के बिना नमाज क्यों नहीं पढी जासकती और जब मुसलमान कब्र ताजिया काबा आदि का सहारा लेते हैं तब मूर्त्ति में क्या झगडा है ? यह तो कोई बात न हुई कि हजरत मुहम्मद साहिब की कब्र का विरोध किया जाय पर दूसरे फकीरों की कब्रों पर रेवडिया चढाई जाय, अपनी अपने बाप की और राजा महाराजाओं की देशसेवकों की और अनेक सुन्द-रियों की तसवीरें घर में लटकाई जाय किन्तु हजरत मुहम्मद साहिब की तसवीर का विरोध किया जाय । यह सब तो एक तरह से हजरत का अपमान कहलाया । हजरतने अगर अपना स्मारक बनाने की मनाई की थी तो यह तो उनकी नम्रता थी और यह विचार था कि लोग कहीं बुतपरस्त न बन जाँय। खैर, सीधी सी बात यह है कि यह सब रुचि और लियाकत का सवाल है । इसमें विरोध करने की या किसी बात पर जोर देने की जरूरत नहीं है । हिन्दू और मुसलमान दोनों को रुचि और लियाकत पर ध्यान देना चाहिये । इन्हें मजहबी भेद का कारण न बनाना चाहिये । व्यवहार में तो हिन्दुओं में भी मूर्त्तिपूजक हैं और उसके विरोधी भी हैं और मुसलमानों में भी मूर्त्तिपूजक हैं और उसके विरोधी भी हैं ।

२ मांसभक्षण

१--हिन्दुओं में सौ में पचहत्तर हिन्दू मासभक्षी है । शूद्र कहलानेवाली अधिकाश जातिया मास खाती है बगाल उड़ीसा मैथुल

आदि प्रान्तों में उच्चजाति के कहलानेवाले ब्राह्मण आदि भी मास खाते हैं। क्षत्रिय लोग अधिकतर मास खाते हैं। सिक्ख मास खाते हैं ईसाई भी खाते हैं इसलिये मासभक्षण हिन्दू मुसलमानों के भेद का कारण नही कहा जासकता। वहुत से वहुत इतना ही हो सकता है कि जो लोग मासभोजन से वहुत अधिक परहेज करते हैं वे मासभक्षियों के यहा भोजन न करें उनके साथ भोजन करने में साधारणतः आपत्ति न होना चाहिये।

पर इस हालत में हिन्दू मुसलमान का भेद न होगा मास-भोजी शाकभोजी का भेद होगा।

हा, मासभोजन का विरोध हिन्दू और मुसल्मान दोनों करते हैं। अहिंसा को दोनों महत्व देते हैं। यही कारण है कि हज करते समय हर एक मुसलमान को मास का बिल्कुल त्याग करना पडता है जू मारना भी मना है। साधारण दिनों में अगर किसी प्राणी को मारना भी पडे तो तडपाना मना है। अगर हिंसा धर्म होता तो हज के दिनों में अधिक से अधिक मास खाने का उपदेश होता, मासत्याग का नहीं। हिन्दुओं में भी मासत्याग को वडा पुण्य माना हैं। इस-प्रकार मूल में तो दोनों ही अहिंसावादी हैं आदत के कारण या कमजोरी के कारण जो हिंसा रह गई है वह दोनों तरफ़ है ऐसी हालत में झगड़ने का क्या कारण है?

२ गोवध

गोवध हो या शूकरवध हो या और भी किसी प्राणी का वध हो, जब दोनों ही अहिंसा को महत्व देते है तब दोनों को वध का विरोधी होना चाहिये। गोवध और शूकरवध के विरोध पर जो

खास जोर दिया जाता है उसके कारण ढूँढने की अगर कोशिश की जाय तो दोनों एक दूसरे के मत का आदर करेंगे। हिंदुस्थान कृषिप्रधान देश है। खेती की जरूरत हिंदुओं को भी है और मुसलमानों को भी है और खेती में यहा गाय का जो महत्व है वह सबको मालूम है इसलिये गोवध का विरोध मुसलमानों को भी करना चाहिये।

शूकर वध देखने का दुर्भाग्य अगर किसी को मिला हो तो वह मासभक्षी ही क्यों न हो तो भी उसका दिल थर्रा जायगा। जिस तरह वह चीत्कार करता है - जिस तरह वह जिंदा जलाया जाता है इससे क्रूर से क्रूर आदमी की रूह काँप जाती है। परिस्थिति अनुकूल न होने से यद्यपि इस्लाम पूरी तरह से पशुवध नहीं रोक पाया फिर भी इस तरह की क्रूरता का विरोध तो उसने किया ही। किसी भी जानवर को तड़पाने की अनुमति तो उसने कभी न दी, इस दृष्टिसे उसका शूकरवध विरोध बहुत ही उचित है। हिंदू तो अपने को मुसलमानों की अपेक्षा अधिक अहिंसावादी मानते हैं इसलिये उन्हें तो मुसलमानों की अपेक्षा भी अधिक शूकरवध-विरोधी होना चाहिये।

पर यह सवाल हिंसा अहिंसा की दृष्टि से विचारणीय नहीं रह गया है इसके भीतर अधिकार का अहकार घुस गया है। कसाईघर में दिन-रात सैकडों गायें कटती हैं वे गायें भी प्रायः हिंदुओं के यहां से खरीदी जाती हैं, इस पर हिंदुओं को इतराज नहीं होता पर ईद के गोवध पर इतराज होता है। इसलिए यह

प्रश्न अधिकार का प्रश्न बन जाता है।

जहा अधिकार का सवाल आया वहा मुसलमानों को अपने अधिकार की रक्षा के लिये गोवध करना जरूरी हो जाता है इसलिये गोवध रोकने का सब से अच्छा तरीका यह है कि साधारण पशु वध के कानून के अनुसार मुसलमानों को कुर्बानी करने दी जाय। हा, आमरास्ते पर या खुली जगह में पशुवध न करने का जो सरकारी कानून है वह धार्मिक भावना से एक हिन्दू के नाते नहीं, किन्तु एक साधारण नागरिक के नाते पालन कराना चाहिये। सीधी बात यह है कि गोवध के प्रश्न पर हिन्दुओं को पूरी उपेक्षा कर देना चाहिये। गोवध रोकने के लिये शूकरवध करना निरर्थक है क्योंकि इससे गोवध बढेगा और दोनों पक्षों में होनेवाला मनुष्य-वध और हृदयवध और भी कई गुणा होगा।

गोवध रोकने का वास्तविक उपाय यह है कि गोपालन इस तरह किया जाय कि किसी को गाय बेंचने की जरूरत ही न पडे। आज जो हजारों की सख्या में गोवध हो रहा है उसमें हिन्दुओं का हाथ कुछ कम नहीं है। तब वर्ष छ महीने में होनेवाला गोवध हिन्दू मुसलमानों के भाईचारे का वध क्यों करे?

४ बहुदेववाद

हिन्दू बहुदेववादी है पर अनेकेश्वरवादी नहीं है। मुसलमानों के समान वे भी एकेश्वरवादी हैं और हिन्दुओं के समान मुसलमान भी बहुदेववादी है। हिन्दू एक ही परमात्मा मानते है उसके अवतार अंश विभूतियाँ दूत आदि अनेक मानते हैं इस प्रकार नाना रूपों

से एक ही ईश्वर को पूजते हैं। मुसलमान एक ही खुदा के हजारों पैगम्बर मानते हैं और उनका सन्मान भी करते हैं। हजारों पैगम्बरों के होने पर भी जैसे खुदा एक है उसी प्रकार हजारों सेवकों भक्तों अवतारों के होने पर भी ईश्वर एक है।

फिर इस बातको लेकर हिन्दुओं हिन्दुओं में इतना मतभेद है जितना हिन्दू मुसलमानों में नहीं है। बहुत से हिन्दू ईश्वर ही नहीं मानते, मुसलमान ईश्वर तो मानते हैं। अगर अनीश्वरवादी हिन्दुओं से ईश्वरवादी हिन्दू प्रेम से मिलकर रह सकते हैं उनसे सामाजिक सम्बन्ध भी रख सकते हैं जैसे जैनियों और बौद्धों से रखते हैं, तो ईश्वर को न माननेवाले हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर एक क्यों नहीं हो सकते ?

५ पुनर्जन्म

हिंदुओं का पुनर्जन्म और मुसलमानों की कयामत इसमें वास्तव में कोई फर्क नहीं है। दोनों मान्यताओं का मतलब यह है कि मरने के बाद इस जन्म के पुण्य पाप का फल मिलेगा। अब वह फल मरने के बाद तुरन्त ही मिलना शुरू होजाय या कुछ समय बाद मिले इसमें धार्मिक दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। क्योंकि दोनों से पाप से भय और पुण्य का आकर्षण पैदा होता है। इसलिये इस बात को लेकर भी दोनों में कोई भेदभाव नहीं है।

६ बाजा

हिंदू पूजा में बाजा बजाते हैं पर मुसलमान भी बाजे के विरोधी नहीं हैं। ताजियों के दिनों में तो इतने बाजे बजाते हैं कि शहर भर की नींद हराम हो जाती है। और हिन्दू पूजा में बाजा

बजाने पर भी सन्ध्यावन्दन आदि के समय ऐसे चुप रहते हैं कि स्वास भी रोक लेते हैं। इससे इतना पता तो लगता है कि बाजे के विरोधी न हिन्दू हैं न मुसलमान, न मौन का विरोधी दोनों में से कोई है। बात सिर्फ मौके की है।

इस देशमें बाजे का इतना अधिक रिवाज है कि उसे बीमारी तक कहा जा सकता है। कभी कभी मुझे व्याख्यान देते समय इसका बड़ा कड़ुआ अनुभव हुआ करता है। व्याख्यान खूब जमा है श्रोता तल्लीन हैं इतने में पड़ौस के मन्दिर से घंटे की आवाज आई और ऐसी आई कि मेरी आवाज बेकाम होगई। पुजारियों को घंटे से कितना मजा आया सो तो माळूम नहीं पर सैकड़ों और कभी कभी हजारों श्रोताओं का मजा किरकिरा होगया यह तो सब ने अनुभव किया। कभी कभी सभा के पाससे विवाह आदि के जुलूस ही निकलकर मजा किरकिरा कर दिया करते हैं, इससे इतना तो लगता है कि बाजों को कुछ कम करना जरूरी है। पर इससे भी जरूरी यह है कि जो कुछ हो नागरिकता के आधार पर बनाये गये कानून के अनुसार हो या समझा बुझाकर हो। नागरिकता के आधार पर नियम कुछ निम्नलिखित ढंग से बनाये जा सकते हैं।

क—रात के दस बजे के बाद सुबह पांच बजे तक बाजा बजाना बन्द रहे।

ख—मसजिद में जब नमाज पढ़ी जाती हो तब आसपास बाजा बजाना बन्द रहे। पर इसकी सूचना किसी झंडे या निशान से दी जाय और समय नियत रहे।

ग—जहा पच्चीस या पचास आदमियों से अधिक की सभा भरी हो व्याख्यान हो रहा हो तो सूचना मिलते ही वहा बाजा बजाना बन्द रहे ।

घ—बाजा बजाने पर टेक्स लगाया जाय, आदि । इसप्रकार के नियम बनाये जाँय पर वे नागरिक अधिकारों की समानता से रक्षा करते हों मजहब के घमंड की रक्षा न करते हों ।

पर जब तक यह बाजा कानून न बने तब तक गोवध के समान इस प्रश्न पर भी पूरी उपेक्षा की जाय । जिसको बजाना हो बजाये न बजाना हो न बजाये । व्याख्यान होता हो, नमाज पढ़ी जाती हो किसी घर में गमी हुई हो तो इस बात की सूचना बाजे बजवानेवालों को करदी उन्हें जची तो ठीक, न जची तो न सही, अधिकार के बल पर या डरा धमकाकर या मारपीट कर बाजे रुकवाने का कोई मतलब नहीं । इससे तो प्राणों के ही बाजे बजजाते हैं । पूजा और नमाज सब नष्ट होजाते हैं ।

सच्चे धर्म की बात तो यह है कि अगर नमाज पढी जाती हो और ठाकुरजी की सवारी गाजे बाजे के साथ निकले तो मसाजिद के सामने आते ही सवारी को रुक जाना चाहिये और सब लोक शान्ति से इस तरह खडे रह जाँय मानों नमाज में शामिल होगये हों । नमाज खत्म होनेपर मुसलमान लोग सवारी को सन्मान से विदा करें । अगर सवारी नमाज के पहिले ही आजाय तो सवारी को सन्मान से विदा देने पर मुसलमान लोग नमाज पढें अगर इसके लिये दस पांच मिनट नमाज में देर हो जाय तो कोई हानि नहीं ।

हिन्दू और मुसलमान किसी तरह दो हो सकते है पर ईश्वर

और खुदा तो दो नहीं हो सकते तब खुदा के लिये ईश्वर का और ईश्वर के लिये खुदा का अपमान किया जाय तो क्या खुदा या ईश्वर किसी भी तरह खुश होगा।

यह सचाई अगर ध्यान में आजाय तो नमाज और पूजा का झगड़ा ही मिट जाय।

लोग प्रतिदिन एक ही तरह से नमाज पढते हैं उन्हें कभी पूजा का भी तो मजा लेना चाहिये और जो सदा पूजा करते हैं उन्हें नमाज का भी मजा लेना चाहिये ; खाने पीने में जब हमें नये नये स्वाद चाहिये तब क्या मन को नये नये स्वाद न चाहिये ? और उस हालत में तो ये कर्तव्य हो जाते हैं जब ये नये नये स्वाद प्रेम शान्ति और शक्ति के लिये बड़े मुफीद साबित होते हैं। पूजा नमाज प्रार्थना आदि सब का उपयोग हमारे जीवन के लिये हर-तरह मुफीद है।

७ पूर्व-पश्चिम

एक भाई ने पूछा कि आप हिंदू मुसलमानों में क्या मेल करेंगे ? एक पूर्व को देखता है और एक पश्चिम को ? मैंने कहा-- मिलते समय या बातचीत करते समय ऐसा होना जरूरी है। आप जिस तरफ को मुँह किये हैं उस तरफ को अगर मैं भी करूँ तो आप मेरी पीठ देखेंगे, बात क्या करेंगे ? मैं अगर छाती से छाती लगाकर आप से मिलना चाहूँ तो जिस तरफ को आपका मुँह होगा उससे उल्टी दिशा में मेरा मुँह होगा अन्यथा मिल न सकेंगे। मिलने के लिये जब एक दूसरे से उल्टी दिशा में मुँह करना जरूरी है तब पूजा नमाज के मिलने में उल्टी दिशा बाधक क्यों बने ?

समझ में नहीं आता कि ऐसी छोटी छोटी बातें हमारे जीवन मे अडगा क्यों डालती हैं । और मर्म की बात समझने की कोशिश क्यों नहीं की जाती । दिशा का झगडा एक तो नि.सार है और नि.सार न भी हो तो भी बेबुनियाद है । मुसलमन नमाज के लिये मक्का की तरफ मुँह करते हैं, हिंदुस्थान से मक्का पश्चिम में है इसलिये पश्चिम में मुँह किया जाता है, योरुप में नमाज पूर्व में मुँह करके पढ़ी जाती है -- दक्षिण आफ्रिका में उत्तर तरफ और उत्तरीय देशों में दक्षिण तरफ । खुद मक्का में किब्ला के चारों तरफ चार इमाम नमाज पढने बैठते हैं-- एक का मुँह पूर्व को, एक का मुँह पश्चिम को, एक का उत्तर को और एक का दक्षिण को, दिशा की बात ही नहीं है । और हिंदू तो जब सूर्य को नमस्कार करते हैं तब उनका मुँह पूर्व की तरफ होता है अन्यथा जिधर मूर्ति होती है उधर ही प्रणाम करते हैं, मूर्ति का मुँह पूर्व को हो तो पुजारी का मुँह पश्चिम को होगा जिससे मूर्ति से सामना हो सके ।

साधारणत हिन्दूदेवों का स्थान सब जगह माना जाता है। ईश्वर की शक्तियाँ नाना ढंग से नाना दिशाओं में हैं इसलिये हिंदू सब दिशाओं में प्रणाम करता है । तीर्थों के विषय में यह कहा जासकता है—

सेतुबन्ध जेरुसलम काशी मक्का या गिरनार ।
सारनाथ सम्मेदशिखर में बहती तेरी धार ॥
सिन्धु गिरि नगर नदी वन ग्राम ।
कहूं क्या, कहा कहा है धाम ।

किव्ला के विषय में यह कहा जासकता है---

क्या मसजिद मन्दिर गिरजाघर मक्का और मदीना ।
खुदा जहा किव्ला है वो ही खुदा भरा तिलतिल मे ।
है किव्ला तेरे दिल में ॥

अब बतलाइये झगडा किधर है ?

८ दाढ़ी चोटी

हिन्दु मुस्लिम दगों को 'दाढी चोटी सग्राम' कहा जाता है । जबकि दाढी चोटी ये फैशन हैं इनका हिन्दू मुसलमानों से कोई ताल्लुक नहीं । सिक्ख दाढी रखते हैं - हिन्दू सन्यासी दाढी रखते हैं - राजस्थान के तथा अन्य प्रातों के क्षत्रिय दाढ़ी रखते हैं और भी बहुत से हिन्दू दाढी रखते हैं जबकि हजारों मुसलमान ऐसे है जो दाढी नहीं रखते इसलिये दाढी को लेकर हिन्दू मसलमानों में कोई भेद नहीं है ।

रह गई चोटी की बात, सो चोटी का भी कोई नियम नहीं है । लाखों हिन्दू चोटी नहीं रखते और बहुत से मुसलमान किसी न किसी तरह चोटी रखते हैं--वे सिर पर चोटी नहीं रखते टोपी पर चोटी रखते है पर रखते हैं, इसलिये चोटी से भी हिन्दू मुसलमानों में कोई भेद नहीं है ।

असल बात यह है कि यह सब फैशन है । पुराने जमाने में लोग स्त्रियों सरीखे लम्बे बाल रखते थे साफ सफाई की अड़चन से लोग गर्दन तक बाल रखने लगे । बादमें किनारे किनारे बाल कटाकर बीच में बडा चोटला रखने लगे जैसे दक्षिण में अभी भी रिवाज है, वह चोटला कम होते होते चार बालों की चोटी रह गई,

और अन्तमें चोटी भी साफ होगई। जैसे लम्बी लम्बी मूछों से मक्खी सरीखी मूछें रहीं और अन्तमें साफ हो गईं यही बात चोटी की हुई। पश्चिम में एक और फेशन था-लोग सिर तो घुटालेते थे पर एक तरहकी टोपी लगा लेते थे जिस पर बहुत सुन्दरता से सजाये हुए नकली बाल रहते थे। पुराने जमानेमें इंग्लेण्ड के लार्ड ऐसी टोपियों का उपयोग करते थे इस प्रकार सिर के बालों का फेशन टोपी के बालों का फैशन बन गया और इसीलिये सिर की चोटी तुर्कस्तान में टोपी की चोटी बन गई। इसीलिये तुर्की टोपी लगानेवाले मुसलमान सिर पर चोटी न रखकर टोपीपर चोटी रखते हैं। हा, बहुत से हिन्दू और मुसलमान न सिर पर चोटी रखते हैं न टोपीपर चोटी रखते हैं। इस प्रकार हिन्दुत्व और मुसलमानियत, दोनों ही न चोटी से लटक रहे हैं न दाढ़ी में फँसे हैं इसलिये इस बात को लेकर झगडा व्यर्थ है।

९ देशभेद

कहा जाता है कि हिन्दू पहिले से यहा रहते हैं और मुसलमान अरबी हैं या पिछले हजार वर्ष में बाहर से आये हैं। इस प्रकार दोनों के पूर्वज जुदे जुदे होने से दोनों में स्थायी एकता नहीं हो पाती।

इसमें सन्देह नहीं कि मुट्ठी दो मुट्ठी मुसलमान बाहर से जरूर आये हैं पर आज जो हिन्दुस्थान में आठ करोड मुसलमान हैं वे जाति से हिन्दू ही हैं, यद्यपि अब एक धर्म का नाम भी हिंदू हो गया है और सामाजिक क्षेत्र भी बट गया है इसलिये मुसलमान

अपने को हिन्दू न कहें -- हिन्दी, हिन्दुस्थानी या भारतीय आदि कहें पर इसमें शक नहीं कि हिन्दुओं की जाति और मुसलमानों की जाति जुदी नहीं है। जिन हिन्दुओं ने धर्मपरिवर्तन कर लिया वे ही मुसलमान कहलाने लगे --इससे जाति या वंशपरम्परा कैसे बदल गई ? आज मैं अगर मुसलमान हो जाऊ तो कुछ रहन-सहन बदल लूंगा नाम भी बदल लूंगा पर क्या बाप भी बदल लूगा ? अपने पुरखे भी बदल लूगा ? बाप और पुरखे वे ही रहेंगे जो मुसलमान होने के पहिले थे, तब जाति जुदी कैसे हो जायगी । इसलिये राम कृष्ण महावीर बुद्ध व्यास चन्द्रगुप्त अशोक विक्रम आदि जैसे हिन्दुओं के पुरखे है वैसे ही मुसलमानों के पुरखे हैं दोनों को उनका गौरव मानना चाहिये। इसप्रकार जातीय दृष्टिसे हिन्दू मुसलमान बिलकुल भाई भाई हैं धर्म जुदा है तो रहने दो। बुद्ध और अशोक का धर्म तो आज के हिन्दू भी नहीं मानते फिर भी उन्हें अपना पूर्वज समझते हैं। कई दृष्टियों से हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म में जितना अन्तर है उतना हिन्दू धर्म और इसलाम में नहीं।

यों तो कोई भी धर्म बुरा नहीं है, कौन सा धर्म अच्छा और कौनसा बुरा या कम अच्छा यह तुलना करना फजूल है. अपनी अपनी योग्यता परिस्थिति और रुचि के अनुसार सभी अच्छे हैं। हिन्दू अगर मुसलमान होगये तो इससे किसी की भी धर्महानि नहीं हुई, सत्य सब जगह था जिसको जहां से लेना था सो ले लिया इसमें किसी का क्या बिगडा । रुचि के अनुसार धर्म क्रिया करने से जाति या देश जुदे जुदे नहीं होजाते। इसलिये मुसलमान भी हिन्दुओं के समान हिन्दू हिन्दी हिन्दुस्थानी हैं। उनका भी

इस देशपर उतना ही अधिकार है जितना हिन्दू कहलानेवालो का। दोनों ही एक माता की सन्तान हैं।

रह गई उन मुसलमानों की वात जो वाहर से आये हैं। ऐसे मुसलमान वहुत थोडे तो हैं ही, साथ ही उनमे भी शायद ही कोई ऐसा मुसलमान हो जिसका सम्बन्ध हिन्दू रक्त से न हो या इनेगिने ही होंगे। सम्राट् अकवर के वाद मुगल वादशाहों में भी आधे से ज्यादा हिन्दू रक्त पहुच गया था जो पीढी दर पीढी वढता ही गया।

मनुष्य ने अपनी समाज-रचना से चाहे जो कुछ व्यवस्था वनाई हो लेकिन कुदरत ने तो चलते फिरते प्राणियों को मातृवशी ही वनाया है अर्थात् इनमें जातिभेद मादा के अनुसार वनता है नर के अनुसार नहीं। जमीन में जैसे आप गेहूं चना आदि के भेद से जुदी जुदी जाति के झाड पैदाकर सकते हैं वैसे गाय भैंस या नारी में नर के भेद से जुदी जुदी तरह के प्राणी पैदा नहीं कर सकते, वहा मादा की जाति ही सन्तान की जाति होगी।

ऐसी हालत मे हिन्दू माताओ से पैदा होनेवाले मुसलमान भी जाति से हिन्दू ही रहे, धर्म से भले ही वे मुसलमान कहलाते हों। इस प्रकार वाहर से आये हुए मुसलमान भी कुछ पीढियों मे पूरी तरह हिन्दू जाति के वन गये हैं। इसलिये यह कहना कि मुसलमान वाहर के है और हिन्दू यहा के हैं विलकुल गलत है। दोनों एक हैं - दोनों के पुरखे एक है - जाति एक है - देश एक है। इसलिये अरवी या हिन्दुस्थानी होनेसे हिन्दू मुसलिम मेलको अस्वाभाविक वतलाना ठीक नहीं।

१० लिपिभेद

कहा जाता है कि हिन्दुओं की लिपि देवनागरी है और मुसलमानो की फारसी, अब दोनों में मेल कैसे हो ?

यह एक नकली झगडा है। इसलाम का मूल अगर अरब में माना जाय तो अरबी को महत्ता मिलना चाहिये फारस तो इसलाम के लिये ऐसा ही है जैसा कि हिन्दुस्थान। फारस में हिन्दुस्थान की या हिन्दुस्थान में फारस की लिपि को इतनी महत्ता क्यों मिलना चाहिये।

खैर, मिलने भी दो, पर न तो नागरी हिन्दुओं की लिपि है न फारसी मुसलमानों की। बगाल के हिन्दू नागरी पसन्द नहीं करते, मद्रास तरफ भी हिन्दू नागरी नहीं समझते खास तौर से जिनने सीखी है उनकी बात दूसरी है, उधर पंजाब तरफ के हिन्दू नागरी की अपेक्षा फारसी का उपयोग ही अच्छी तरह करते हैं और मध्यप्रान्त के मुसलमान फारसी लिपि नहीं समझते। इस प्रकार भारत में अगर फारसी लिपि को स्थान मिला है तो वह प्रान्त के अनुसार मिला है न कि जाति के अनुसार। इसलिये इन्हें हिन्दू मुसलमानों के भेद का कारण बनाना भूल है।

अच्छी बात तो यह है कि सर्वगुणसम्पन्न कोई ऐसी लिपि हो जिसमें लिखने और पढने में गडबडी न हो छपाई का सुभीता हो सरल भी हो। देवनागरी में भी इस दृष्टि से बहुत सी कमी है वह दूर करके या और किसी अच्छी लिपि का निर्माण करके उसे राष्ट्र लिपि मानलेना चाहिये।

पर जब तक लोगों के दिल अविश्वास से भरे हैं तब तक

के लिये यह उचित है कि नागरी और फारसी दोनों ही राष्ट्र लिपि-यॉं मानली जॉय। हरएक शिक्षित को इन दोनों लिपियों के पढने का अभ्यास होना चाहिये और लिखना वही चाहिये जिसका पूरा अभ्यास हो। कुछ दिनों बाद जब जाति का घमड न रह जायगा तब जिसमें सुभीता होगा उसीको हिन्दू और मुसलमान दोनों अपनालेंगे।

११ भाषाभेद

लिपि की अपेक्षा भाषा का सवाल और भी सरल है जब-र्दस्ती उसे जटिल बनाया जाता है। लिपि तो देखने में जरा अलग मालूम होती है और उसमें सरल कठिन का भेद नहीं किया जा सकता पर भाषा तो हिन्दी उर्दू एक ही है। दोनों का व्याकरण एक है क्रियाए एक हैं अधिकाश शब्द एक हैं, कुछ दिनों से सस्कृत-वालों ने सस्कृत शब्द बढाने शुरु किये, अरबी फारसीवालों ने अरबी फारसी शब्द, बस एक भाषा के दो रूप होगये और इसपर हम लडने लगे। हम दया कहें कि मिहर, इसीपर हमारी मिहरबानी और दयालुता का दिवाला निकल गया, प्रेम और मुहब्बत में ही प्रेम और मुहब्बत न रहीं।

भाषा तो इसलिये है कि हम अपनी बात दूसरो को समझा सकें, बोलने की सफलता तभी है जब ज्यादा से ज्यादा आदमी हमारी बात समझें अगर हमारी भाषा इतनी कठिन है कि दूसरे उसे समझ नहीं पाते तो यह हमारे लिये शर्म और दुर्भाग्य की बात है। जब मैं दिल्ली तरफ जाता हू तब व्याख्यान देने में मुझे कुछ शर्म सी मालूम होने लगती है। क्योंकि मध्यप्रान्त निवासी होने के

कारण और जिन्दगी भर संस्कृत पढाने के कारण मेरी भाषा इतनी अच्छी अर्थात् सरल नहीं है कि वहा के मुसलमान पूरी तरह समझ सकें। इसलिये मैं कोशिश करता हू कि मेरे बोलने में ज्यादा संस्कृत शब्द न आने पावें, इस काम में जितना सफल होता हू उतनी ही मुझे खुशी होती है और जितना नहीं हो पाता उतना ही अपने को अभागी और नालायक समझता हू। मुझे यह समझमें नहीं आता कि लोग इस बात में क्या बहादुरी समझते हैं कि हमारी भाषा कम से कम आदमी समझें। ऐसा है तो पागल की तरह चिल्लाइये कोई न समझेगा, फिर समझते रहिये कि आप बड़े पंडित हैं।

हरएक बोलनेवाले को यह समझना चाहिये कि बोलने का मजा ज्यादा से ज्यादा आदमियों को समझाने में है। पागल की तरह बेसमझ की बातें बकने में नहीं।

हॉ, सुननेवालों को भी इतना खयाल रखना चाहिये कि हो सकता है कि बोलनेवाला सरल से सरल बोलने की कोशिश कर रहा हो पर जिन शब्दों को वह सरल समझ रहा हो वे अपने लिये कठिन हो उसका भाषा-ज्ञान ऐसा इकतरफा हो कि वह ठीक तरह से हिंदुस्थानी या सरल भाषा न बोल पाता हो तो उसकी इस बेबशी पर हमें दया करना चाहिये। बिना समझे घमण्डी या ऐसा ही कुछ न समझना चाहिये।

और बातों में लड़ाई हो तो समझ में आती है पर भाषा में लड़ाई होने को कैसे समझें? भाषा से ही तो हम समझ सकते है। इसलिये चाहे लड़ना हो चाहे मिलना हो पर भाषा तो ऐसी ही बोलना पड़ेगी जिससे हम एक दूसरे की गाली या तारीफ

समझ सकें ।

१२ धार्मिक उदारता

हिंदूधर्म और इस्लाम दोनों ही उदार हैं और इस विषयमे साधारण हिंदू समाज और मुसलमान समाज भी उदार है । पर मुश्किल यह है कि एक दूसरे को समझने की कोशिश नहीं करते । हिंदूधर्म में तो साफ कहा है—

'यद्यद्विभूतिमत्तत्त्वम् मत्तेजोंशसम्भवम्'

जितनी विभूतियाँ हैं वे सब ईश्वर के अंश से पैदा हुई है। इसलिये हिन्दू दृष्टि में तो किसी भी धर्म के देव हों हिन्दू से वन्दनीय हैं। साधारण हिन्दू का व्यवहार भी ऐसा होता है । उस व्यवहार में विवेकरूपी प्राण फूँकने की जरूरत अवश्य है पर उसमें उदारता अवश्य है । इस्लाम के अनुसार तो हर कौम और हर मुल्क में खुदा ने पैगम्बर भेज है और उनका मानना हरएक मुसलमान का फर्ज है इसलिये साधारणतः मुसलमान किसी धर्म के महात्माओं का खण्डन नहीं करते, ऐसे मुसलमान कवियों की संख्या कम नहीं है जिनने श्रीकृष्ण आदि की स्तुति में पन्ने भरे हैं। दुर्गा और भैरव तक के गीत गाने में मुसलमान कवि किसी से पीछे नहीं हैं पर दुख इस बात का है कि बहुत कम हिन्दुओं को इस बात का पता है । मुसलमानों में धार्मिक उदारता कम नहीं है । हाँ, राजनैतिक चाल-बाजियों ने अवश्य ही कभी कभी अनुदारता का नंगा नाच कराया है पर साधारण मुसलमान उदार है । जरूरत है एक दूसरे के समझने की ।

१३ नारी अपहरण

बहुत से लोगों की शिकायत है कि मुसलमान लोग हिन्दू नारियों का अपहरण करते है। अपहरण से यहाँ फुसलाना आदि भी समझ लिया जाता है। पर इस विषय में हिंदू मुसलमानों में उन्नीस बीस का ही अन्तर है। ऊँची श्रेणी के मुसलमान और ऊँची श्रेणी के हिन्दू दोनों ही नारी-अपहरण नहीं करते। बाकी हिन्दू और मुसलमानों में अपहरण होता है। जिन लोगों में तलाक का रिवाज है और आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है उन लोगों मे इस तरह अपहरण होते हैं। हा, यह बात अवश्य है कि मुसलमान लोग मुसलमान और हिन्दू कहीं से भी अपहरण करते हैं जबकि हिन्दू हिन्दुओं में से ही खासकर अपनी जाति मे से ही अपहरण करते है। इसका कारण हिन्दुओं का जातीय सकोच है– अपहरण-वृत्ति का अभाव नहीं। इसका इलाज मुसलमानों को कोसना नहीं है किंतु अपनी क्षुद्र जातीयता का त्याग करना है।

हिन्दुओं में बहुत-सी जातिया ऐसी हैं जिनमें विधवाओ को दूसरा विवाह करने की मनाई है – ऐसी विधवाए जब ब्रह्मचर्य से नहीं रह पातीं तब वे भ्रष्ट हो जाती है उस समय प्राय. हिन्दू जातियों मे उसे स्थान नहीं मिलता तब वे राजी खुशी से मुसलमान होना पसन्द कर लेतीं हैं। हिन्दू लोग अगर क्षुद्र जातीयता का त्याग कर दें और विधवा-विवाह का विरोध दूर कर दें तो नारी अपहरण की घटनाए न हो सकें।

फिर भी अगर कभी ऐसी घटना हुई हो जहा किसी नारी के साथ अत्याचार हुआ हो तो वहा सामान्य नारी रक्षण की दृष्टि

से प्रयत्न करना चाहिये। नारी अपहरण का दोष किसी जाति के मत्थे न मढना चाहिये। साधारणत यही कहना चाहिये कि उस गुंडे ने या उन गुंडोंने ऐसा काम किया है।

जब तक हिन्दू मुसलमानों के दिल साफ नहीं हैं तभी तक यह झगडा है और बात बात में एक दूसरे पर शका होने लगती है। इसका फल यह होता है कि जब अत्याचार गौण और जातीय द्वेष मुख्य बन जाता है तब ऐसे लोग भी साथ देने लगते हैं जो अत्याचार से घृणा करते हैं किन्तु जातीय अपमान सहन नहीं कर सकते। इससे समस्या और उलझ जाती है। इसलिये ऐसी घटनाओं को जातीय रग में न रँगना चाहिये। सार बात यह है कि जब दोनों के मन का मैल धुल जायगा और हिन्दू लोग अपनी जातीय सकुचितता और पुनर्विवाहविरोध दूर कर देंगे तो नारी-अपहरण की समस्या बिलकुल हल हो जायगी। एक दूसरे के साथ घृणा प्रगट करने से वह समस्या हल नहीं होसकती।

१४ छूत अछूत

मुसलमानों की यह शिकायत है कि हिन्दू उन्हें अछूत समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुओं में छूत-अछूत की बीमारी है पर इसका उपयोग वे मुसलमानों के साथ कुछ विशेषरूप में करते हैं यह बात नहीं है। हिन्दू भगी चमार बसोर महार आदि हिन्दुओं को जितना अछूत समझते हैं उतना मुसलमानों को नहीं। बल्कि मुसलमानों को अछूत समझते ही नहीं। हां, उनके साथ नहीं खाते पीते, सो तो वे एकधर्म एक वर्ण के लोगों के साथ भी नहीं खाते पीते। इस विषय में मुसलमानों के साथ खास घृणा नहीं की जाती।

हिन्दुओं की दृष्टि मे तो हिन्दुओ की हजारों जातियों के समान मुसलमान भी एक जाति है ।

छूत अछूत के प्रश्न में हिन्दू मुसलमानो को मिलाने की इतनी ज़रूरत नहीं है जितनी हिन्दू हिन्दू को मिलाने की । इस बात को लेकर हिन्दू मुसलिम द्वेष के लिये कोई स्थान नहीं है ।

इस प्रकार और भी बहुत सी छोटी छोटी बातें मिलेगी पर ऐसी सैकडों बाते तो एक मा बाप से पेदा हुए दो भाइयों में भी पाई जातीं हैं पर इससे क्या वे भाई भाई नहीं रहते ? हिन्दू मुसलमान भी इसी तरह भाई भाई है ।

नासमझी से या स्वार्थी लोगों के बहकाने से एक दूसरे पर अविश्वास पैदा हो रहा है और दोनों ऐसा समझ रहे हैं मानों एक दूसेर को खाजायगे । इसी झूठे भय से कभी कभी एक दूसरे का सिर फोड देते हैं । पर क्या हजार पाचसौ हिन्दुओं के मरने से या हजार पाचसौ मुसलमानों के मरने से हिन्दू या मुसलमान नष्ट होजाँयगे ?

सन् १९१८ में इन्फ्लुएजामे एक करोडसे भी अधिक आदमी मर गये थे फिर भी जब बाद में मर्दुमशुमारी हुई तो पहिले से साठ लाख आदमी ज्यादा थे । उस इन्फ्लुएजा से ज्यादा तो हम एक दूसरे को नहीं मार सकते फिर कैसे एक दूसरे को नष्ट कर देंगे।

हिन्दू सोचे कि हम मुसलमानों को मार भगायेंगे तो यह असम्भव है । जिस दिन मुट्ठी भर मुसलमान हिन्दुस्थानमें आये उस दिन हिन्दू स्वतन्त्र शासक होकर भी नहीं भगा सके या नष्टकर सके अब आज खुद गुलाम होकर आठ करोड मुसलमानों को क्या

भगायेंगे ? यदि मुसलमान सोचें कि हम हिन्दुओं को नेस्तनाबूद कर देंगे तो जिन दिनों उनके हाथ मे हिन्दुस्थान की बादशाहत थी उन दिनो वे हिन्दुओं को नेस्तनाबूद न कर सके तो आज खुद गुलाम होकर वे क्या हिन्दुओं को नेस्तनाबूद करेंगे।

दोनो मे से एक भी किसी दूसरे को नेस्तनाबूद नहीं कर सकता। हाँ, दोनो लडकर आदमियत को नेस्तनाबूद कर सकते है शैतान बनकर इस गुलजार चमन को दोजख बना सकते हैं।

पाकिस्तान

कुछ लोग हिन्दू मुसलमानों के झगडों को निपटाने के लिये पाकिस्तान की योजना सामने लाने लगे है। अगर पाकिस्तान से भलाई होती हो तो किसी को भी उसके बनाने में इतराज नहीं है। पर हिन्दू मुसलमान इस तरह देश भर में फैले हुए है कि उनकी वस्ती अलग अलग करना असभव है। पाकिस्तान में भी हिन्दुओ को रहना होगा और हिन्दुस्तान में भी मुसलमानों को। दोनों के स्वार्थ जैसे आज एक हैं वैसे कल भी एक रहेंगे। पर शायद उस दिन हिन्दू समझेंगे कि अब हम स्वतंत्र है मुसलमान समझेंगे कि हम स्वतत्र हैं जब कि वास्तव में दोनो के दोनो गुलाम रहेंगे। कदाचित् घमड में आकर अल्पमत कौम को दवाना चाहे तो दूसरी जगहके लोग उसका वदला लेंगे इस प्रकार वैर वैर को वढाता जायगा न पाकिस्तानवाले खुशहाल होंगे न हिन्दुस्थानवाले। अपने पाप से फूट से अन्याय से गुलाम रहेंगे वर्बाद होंगे।

अन्त में वहा भी मिलकर दोनों को एक बनना होगा इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है तो उसके लिये अभी और यहीं प्रयत्न

क्यो न किया जाय। एक ही नस्लके और एक ही देश के रहने वाले भाई सदा के लिये विछुडकर वैर मोल क्यो ले?

चुनाव

दोनो भाइयो के अविश्वास का एक परिणाम यह है कि कौंसिलों आदि मे जुदा जुदा चुनाव किया जाता है। सरकार की यह नीति किसी तरह समझमें नहीं आती। इससे दोनो ओर भी अधिक विछुडे है और स्वरक्षामें भी कुछ लाभ नहीं हुआ है। अगर कहीं हमारी सख्या दस फीसदी है और हमने लड झगड़कर पन्द्रह सीटें ले ली और उनको हमने ही चुना, मेम्बरो को दूसरे लोगों से कुछ मतलब ही न रहा तो इसका फल यह होगा कि जैसे हमारे पन्द्रह मेंबर दूसरों से कोई ताल्लुक नहीं रखते उसी प्रकार दूसरे पचासी मेम्बर भी हमसे कोई ताल्लुक नहीं रक्खेंगे। दस के पन्द्रह मेम्बर लेलेने पर भी हमारा बहुमत तो हुआ नहीं और जो बहुमत के मेम्बर आये उनसे हमारी जान पहिचान भी एक वोटर के नाते नहीं हुई। ऐसी हालत में वे मनमानी करना चाहें तो हमारे दस के बदले पन्द्रह मेम्बर क्या करलेंगे। इसकी अपेक्षा यही अच्छा है कि हम जनसख्या के अनुसार ही अपने मेम्बर चाहे और सम्मिलित चुनाव करें। दूसरे मेम्बरो के चुनाव में हमारा हाथ हो और हमारे मेम्बरों के चुनाव में दूसरों का हाथ हो। इसका परिणाम यह होगा कि हरएक मेम्बर को दोनों जाति के वोटरो से काम पडेगा इसलिये धारासभाओं में कट्टर मुसल्मान और कट्टर हिन्दू न पहुँचकर उदार मुसल्मान और उदार हिन्दू पहुचेंगे।

अल्पमत बहुमत तो जहा जिनका है वहा उन्हीं रहेगा, पर एक दूसरे की पर्वाह न करनेवाले और फूट फैलने ही अपनी इज्जत समझनेवाले मेम्बर न रहेंगे। इसी मे हिन्दू मुस मान दोनो की भलाई है।

उपसंहार

यह नाग-यज्ञ नाटक इसीलिये लिखा गया है कि हम इ हास से सबक लें। हिन्दू मुसलमान दोनों मिलकर एक देश एक कौम के बनें और मनुष्यता की ओर आगे बढे।

अन्त में हिंदू और मुसलमान दोनों से मेरी प्रार्थना है वे अब अलग अलग होने की कोशिश न करें। एक दूसरे उत्सवों में, त्यौहारों में, धर्म क्रियाओं में मिलने की कोशिश करें दोनो मिलकर मदिरों का - दोनों मिलकर मस्जिदों का उपयोग अपने को एक ही नस्ल का समझें। अन्त में दोनों मिलकर तरह एक हो जाँय कि बडा से बडा शैतान भी दोनों को न सके।

हिन्दू मुस्लिम मेल हुए विना कोई भी चैन से नहीं सकता इसलिये वह कभी न कभी होकर ही रहेगा। पर जितनी देर लगायेंगे उतने दिनों तक दोजख के दु:ख भोगते र इसलिये जल्दी से जल्दी हमें मेल की कोशिश करना चाहिये मेल करने का एक भी मौका न छोड़ना चाहिये।

सत्याश्रम, वर्धा. —दरबारीलाल सत्यभ

कथावस्तु

नाग-यज्ञ की कथा महाभारत के आदिपर्व से ली गई है। महाभारत की कथा में कुछ पौराणिक ढग है इसलिये वह कहीं कहीं अतिशयोक्तिपूर्ण और अस्वाभाविक बन गई है। नाटक मे उस भाग को स्वाभाविक रूप दिया गया है, साथ ही मनोवैज्ञानिक चित्रण भी कुछ विशेष किया गया है।

स्थानाभाव, से और कुछ अनावश्यक होने से भी, महाभारत की कथा यहा ज्यो की त्यों नहीं दी जाती, सिर्फ कुछ बातो का खुलासा किया जाता है जिससे पाठक समझ सके कि महाभारत के कथानक मे और नाटक के कथानक मे क्या अन्तर है और जो परिवर्तन किया गया है वह कितना उचित है—

१—महाभारतमें नागोका वर्णन कहीं एक दिव्य प्राणीके रूप मे आया है जो इच्छानुसार कीट, पतग, मनुष्य, सर्प आदि वेष धारण करते है - कहीं साधारण सांपो के रूप में आया है। पर इस नाटक में नागवंश को मनुष्यवंश मान लिया गया है उन्हें सर्प नहीं माना गया। क्योंकि उनका शादी-व्यवहार आर्यो के साथ हुआ है उससे मनुष्य सन्तान पैदा हुई है - उनकी राज्य-व्यवस्था बोलचाल मनुष्यो सरीखी है। नागयुवक परीक्षित के दरबार में आर्य ऋषि के वेश मे गये हैं इससे उनका हर तरह मनुष्य होना निश्चित है इसलिये नागयज्ञ में जो नाग जलाये गये वे नाग नामक जाति के मनुष्य थे साप नहीं।

२—आर्य और नागों का झगड़ा काफी पुराना था और

ऐसा मालूम होता है कि आर्य बहुत पहिले से चाहते थे कि नाग लोगों को पशुओ की तरह यज्ञ में जिंदा जलाया जाय। जनमेजय के पूछने पर ऋत्विकों ने कहा कि 'पुराणों में नाग-यज्ञ नामक एक महान यज्ञ है देवताओं ने आपही के निमित्त उस यज्ञ को रचा है, पौराणिक लोग कहते हैं कि आपके विना कोई दूसरा राजा उस महायज्ञ का अनुष्ठान न कर सकेगा। हे महाराज, हम लोग भी उसके नियमों से परिचित है।'

इससे पता लगता है कि नागयज्ञ का कार्यक्रम पुराना था और उसका विधान भी बन चुका था परन्तु जनमेजय के पहिले इतनी क्रूरता और कोई नहीं दिखा सका था।

३—महाभारत के अनुसार हजारों लाखो नाग मत्र से खींच-कर बुलाये जाते थे और आग में डाले जाते थे। सैकडो कोसों से पकडकर आग में डालने की शक्ति मुँह से निकले शब्द में है यह इतिहास या विज्ञान के अनुसार नहीं है। इससे सिर्फ इतना ही पता लगता है कि नाग लोगों से युद्ध नहीं किया जाता था किन्तु किसी उपाय से उन्हें पकडा जाता था। वह उपाय नागबस्तियों पर छापा मारने के सिवाय और कुछ नहीं मालूम होता इसलिये नाटक मे इसे ही लिया गया है।

४—महाभारत में जरत् का नाम जरत्कारु है और उनकी पत्नी का नाम भी जरत्कारु है इस नामसाम्य का न तो उचित कारण है न इसकी उपयोगिता, इसलिये नाटक में पतिका नाम जरत् और पत्नी का नाम कारु बनादिया गया है। इस प्रकार जरत्कारु एक व्यक्ति का नहीं दम्पति का नाम बन गया है।

५—महाभारत में जरत् ऋषि क्रोधी और घमंडी हैं पत्नी को गर्भवती छोड़कर और उसका तिरस्कार करके चले गये हैं। नाटक में जरत् विनीत और लोकसेवी चित्रित किये गये हैं और लोकसेवामें ही उनके जीवन का अन्त दिखलाया गया है।

६—आर्यावर्त और त्रिविष्टप के सम्बन्ध में नाटक मे कुछ ऐतिहासिक प्रकाश डाला गया है या शास्त्रों के पौराणिक रूपको ऐतिहासिक सरीखा स्वाभाविक बनाया गया है।

इस प्रकार के कुछ और छोटे छोटे परिवर्तन किये गये है। कड़ी जोड़ने के लिये तथा बात को साफ करने के लिये कुछ साधारण पात्र नये भी लिये गये हैं।

हां, मूल कथानक में ऐतिहासिक दृष्टि से जो सार ग्रहण करने योग्य है उसमें कोई अन्तर नहीं आने दिया गया है।

—द. ला. सत्यभक्त

इतना अवश्य करें

१– अगर आप मनुष्य मात्र को एक जाति मानते हो, सब धर्मों में समभाव रखकर सबसे उचित लाभ उठाना चाहते हो, सामाजिक जीवन में जरूरी परिवर्तन करना चाहते हो और इसके लिये एक संगठन की जरूरत समझते हो तो सत्यसमाज के सदस्य अवश्य बनिये और सत्यसमाज के प्रचार में तनमनधन से सहायता कीजिये।

२– अपने गांव में सत्यसमाज का एक धर्मालय अवश्य बनाइये जो मनुष्यमात्र को दर्शन करने के लिये खुला रहता है जिसमें भ. सत्य, भ. अहिंसा और राम कृष्ण महावीर बुद्ध जरथुस्त ईसा आदि महात्माओं की मूर्तियाँ और कुरानशरीफ की पुस्तक या मक्काशरीफ की आकृति विराजमान रहती हैं।

ऐसा धर्मालय वर्धा स्टेशन के पास बोरगांव की हद में सड़क के किनारे सत्याश्रम में बना है आकर दर्शन कीजिये।

३–सप्ताह में एकदिन ऐसा अवश्य रखिये जब हिन्दू मुसल्मान आदि सब मिलकर सब धर्मों और जातियोंमें मेल बढ़ानेवाली प्रार्थनाएँ, स्वाध्याय, चर्चा या व्याख्यानादि कर सकें।

४–दूसरे धर्मवालों के धार्मिक उत्सवों में आदर के साथ शामिल होने की कोशिश कीजिये।

—दरबारीलाल सत्यभक्त

समर्पण

नागयज्ञ-निरोधक ऋषिकुमार

श्री आस्तीक मुनिकी

सेवा मे

ऋषिवर,

एक ही देश में रहने पर भी सहज वैरी की तरह परस्पर लड़नेवाले आर्य और नागों के दिलों में आपने जो प्रेम का बीज बोया वह समय पाकर खूब ही फला फूला, इस देश मे एक संस्कृति एक धर्म का निर्माण हुआ । पर आज वैसी ही परिस्थिति फिर आगई है, हिन्दू और मुसलमान एक ही नस्ल के और एक ही देश के होकर भी आपस में शत्रु बने हुए हैं और इसीसे गुलामी के जालमे फँसे हुए हैं । इनको इतिहास से कुछ सबक सिखाने के लिये आप बहुत ही योग्य गुरु है । इसलिये यह नाटक, जो आपके और आपके मातापिता के जीवन की सफलता की कहानी है, आपकी सेवा में अर्पण करता हूं ।

आपकी मानवता का पुजारी—

दरबारीलाल सत्यभक्त

नाग-यज्ञ

[पहिला अंक]

गीत १

(पटोत्थान-मङ्गलगान)

आओ मनुष्य बन जावें गावें मनुष्यता का गान ।
हम भूलें गोरा काला ।
जग हो न रग-मतवाला ।
हम पियें प्रेम का प्याला ।
हम देखें मन का रग और मुख के ऊपर मुसकान ।
आओ मनुष्य बन जावें गावें मनुष्यता का गान ॥१॥

हम जातिपाँति सब तोड़ें ।
हम सब से नाता जोड़ें ।
हम मत-मदान्धता छोड़ें ।
हों आर्य नाग या देव द्रविड सबका हो एक निशान ।
आओ मनुष्य बन जावें गावें मनुष्यता का गान ॥२॥
हमने मानव-तन पाया ।
पर मानवपन न दिखाया ।

औदार्य विवेक गँवाया ।
हम मनुष्यता के बिना बने पंडित पूरे नादान ।
आओ मनुष्य बन जावें गावें मनुष्यता का गान ॥३॥

हो सारा विश्व हमारा ।
सबसे हो भाईचारा ।
हम चलें प्रेम के पथ प्रेम का हो घर घर सन्मान ।
आओ मनुष्य बन जावें गावें मनुष्यता का गान ॥४॥

पहिला दृश्य

[वन मे मुनि शमीक बैठ हैं। राजा परीक्षित का धनुष-बाण लिए हुए प्रवेश]

परीक्षित—ब्रह्मन्, बाण खाया हुआ कोई मृग यहासे निकला है ?

(मुनि मौनव्रती होने से कोई उत्तर नहीं देते)

ब्रह्मन, क्या आपने मेरा कहना नहीं सुना ? मैं राजा परीक्षित हूँ और पूछ रहा हू कि कोई बाण खाया हुआ मृग यहा से निकला है ?

नहीं सुनते ? देखिये आप मेरा अपमान कर रहे हैं। क्या आपके मुँह नहीं है ? गला नहीं है ? या गला रुँध गया है ? किसी ने गला जकड दिया है ?

(पास मे एक मरा हुआ सर्प दिखाई देता है उसे देखकर)

ठहरिये, अभी तक आपका गला जकडा हुआ नहीं है पर अब मै जकडे देता हू। जिस गले से आवाज ही नहीं निकलती उसके रहने का क्या उपयोग है ?

(मरे हुए सर्प को बाण से उठाकर मुनि के गले मे डाल देता है और चारो तरफ से लपेट कर राजा चला जाता है । कृश नामका एक तापस कुमार छुपे छुपे ये सब कार्य देख रहा था पर डरपोक होने से आगे न आ सका था। राजा के चले जाने पर निकल आता है)

कृश—धत् तेरे राजाकी, राजा है कि राक्षस? हमारे गुरुजी के गले में साप डाल दिया । अरे गुरु जी, गुरु जी, गले मे साप लिपट गया है, मौन व्रत छोडिये, साप निकाल फेंकिये । अच्छा, आप नहीं निकालते तो मैं ही निकाल देता हू । [पास जाकर] अरे बापरे काला है काला । कहीं जिन्दा निकला या मेरे हाथ लगाने से जिन्दा हो गया तो? ना, ना, मै हाथ नहीं लगाता कहीं जिन्दा हो गया तो हमारे गुरुजी को ही डस लेगा अब तो शृंगी भैया को ही समाचार देना चाहिये।

[प्रस्थान और पटाक्षेप]

दूसरा दृश्य

[एक तरफ से शृंगी का प्रवेश और दूसरे तरफ मे कृश का प्रवेश । कृश दौड़ता हुआ आता है और हाँफता हाँफता कहता है—]

शृंगी भैया, शृंगी भैया, गजब हो गया गजब हो गया।

शृंगी—क्या हो गया रे?

कृश—कुछ मत पूछो! गुरुजी के गलेमें साँप! बड़ा भारी! काला!

शृंगी—कैसे पहुँचा?

कृश--पहुँचा नहीं, पहुँचाया गया । साप की क्या ताकत थी जो मेरे रहते गुरुजी के गले में पहुँच सके ।

शृंगी--फिर किसने पहुँचाया ?

कृश--एक राजाने । राजा क्या राक्षस था । मूर्ख, दुष्ट, क्रूर, गधा, घोडा, उल्लू ।

शृंगी--पर तूने उसका नाम नहीं पूछा ?

शृंगी--नाम ! मैं उसका नाम पूछता ? ऐसे नीच राक्षस से मै बात करना भी पसन्द नहीं करता । क्या उसका इतना पुण्य था कि मुझ सरीखा ऋषि उससे बात करता ?

शृंगी--चल, चल, रहने दे अपना ऋषिपन ! डरके मारे निकला भी नहीं गया और इधर अपना ऋषिपन बघारता है ।

कृश--अच्छा डर ही सही, डर ही सही, डर भी चार सज्ञाओ में आहार निद्रा की तरह एक सज्ञा है । वह कोई बुरी चीज नहीं है । खैर, मैने अपनी चतुराई से उसका नाम तो जान ही लिया ।

शृंगी--कैसे जाना ?

कृश--वह गुरुजी से कह रहा था--ब्रह्मन, मै राजा परीक्षित हू और पूछता हू कि कोई बाण खाया हुआ मृग यहा से निकला है ? बस मैने उसका नाम जान लिया और तभी से इस चतुराई के साथ उसका नाम रट रहा हू कि अभी तक याद है ।

शृंगी--वाहरी चतुराई, पर उस दुष्टने सर्प डाल क्यों दिया ?

कृश--हरिण की बात उसने पूछी, मगर गुरु जी का मौनव्रत था इसलिये वे बोले नहीं। वह दुष्ट राजा बोला-मालूम होता है कि तुम्हारा गला रुँध गया है अगर न रुँधा हो तो मैं रूँध देता हूँ। ऐसा कहकर उसने बाण से एक मरा हुआ सर्प उठाया और गुरुजी के गले में लपेट दिया।

शृंगी--हुं, यह बात! इतना राजमद? ऋषि का इतना अपमान! इसके बदले उसे प्राणों से हाथ धोना पडेगा।

कृश--जरूर हमारे गुरुजी के गले में साप डालकर क्या पानी से ही हाथ धोता रहेगा उसे प्राणों से हाथ धुलवाना चाहिये।

शृंगी--अच्छा, तू घर जा। मैं जरा बाहर जाता हूं।

(दोनों का प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

[नागों की सभा—नागराज वासुकी की अध्यक्षता में तक्षक आदि नागनता बैठे हैं नागकन्याएं गाती हैं]

गीत २

हमने निश्चल प्रण ठाना है।
हमको स्वतन्त्र बन जाना है॥
पृथ्वी का भार हटायेंगे।
दुश्मन का रक्त बहायेंगे।

हम मारेंगे मर जायेंगे ।
पर वश न किसी के आयेंगे ।
मिटना है या कि मिटाना है ।
हमको स्वतन्त्र बन जाना है ।

दुश्मन का नाम मिटायेंगे ।
या अपने प्राण गँवायेंगे ।
हम ऐसा खेल खिलायेंगे ।
उनके सिर गेंद बनायेंगे ।
प्राणों की होड लगाना है ।
हमको स्वतन्त्र बन जाता है ॥

अपना अधिकार न छोडेंगे ।
जर्जर हाथ को तोडेंगे ।
दुश्मन का गला मरोडेंगे ।
अथवा उस का सिर फोडेंगे ।
हमको मनुष्य कहलाना है ।
हमको स्वतन्त्र बन जाना है ।

वासुकि–भाइयो, आर्योंको इस देश में आये सैकडों वर्ष व्यतीत हो गये । वे यहा पर घर बना कर बस गये है अनेक कठिन अवसरो पर हमने उन्हें मदद की है पर आज भी आर्यो के अत्याचार बन्द नहीं हुए हैं । उन लोगों ने जातीय दृष्टि से हमें नीच मानने की धृष्टता की है । वे लोग अपने संगठित पशुबल के कारण ऐसे उन्मत्त हो गये है कि उनकी मनुष्यता नष्ट हो गई है । वे

इस देश में आये हैं बस गये हैं तो बसे रहें। पर वे हमारे बराबर ही बैठ सकते हैं सिर पर नहीं। वे अगर सिर पर बैठने की कोशिश करेंगे तो हम उन्हें जमीनपर गिराकर कुचल देंगे। इसकेलिये हमें दो काम करना है। पाहिला तो यह कि हम संगठित, बलवान और निर्भय बनें। दूसरा यह कि आर्यों को सभ्यता का पाठ पढ़ावें। सभ्यता, धर्म और सामाजिकता की दृष्टि से जब तक नाग और आर्य एक नहीं हो जाते तबतक न चैन से वे रह सकते हैं न चैन से हम रह सकते हैं। यह ठीक है कि उन्हें अपनी सभ्यता का घमड है पर वह दिन दूर नहीं जब सब अपनी अपनी सभ्यता का घमड छोड़कर एक नई सभ्यता का निर्माण करेंगे। उस सुदिन को देखने के लिये हमें दृढता और धैर्य के साथ प्रयत्न करना चाहिये।

तक्षक—आपका कहना ठीक है। सभ्यता का एकीकरण हम भी चाहते हैं पर मुझे विश्वास नहीं कि मदान्ध आर्य लोग इस काम में हमारे साथ सहयोग करेंगे। हम लोगों ने हर समय उन के साथ सहयोग करने की चेष्टा की पर बदले में अपमान तिरस्कार और अत्याचार ही पाया। महाभारत के युद्ध के समय हजारों नागों ने अपने प्राण बहाये पर नाग—जाति के ऊपर जैसे अत्याचार हो रहे हैं वह सब हम दिनरात देखते हैं। अब हम चुम्बन लेने के बदले उनका खून चूसेंगे।

वासुकि—भाइयो, स्वतन्त्रता के लिये हम सब मरने को तैयार हैं और जो जाति मरना जानती है उसे कोई नहीं मार सकता। फिर भी इस वस्तुस्थिति को हमें भूलना नहीं चाहिये कि आर्य लोग

काफ़ी वलवान हैं। महाभारत की क्षति उनने जल्दी ही पूरी करली है। अब तो वे देवों से भी नहीं डरते। वल से वे उन्मत्त होकर देवों की भी अवहेलना करते हैं। अब हम न तो उन्हें मार सकते न अपने देश से निकाल सकते हैं। इतना ही कर सकते हैं कि हम वरावरी के साथ वैठ सकें और सामाजिक सम्बन्ध स्थापित कर एक जातीयता का निर्माण कर सकें।

तक्षक-निर्वलता से एक-जातीयता का निर्माण न होगा। जव हम उन्हें क्षणभर चैन न लेने देंगे जब उन्हें अपनी मित्रता की कीमत मालूम होगी तभी एकता होगी। आज तो हमारा काम उन्हें परेशान करना है-उनका रक्त वहाना है।

एक नागयुवक—हम लोक छल से वल से आर्यों को नष्ट करें यही उत्तम है। आर्य राजा का सिंहासन ऐसा कण्टकाकीर्ण वना दें कि उस पर कोई वर्षों तो क्या महीनों न वैठ सके। तभी वे लोग नागजाति की मित्रता का मूल्य समझेंगे।

दूसरा युवक—हम लोगों को ऐसा युवकदल संगठित करना चाहिये जो षड्यंत्रों से आर्य राजा की, उसके क्षत्रपों की और खास खास राज्य-सञ्चालकों की हत्या करे।

तक्षक—मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूं और इस कार्य के लिये मैं आगे होकर काम करने को तैयार हूँ।

दूसरा युवक—श्रीमान तक्षक महोदय की अध्यक्षता में यह कार्य किया जाय।

वासुकि–आप लोग जो करना चाहें अवश्य करें उस कार्य को मेरा आशीर्वाद है और सहयोग है पर सास्कृतिक एकता की बात भूल न जायें।

[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल–महाराज शमीक ऋषि के पुत्र शृंगी आये हुए हैं आपसे मिलना चाहते हैं।

तक्षक–क्या बुरे समय पर आया। अभी उसे यहा आने की आवश्यक्ता नहीं है।

वासुकि–पर यह तो जान लेना चाहिये कि वे किस मतलब से आये हैं? नागजाति की सभा में आर्य ऋषि भिक्षा मागने तो आये नहीं होंगे उसका कोई न कोई गूढ आशय अवश्य होगा। इसलिये बुलाने में क्या हानि है?

तक्षक–न जाने किस छल से यहा आया होगा।

वासुकि–आर्य लोग घमडी होते हैं पर छली नहीं। अगर वे छल भी करें तो छल करने में नागजाति से पार नहीं पा सकते।

तक्षक–अच्छा तो आने दीजिये।

(शृंगी ऋषि का प्रवेश, एक आसन पर बैठ जाते हैं)

वासुकि–कहिये ब्रह्मन्, किसलिये पधारना हुआ?

शृंगी–राजा परीक्षित के अत्याचार प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं मैं इस अत्याचारी का नाश करना चाहता हूं।

वासुकि-ब्रह्मन्, आप लोग तो आर्य ऋषि हैं आपको अत्याचारों की क्या चिन्ता ? चिन्ता तो हम नाग लोगों को है जो सिर्फ नाग कहलाने के कारण अत्याचार की चक्की मे दिनरात पीसे जाते हैं।

शृंगी-नागराज, आप भूलते हैं । व्यक्ति और मनुष्य के बीच मे आर्य नाग देव द्रविड आदि भेद कोरी कल्पनाएँ हैं जो व्यक्ति ने स्वार्थ-सिद्धि के लिये बनाली हैं । व्यक्ति जब दूसरे व्यक्तियों को खाजाना चाहता है और मुह छोटा होने से खा नहीं पाता तब वह एक गिरोह बनाता है उन साथियों के बलपर दूसरो को खाता है । इसी गिरोह का नाम है जाति । दूसरे लोगों को खा चुकने के बाद वह अपने गिरोह के साथियों को खाने लगता है। सत्ता और शक्ति के आजाने पर वह अपने और पराये किसी को नहीं छोडता ।

वासुकि-ब्रह्मन्, आपका कहना है तो तीखा, पर सत्य है। व्यक्ति ने जतीयता के नामपर जो मुँह फैलाया है उससे वह भयकर और विशाल जानवर बन गया है । वह जातीयता के सहारे अत्याचारी होने पर भी अदम्य बन गया है ।

शृंगी-पर अत्याचार को मरना पडेगा और उसके साथ अत्याचारी को भी मरना पडेगा ।

वासुकि-जब आप सरीखे ऋषि अत्याचार के विरुद्ध खडे हो जाँयगे तब अत्याचार की क्या शक्ति है जो जगत में रह सके। हम लोगों के योग्य कोई सेवा हो तो आप नि सकोच कह सकते हैं।

श्रृंगी--मै राजा परीक्षित से अपने पिताजी के अपमान का बदला लेना चाहता हूं।

वासुकि--आपके पिताजी! वे तो एक महान् ऋषि हैं और आर्यों के पक्ष के प्रचण्ड समर्थक हैं। महन्, उनका कैसे अपमान किया गया?

श्रृंगी- उनके मौन व्रत से चिढकर परीक्षित ने उनके गले में साप डालदिया।

वासुकि--हर हर हर हर! यह कैसी निर्दयता! सर्पने ऋषिराजको कोई हानि तो नहीं पहुँचाई!

श्रृंगी--सर्प मरा था।

वासुकि--ओह, तब तो यह कार्य केवल अपमान की दृष्टिसे ही किया गया। जीवित सर्प डाला होता तो यह भी कहा जा सकता था कि परीक्षित ने ऋषिराजकी परीक्षा करने के लिये ऐसा किया। पर मृत सर्प डालने से तो ऋषिराज का अपमान ही हुआ है।

तक्षक--जैसे मृत सर्प को लोग घूरे पर फेंक देते हैं उसी प्रकार परीक्षित ने मृत सर्प ऋषिराज पर डाल दिया।

वासुकि--ऋषिराज को घूरे के समान समझना परीक्षित की मदान्धता है।

श्रृंगी--उस मदान्धता को मिट्टी में मिलाने के लिये मैं आपलोगों के पास आया हूं।

तक्षक--हम लोग सेवा के लिये तैयार हैं।

श्रृंगी—तो देखिये, परीक्षित की सभा में चलकर आपको उसका वध करना होगा।

तक्षक—हम प्राण देकर भी उसका वध करने को तैयार है। परन्तु परीक्षित की सभा मे पहुचना बडा कठिन है।

श्रृंगी—इसकी आप चिन्ता न कीजिये। मैं आपके साथ रहूंगा। आप लोक ऋषिकुमार के वेष मे मेरे साथ रहें। वार्तालाप के प्रसग मे अवसर पाकर आप उसका वध करे। वध का उत्तरदायित्व मैं अपने सिर पर ले लूंगा।

तक्षक—धन्य है।

श्रृंगी—अच्छा तो मै चलता हू। आप लोग तैयारी करके मेरे आश्रम मे आइये। तब तक मैं भी तैयारी करलू।

(ऋषिका प्रस्थान)

तक्षक—अच्छा हुआ। काटे से काटा निकल जायगा।

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

(ऋषि शमीक और उनके शिष्य कृश का प्रवेश)

शमीक—बेटा, अभी तक श्रृंगी नहीं आया कई दिन हो गये। मुझ मे बिना मिले ही चला गया।

कृश—मैंने बहुत कहा कि गुरुजी के दर्शन तो करलो पर

उनके ओठ फड़कने लगे और हुंकार कर बोले--हु, इतना राजमद ! अब उसे प्राणों से हाथ धोना पड़ेंगे । गुरुजी, मैं तभी से सोच रहा हूं कि प्राणों से हाथ कैसे धोये जाते होंगे ? पानी से हाथ धोने की बात तो मुझे मालूम है पर प्राणों से हाथ ! बड़े अचरज की बात है । गुरुजी, जब वह राजा प्राणों से हाथ धोवेगा तब मैं देखने जाऊगा ।

शमीक--चुप रह, क्या अपशकुन की बात बकता है ? जरा देख तो, वह दूर से कौन आता दिखाई देता है ? मुझे तो शृंगी ही मालूम होता है ।

कृश--हां, हा, शृंगी दादा ही तो हैं । चलो अच्छा हुआ । अब दादा से प्राणों से हाथ धोने की बात पूछूंगा ।

(शृंगी का प्रवेश, शमीक को प्रणाम)

शमीक--बेटा, कितने दिन लगा दिये ? आखिर कहा गया था।

शृंगी--नागराज वासुकि के यहा ।

शमीक--सो किसलिये ?

शृंगी--अपने पिता के अपमान का बदला चुकाने के लिये ।

शमीक--धन्य है बेटा, तुझे ऐसा ही चाहिये । इन नागों ने आर्यों को परेशान कर रक्खा है । ये लोग आर्य राजाओं को चैन से राज्य भी नहीं करने देते । आर्य ऋषियों को चुपचाप बैठने भी नहीं देते ।

शृंगी--जी हा, और जब आर्य ऋषि मौन में रहते हैं तब उन्हे पचासों गालिया देकर उनके गलेमें मरा साप डाल जाते है।

शमीक-बेटा, तू उस बातका विचार मत कर। राजा परीक्षित को मेरे मौन व्रत का पता नहीं था इसीलिये उसमे वह भूल हो गई।

शृंगी--यह भूल नहीं-राजमद है। ब्राह्मण का इतना अपमान! मै इसका बदला लिये बिना न न रहूगा।

शमीक--तो नागों के यहा किसलिये गया था ?

शृंगी--कहा न मैने ! बदला लेने के लिये। मैं नागों से मिल कर परीक्षित का वध कराऊगा। नागराज तक्षक स्वय अपने हाथों से उसका वध करेंगे।

शमीक--हरे, हरे, हरे, बेटा, तू यह क्या करता है ? राजा का वध! सो भी एक नाग के हाथ से! और वह भी ब्राह्मण की सहायता से ! बेटा ऐसा अनर्थ मतकर। फिर तो नाग लोग आर्यों को जिन्दा न रक्खेगे। आर्य ऋषियों को यहा रहना असम्भव हो जायगा।

शृंगी--पिताजी, मैं समझता हू जो ऋषि राजाओं की तलवार के भरोसे जिन्दा रहते हैं वे ऋषि कहलाने के योग्य नहीं। ऋषियों का बल प्रेम और सेवा है, तलवार नहीं।

शमीक--पर हम लोग तो सभी से प्रेम करते है।

शृंगी- हा, सभी से करते हैं पर नागों से नहीं। नाग क्या मनुष्य नहीं है ?

शमीक—पर वे हमसे सेवा लेना ही नहीं चाहते, हमारे प्रेम की कीमत ही नहीं करते तो हम क्या करें ?

शृंगी—सेवा लें कैसे ? आप तो सेवा के नाम पर उन्हें पीसना चाहते हैं, प्रेम के नाम पर पचाना चाहते है । आप उन्हें गुलाम समझ कर व्यवहार करते हैं पर कभी उन्हें प्रेम से आशीर्वाद दिया है ? उनके देश में आकर हम सैकडों वर्षों से बसे हुए हैं फिर भी उनसे घृणा करते हैं, उनके धर्म से घृणा करते हैं, उनकी सभ्यता से घृणा करते हैं, क्या इसी का नाम प्रेम है ?

शमीक—पर उन्हें आर्य सभ्यता के उच्च आदर्श पर लाने के लिये प्रयत्न तो करना ही चाहिये । आर्य सभ्यता और आर्य-धर्म की महत्ता को भुलाया नहीं जा सकता ।

शृंगी—तब वे लोग नाग-सभ्यता और नाग-धर्म को कैसे भुलायेंगे ? हम उनके घर में आकर भी अपनी चीज नहीं भुलाना चाहते तो वे अपने घर में रहते हुए अपनी चीज कैसे भुला देंगे ?

शमीक—पर जब अपनी चीज़ अच्छी है तो वह दूसरों को लेना ही चाहिये । भला पत्थरों को पूजनेवाले योनि और लिंग की स्थापना करके उसे शिव कहनेवाले, सर्पों को देवता समझने वाले नाग लोगों की सभ्यता भी कोई सभ्यता है ? उनका धर्म भी कोई धर्म है ?

शृंगी—और घी वगैरह पौष्टिक और स्वादिष्ट पदार्थों को अग्नि में जला डालने की मूर्खता भी कोई धर्म है ? योनि और लिंग तो

प्रकृति और परमात्मा का रूपक है आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों दृष्टियों से वह आदर्श है उसकी पूजा में क्या बुराई है ? योनि और बीज से ही जगत है तब वह शिव या कल्याणरूप न कहा जाय तो क्या कहा जाय ? पत्थर हो या मिट्टी जब तक मनुष्य के पास हृदय है तबतक उसे पूजा के लिये कोई न कोई आधार बनाना ही पडता है । चित्र देख कर जब हमारे हृदय पर प्रभाव पडता है तब मूर्त्ति देख कर क्यों न पडेगा ? पिताजी, नाग धर्म और नाग-सभ्यतामे भी ऐसी चीजें है जो हमें लेना चाहिये और अपनी सभ्यता और धर्म मे भी ऐसी चीजें हैं जो उन्हें लेना चाहिये । जब हमारा दावा है कि हमारी अच्छी चीज उन्हे लेना ही चाहिये । तब उनकी अच्छी चीज हमें लेना ही चाहिये ऐसा दावा भी क्यों न हो ?

शमीक--बेटा, तब तो तुम आर्य-धर्म और आर्य-जाति को डुबा दोगे ।

शृंगी- डूबना ही चाहिये । जब हम दूसरो की सभ्यता और धर्म को डुबाने की चेष्टा कर रहे हैं तब हमारी सभ्यता और धर्म भी डूबेंगे । भविष्य में इस देश में न आर्य रहेंगे न नाग रहेंगे । भार-तीय रहेंगे । न यहा आर्यधर्म रहेगा न नागधर्म रहेगा । भारतीय धर्म रहेगा । आर्य और नागोके सब देव ईश्वरके नाना रूपों की तरह माने जाकर एकरूप हो जायेंगे । हम सब मिलकर उन सबको पूजेंगे ।

शमीक- बेटा, अब कलियुग है सो सब कुछ होगा । अभी तो तू इतनी बात मान कि राजा परीक्षित का वध मत करा ।

शृंगी-- अपने पिता के अपमान का बदला अवश्य दूंगा ।

शमीक– तेरा पिता तो मैं हूं। जब मैं उसे क्षमा कर रहा हूँ तब तुझे क्षमा करने में क्या आपत्ति है ?

श्रृंगी–तुम क्षमा कर सकते हो तो करो पर मेरे पिता का अपमान मैं क्षमा नहीं कर सकता।

शमीक–तो क्या मैं तेरा पिता नहीं हूं ?

श्रृंगी–हो, तुम शमीक ऋषि भी हो और मेरे पिता भी हो। तुम शमीक की हैसियत से परीक्षित को क्षमा कर सकते हो पर मेरे पिता की हैसियत से क्षमा करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। मेरा पिता मेरी वस्तु है उस का अपमान मेरा अपमान है। उसका बदला मैं लेकर रहूंगा।

(उत्तेजना के साथ चला जाता है।)

शमीक–हा, भगवन् ! क्या अनर्थ होनेवाला है ? सम्भवत परीक्षित अपने पाप का फल भोगे बिना न रहेगा। बेटा कृश, तू अभी इन्द्रप्रस्थ चला जा, परीक्षित से कह दे कि नाग लोग तेरा वध करना चाहते हैं। तू सँभल कर रह, मेरा आशीर्वाद भी कह देना।

कृश—गुरुजी, मैं तो दादा के साथ जाना चाहता हूं मुझे वहां प्राणों से हाथ धोना देखना है।

शमीक—चुप रह मूर्ख, तुझे पहिले ही जाना पड़ेगा। और अभी। बोल, जायगा कि नहीं ?

कृश–जाऊंगा। [मुंह बनाता है]

[दोनों का प्रस्थान]

पाँचवाँ दृश्य

[राजा परीक्षित की सभा]

गीत ३

हम परम अभय, कृतविश्वविजय, हैं वीर आर्य सतान ।
हम भूतलपर, गिरि नगर नगर फहराते विजय निशान ॥१॥
हम पूज्य आर्य ।
कृत सुकृत-कार्य ।
हमने जीते सारे अनार्य ॥
गन्धर्व देव किन्नरी-वृन्द गा रहे हमारा गान ।
हम परम अभय, कृतविश्व-विजय, हैं वीर आर्य सतान ॥२॥
जीता त्रिलोक ।
बेरोक टोक ।
अरियों के घर छादिया शोक ॥
अरिकरि-कुम्भस्थल कर विदीर्ण गर्जे हैं सिंह समान ।
हम परम अभय, कृतविश्वविजय, हैं वीर आर्य सतान ॥३॥
भूमण्डल पर ।
थल पर नल पर ।
हिम विन्ध्याचल विदगाचल पर ।
निर्बाध चलेंगे कौन हमारा रोक सके उड़ान ।
हम परम अभय, कृतविश्वविजय, हैं वीर आर्य सतान ॥४॥

परीक्षित—' निर्बाध चलेंगे कौन हमारा रोक सके उड़ान "

वाह ! कैसा सुन्दर गान है ?-मन्त्रिन् ! यह गीत कोरी प्रशसा ही नही है इसकी एक एक पाक्ति सत्य है ।

मत्री--नरनाथ, इसमे कोई सन्देह नहीं कि हमारे पूर्वजों ने खून का पानी बना कर जिस उपवन को बनाया था उसके सुफल चखने के लिये एक चतुर माली की तरह उस बाग को आपने पानी दिया है और कूडाकर्कट उखाड़कर नष्ट कर दिया है । उपवन को नष्ट करने वाले जगली जानवर प्राणों के भय से मारे मारे फिरते हैं ।

परीक्षित--नाग लोग सिर उठाने की चेष्टा कर रहे है अवश्य, पर इस प्रयत्न में उन्हें नामशेष हो जाना पडेगा ।

मत्री--जब चींटियों की मौत आती है तब उनके पर उगते है ।

[परीक्षित उच्च स्वर से हॅसते हैं । द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल—महाराज, शमीक ऋषि के दो शिष्य द्वार पर खडे हैं वे आप के दर्शन करना चाहते हैं ।

परीक्षित--अच्छा, शमीक ऋषि ने क्या शिष्यों के मुख द्वारा शाप भेजा है ? पर देर बहुत की ।

मंत्री--कैसा शाप महाराज ?

परीक्षित-मैं एक दिन शिकार को गया था । तब शमीक ऋषि के आश्रम में पहुच कर मैंने उनसे वीसों वार प्रश्न पूछा पर उनने उत्तर भी नहीं दिया । तब मुझे क्रोध आ गया और मैं उनके गले में एक मरा साप डाल कर चला आया ।

मंत्री—महाराज, यह बहुत बुरा हुआ।

परीक्षित—पर उसका घमड तो देखो! एक सम्राट् उसके यहा आता है पर वह बात भी नहीं करता।

मंत्री—महाराज, इसका कोई दूसरा कारण भी हो सकता है।

परीक्षित—अच्छा देखा जायगा। द्वारपाल, उन दोनो को आने दो।

(शमीक ऋषि के शिष्य गौरमुख और कृश का प्रवेश)

गौरमुख—महाराज, एक गुप्त और महत्वपूर्ण समाचार कहने के लिये गुरुदेवने हमें आपके पास भेजा है।

परीक्षित—ऋषिवर ने शाप न भेज कर समाचार भेजा!

गौरमुख-गुरुदेव को विश्वस्त सूत्र से समाचार मिला है कि नागलोग आपके वध के लिये षड्यन्त्र रच रहे हैं। नागराज तक्षक थोडे ही दिनों मे अपने हाथ से आप का वध करना चाहता है इसलिये गुरुदेव ने आपको सतर्क रहने के लिये कहला भेजा है।

मंत्री-यह ऋषिराज की कृपा है कि अपने अपराधी राजा के कल्याण के लिये वे इतने सतर्क हैं।

कृश—नहीं तो क्या? नागलोग चाहते हैं कि महाराज को प्राणों से हाथ धोना पड़े जब कि हमारे गुरुजी चाहते हैं कि आप पापों से ही हाथ धोवें।

मंत्री—आपके गुरुजी धन्य हैं।

गौरमुख—गुरुदेवने यह भी कहा है कि जिस दिन महाराज आश्रम में आये थे उस दिन मेरा मौन दिवस था और मैं विचार में

लीन था इसलिये बात भी नहीं कर सकता था। नासमझी से महाराज ने जो मेरे गले में साप डाल दिया उसका मुझे जरा भी खेद नहीं है। मैं क्षमा करता हू । महाराज का कल्याण हो और वे अपनी रक्षा करके सारे भारतवर्ष पर आर्यों की विजयपताका फहराय, यही मेरा आशीर्वाद है।

परीक्षित–ऋषिकुमार, कल आनेवाली मौत आज ही आजाय और आज आनेवाली अभी, इसकी मुझे चिन्ता नहीं है पर ऋषिराज का जो मैं अपमान कर चुका हू उससे मेरा हृदय जला जाता है। मत्रीजी, मै अभी पूज्य शमीक ऋषि के आश्रम में जाऊगा। उनके पैरोंपर गिरकर क्षमा माँगूंगा और अपने पाप का प्रायश्चित लूगा।

मंत्री–महाराज, इस समय घर के बाहर निकलने में भी सकट है। ऋषिराज के सन्देश के अनुसार घर में बैठ कर नागों का षड्यन्त्र विफल करना चाहिये। षड्यन्त्र विफल होने पर आप ऋषिराज के आश्रम मे जाइयेगा।

गौरमुख–हा महाराज, यही ठीक है। गुरुदेव ने तो आपको पहिले से ही क्षमा कर दिया।

परीक्षित—ऋषिकुमार, तुम्हें धन्यवाद है। मै षड्यन्त्र को विफल करके अवश्य ऋषिराज की सेवा में उपस्थित हूगा। ओह! पश्चात्ताप से मेरा हृदय जल रहा है।

(हाथों पर सिर रखकर शोक करते है)

(पटाक्षेप)

छट्ठा दृश्य

(स्थान वन-पथ । ऋषि शृंगी और ऋषिवेश लिये हुए तक्षक आदि नागयुवकों का प्रवेश)

शृंगी—नागराज, अब हम नगर के निकट आगये । सभामें प्रवेश तो कठिन नहीं है पर वहां जाकर परीक्षित का वध करना आपके हाथ का काम है । चपलता, साहस, वीरता और निर्भयता से ही आप यह कार्य कर सकेंगे । मेरे कार्य के लिये आप जो प्राणों की बाजी लगा रहे हैं उसके लिये मैं किन शब्दों मे धन्यवाद दूं ।

तक्षक—दो दुःखी एक दूसरे का उपकार करने के लिये धन्यवाद नहीं चाहते । उनमे स्वभाव से ही मित्रता हो जाती है । आप पिता के अपमान से दुःखी है और मैं जाति के अपमान से । आर्यों ने नागों को गुलाम बना रक्खा है और हम किसी के गुलाम नहीं रहना चाहते । हां, बराबरी से व्यवहार किया जाय तो हम प्राण देकर भी मित्रता का निर्वाह करेंगे ।

शृंगी—मनुष्य मनुष्य है वह न आर्य है न नाग । ये सब व्यवहार चलाने के लिये नाम हैं । मेरा नाम शृंगी है तो इसका यह मतलब नहीं है कि शृंगी नाम के मनुष्यों को अपनी जाति का समझूं और बाकी सब से घृणा करूं । नागराज, आर्य और नाग इन नामों की दुहाई देने से समस्या पूर्ण न होगी । जब आर्य आर्य न रहेंगे, नाग नाग न रहेंगे, दोनों मिलकर भारतीय बन जाँयगे तभी समस्या पूर्ण होगी । न तो नाग नष्ट किये जा सकते हैं न आर्य इस देश से भगाये जा सकते हैं इसलिये दोनों को मिलकर

रहने में ही लाभ है।

तक्षक–ऋषिराज, अगर आप ही सरीखी बुद्धि सभी आर्यों की हो जाय तो इस देश का कल्याण हो जाय। परन्तु मुझे विश्वास नहीं कि आर्य लोग आपके इस अमूल्य सन्देश को समझेंगे। वे हमें चैन नहीं लेने देते, हम उन्हें चैन न लेने देंगे। आज परीक्षित का वध करके मैं बतादूंगा कि नागों से वैर करने का क्या फल होता है?

शृंगी—राजा परीक्षित अगर धृष्ट और अहंकारी न होता तो यह समस्या इतनी जटिल न होती। उसके पूर्वज जिस मार्ग से चलते थे उस मार्ग से उसे भी चलना चाहिये था। महाभारत में सभी तरह की अनार्य जातियां सम्राट् युधिष्ठिर को सहायता पहुंचाने आई थीं अर्जुन और भीम ने अनार्यों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किया था पर परीक्षित ने यह मार्ग छोड़ दिया। वह तो उन्मत्त होकर आर्य ऋषियों को भी सताने लगा है तब उसका वध होना ही चाहिये।

तक्षक–आपकी दया से अवश्य होगा।

[प्रस्थान]

सातवाँ दृश्य

स्थान—परीक्षित का बैठक। आसपास मंत्री तथा अंगरक्षक)

परीक्षित- मन्त्रिन, षड्यन्त्र के कोई चिह्न नजर आये?

मंत्री–षड्यन्त्र का तो कुछ पता ही नहीं लगता। नगर में तो क्या नगर के चारों ओर कई योजनों तक नाग आया हो इसका भी पता नहीं है। इस मकान के चारों तरफ दिनरात कठोर पहरा

रहता है। किसी भी नाग का यहा तक आ सकना असम्भव है।

परीक्षित—शमीक ऋषि को कुछ मिथ्या समाचार तो नहीं मिले?

मंत्री--हो सकता है कि मिथ्या समाचार ही मिले हों।

परीक्षित--और यह भी हो सकता है कि मुझे परेशान करने के लिये मिथ्या समाचार भेजे हों। मैंने शिकार को जाकर उन्हें परेशान किया और उनने एक समाचार भेज कर मेरा घर ही मेरे लिये कारागृह बना दिया।

मंत्री-शमिक ऋषि के पास गुप्तचर भेजकर इस समाचार की जाँच करता हूँ।

परीक्षित--अवश्य।

(द्वारपाल का प्रवेश और प्रणाम)

द्वारपाल--महाराज शमीक ऋषि के पुत्र शृंगी ऋषि कुछ ऋषिकुमारों के साथ द्वार पर खड़े हैं।

परीक्षित--ठीक समाचार है। अब कुछ न कुछ रहस्योद्घाटन होगा। द्वारपाल! उन्हें आने दो।

(द्वारपाल चला जाता है)

परीक्षित—मंत्रिन्, मैं समझता हूँ कि षड्यन्त्र के समाचार की असत्यता बतलाने के लिये ही ऋषिराज शमीक ने अपने पुत्र को भेजा है।

मंत्री--हाँ महाराज, मैं भी समझता हूँ कि नाग लोग इतना बिलकुल नहीं कर सकते।

[शृंगी तथा ऋषिवेषी नागों का प्रवेश]

परीक्षित—पधारिये ब्रह्मन्! कहिये, क्या आज्ञा है ?

शृंगी—पूज्य पिताजीने आपके पास जो समाचार भिजवाया था वह समाचार प्रामाणिक नहीं है—यही कहने के लिये हम लोग आपकी सेवा में आये हैं।

परीक्षित—इससे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। ऋषिराज का आशीर्वाद हमारी सब तरह रक्षा करेगा।

शृंगी—पिताजीने यह मन्त्रपूत जल, फल और दर्भ भेजा है।

परीक्षित धन्य भाग्य।

(शृंगी जल देता है, राजा अँगुली से छूकर सिर में लगा लेता है। दूसरा ऋषिवेषी नाग फल देता है, राजा उसे ग्रहण कर लेता है। बाद में ऋषिवेषी तक्षक दर्भ लेकर जाता है और दर्भ देते समय राजा के गले से चिपट जाता है और दर्भाकार लोहे की विषबुझी सूई राजा के गले में चुभो देता है।)

परीक्षित—ओह ब्रह्मन्, यह तुमने क्या किया ?

तक्षक—महाराज! मैं अपने आवेश को नहीं रोक सका, मेरी इच्छा हुई कि मैं आपका आलिंगन करूं।

परीक्षित—पर यह गले में दर्भ क्यों चुभाया ?

तक्षक—क्या दर्भ चुभ गया ? आप का शरीर इतना कोमल है!

परीक्षित—पर यह जलता है, जैसे बिच्छूने डंक मारा हो।

(मंत्री तथा नौकरचाकर दौड़ पड़ते हैं, राजा को सँभालते हैं, भीड़ हो जाती है, इसी अवसर पर सब ऋषिवेषी नाग भाग जाते हैं)

परीक्षित—ओह, दर्भ विष बुझासा मालूम होता है नागों का षड्यन्त्र सफल हो गया।

(परीक्षित वेदना से तड़पते हुए मर जाते हैं)

(पटाक्षेप)

दूसरा अंक

[पहिला दृश्य]

[स्थान—नागकुमारी कारु का गृहोपवन, कारु चिंतातुर बैठी है । थोड़ी देर बाद गाने लगती है ।]

गीत ४

सहूँ कैसे यह कारागार, उमडता रसका पारावार ॥
चैन पडे अब कैसे सजनी ?
काट रही यह सूनी रजनी ॥
पूछ रहा है मन अब मुझसे, करना किससे प्यार ?
सहूँ कैसे यह कारागार, उमडता रस का पारावार ॥१॥
मानव मानव भाई भाई ।
जातिपाँति की व्यर्थ लडाई ।
जातिपाँति को प्रेम न पूछे, पूछे जीत न हार ॥
सहूँ कैसे यह कारागार, उमडता रस का पारावार ॥२॥
सारा जग है शिव की माया ।
फिर क्यों वैर विरोध बनाया ॥
रहे विविध स्वर मिले रहें पर मानवता के तार ॥
सहूँ कैसे यह कारागार, उमडता रस का पारावार ॥३॥
गले मिल कर यह मन बहलाये ।
प्रेमामृत की धार बहाये ॥
सब जन न्हायें निर्मल, हो ऐसा ही प्यार ॥
सहूँ कैसे यह कारागार, उमडता रस का पारावार ॥४॥

मनुष्य आज मनुष्य नहीं है, वह नाग है, आर्य है, देव है, असुर है, इन्हीं टुकडों में उसका ससार पूरा है। यद्यपि आत्मा की कोई जाति नहीं, रक्त मास की कोई जाति नहीं, प्रेम जातिपाँति नहीं पूछता, पर अहकार के नशे में पागल होकर मनुष्य मनुष्य का खून कर रहा है। एक ही देश में रहते हैं पर हम आर्य कहलाते हैं, तुम नाग कहलाते हो इसीलिये हम प्रेम नहीं कर सकते। अगर दिल प्रेम करना चाहेगा तो हम दिल को मसल देंगे। इसका नाम कर्तव्य है। आह! आज मनुष्य के समान क्रूर और मूर्ख कौन होगा?

[सखियों का प्रवेश]

सखी १—यह क्या बाई साहिब, आप यहा बैठीं हैं? चेहरे पर यह उदासी क्यो है? सारे नगरमें आज आनन्द मनाया जा रहा है। परीक्षित का वध करके महाराज तक्षक आ गये हैं। सारा नगर आज आनन्द से नाच रहा है और आप इस तरह उदासीन बनकर बैठीं है।

कारु—इस आनन्द की जड में कैसा निरानन्द छिपा हुआ है इसकी तुम लोगों को कल्पना ही नहीं है। आर्यों का एक आदमी मर गया इसीलिये आर्य जाति न मर जायगी। आज नहीं तो कल एक आर्य के पीछे हजारों नागों का खून बहेगा। उस दुर्दिन की कल्पना से ही मैं सिहर उठती हूँ।

सखी २—राजकुमारी जी, आज तो आप आर्यों का खूब पक्ष ले रहीं है।

दूसरा अंक

[पहिला दृश्य]

[स्थान—नागकुमारी कारु का गृहोपवन, कारु चिन्तातुर बैठी है। थोडी देर बाद गाने लगती है।]

गीत ४

सहूं कैसे यह कारागार, उमडता रसका पारावार ॥
चैन पडे अब कैसे सजनी ?
काट रही यह सूनी रजनी ॥
पूछ रहा है मन अब मुझसे, करना किससे प्यार ?
सहूं कैसे यह कारागार, उमडता रस का पारावार ॥१॥
मानव मानव भाई भाई ।
जातिपाँति की व्यर्थ लडाई ।
जातिपाँति को प्रेम न पूछे, पूछे जीत न हार ॥
सहूं कैसे यह कारागार, उमडता रस का पारावार ॥२॥
सारा जग है शिव की माया ।
फिर क्यों वैर विरोध बनाया ॥
रहें विविध स्वर मिले रहें पर मानवता के तार ॥
सहूं कैसे यह कारागार, उमडता रस का पारावार ॥३॥
गल गल कर यह मन वहजाये ।
प्रेमामृत की धार वहाये ॥
सारा जगत नहाये जिसमें, दूं ऐसा ही प्यार ॥
सहूं कैसे यह कारागार, उमडता रस का पारावार ॥४॥

मनुष्य आज मनुष्य नहीं है, वह नाग है, आर्य है, देव है, असुर है, इन्हीं टुकडों में उसका ससार पूरा है। यद्यपि आत्मा की कोई जाति नहीं, रक्त मास की कोई जाति नहीं, प्रेम जातिपाँति नहीं पूछता, पर अहकार के नशे में पागल होकर मनुष्य मनुष्य का खून कर रहा है। एक ही देश में रहते हैं पर हम आर्य कहलाते है, तुम नाग कहलाते हो इसीलिये हम प्रेम नहीं कर सकते। अगर दिल प्रेम करना चाहेगा तो हम दिल को मसल देंगे। इसका नाम कर्तव्य है। आह! आज मनुष्य के समान क्रूर और मूर्ख कौन होगा?

[सखियों का प्रवेश]

सखी १—यह क्या बाई साहिब, आप यहा बैठीं हैं? चेहरे पर यह उदासी क्यो है? सारे नगरमें आज आनन्द मनाया जा रहा है। परीक्षित का वध करके महाराज तक्षक आ गये हैं। सारा नगर आज आनन्द से नाच रहा है और आप इस तरह उदासीन बनकर बैठीं है।

कारु—इस आनन्द की जड में कैसा निरानन्द छिपा हुआ है इसकी तुम लोगों को कल्पना ही नहीं है। आर्यों का एक आदमी मर गया इसीलिये आर्य जाति न मर जायगी। आज नहीं तो कल एक आर्य के पीछे हजारों नागों का खून बहेगा। उस दुर्दिन की कल्पना से ही मैं सिहर उठती हूँ।

सखी २—राजकुमारी जी, आज तो आप आर्यों का खूब पक्ष ले रहीं है।

कारु–आर्य भी आखिर मनुष्य हैं और इस देश में बसे हुए हैं अब वे यहीं के निवासी हो गये हैं इसलिये आर्य और नागों के मिलने में ही दोनों का कल्याण है।

सखी १–बाईजी, क्या कोई आर्य-कुमार ही हमारे जीजाजी होंगे ?

कारु—तुम्हारे जीजाजी कौन होंगे, इसकी चिन्ता न करो। जिसके जीजा बनने से मानव-जाति का कल्याण होगा वही तुम्हारा जीजा होगा।

सखी २–पर जीजी, अगर जीजाजी आर्य हुए तब तुम उनकी भाषा कैसे समझोगी ?

सखी ३–एक मन की बात दूसरे मन को समझाने के लिये भाषा की जरूरत है पर जहा दो मन मिलकर एक हो जॉयगे वहा भाषा की जरूरत ही क्या रहेगी ?

[सब सखियां हॅसतीं हैं, कारु भी कुछ मुसकराती है। वासुकि का प्रवेश]

वासुकि–बहिन, आज इस बगीचे में क्या हो रहा है ? तक्षक भाई परीक्षित का वध करके सफलतापूर्वक लौट आये, क्या यह समाचार तुझे नहीं मिला ?

कारु–मिला है भाई, और फिर मिल रहा है।

वासुकि–पर तेरे चेहरे पर प्रसन्नता क्यों नहीं है ?

कारु--प्रसन्नता क्यों न होगी भाई, जिस का भाई मौत को जीतकर मौत के मुह में से निकल कर आया हो उस बहिन के समान भाग्य किसका होगा ? परन्तु

वासुकि--'परन्तु' क्या बहिन ?

कारु--परन्तु भाई, इस आनन्द के समय में भी न मालूम मेरा मन क्यों धुकधुक हो रहा है। ऐसा डर लगता है कि यह सफलता नाग जाति के ऊपर कोई बडी विपत्ति न लावे।

वासुकि--जिस बात का तुझे डर लग रहा है वह बात मैं साफ साफ देख रहा हूं। आर्य और नागों का वैर और बढ़ जायगा। परीक्षित मर गया, उसका बेटा जनमेजय अभी शिशु है इसलिये कुछ वर्षों तक आर्य लोग भले ही चुप रहें पर जनमेजय के जवान होने पर आर्य लोग इसका बदला लिये बिना न रहेंगे। नागों की आज जो दशा है उसे देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि आर्यों के इस आक्रमण को नाग लोग सह सकेंगे। अब तो आर्य लोग अपनी पूज्य देव जाति की भी पर्वाह नहीं करते।

कारु-भैया, फिर इसका कुछ उपाय क्यों नहीं सोचते ? घर घर की नाग नारियां जब विधवाएँ बनें उसके पहिले ही उसका कुछ उपाय करना चाहिये।

वासुकि- बहिन, बडी विकट समस्या है और वह एक दिन में हल नहीं हो सकती। जबतक आर्य आर्य हैं, नाग नाग हैं तब तक यह समस्या हल न होगी। किसी भी देश का यह सब से बडा दुर्भाग्य है कि उसमें दो संस्कृतियाँ या दो जातियां रहें।

कारु- तब क्या उपाय है ?

वासुकि- उपाय यही है कि दोनों मिलकर एक हो जायें।

कारु- यह कैसे होगा भैया ? आर्य लोग बडे घमंडी हैं, वे

नाम नहीं छोड सकते और नाग भी इसके लिये तैयार नहीं होगे । किस द्वार से आकर दोनों मिलें इसका उत्तर नहीं मिलता ।

वासुकि- बहिन, विधाता के राज्य मे बीमारियॉ कितनी ही हों पर उन सबकी दवाई उसने बनारक्खी है । विधाताने मनुष्यको एक ही जाति का बनाया है । मनुष्य जब अपने अहकार और मूढता से मानवजाति के टुकडे टुकडे करने बैठे तब उसकी चिकित्सा के लिये विधाता ने नारी को बनाया है । दो जातियों के बीच में नारी ही पुल का काम दे सकती है ।

कारु—भैया, नारी की इतनी प्रशसा करके तुम मुझे बोझसे न दबा दो । मानव-जाति के कल्याणके लिये तुम मेरा शरीर ही नहीं, प्राण और मन भी जिस तरह चाहो उस तरह लगा सकते हो ।

वासुकि--तुझ सरीखी बहिन से मै यही आशा रखता हू । बहुत दिन से मैं इस बात पर विचार कर रहा हू कि अगर किसी आर्य राजाके साथ तेरी शादी हो तो दोनो जातियो के बीच में मेल होने मे काफी सहायता मिल सकती है ।

कारु—मुझे इसमे कोई आपत्ति नहीं है भैया, पर मेरी समझ में किसी आर्य ऋषि से शादी करना इससे भी अधिक लाभदायक होगा । आर्य राजा के यहा वैभव मिल सकता है पर मै वैभव की प्यासी नहीं हूँ । न सौतों के बीच में रहकर जीवन बर्बाद करना चाहती हूँ । आर्य सस्कृति ऋषियों की सस्कृति हैं, आर्य राजा ऋषियों के इशारे पर नाचते है इसलिये मेरी सन्तान ऋषिसन्तान हो, वह आर्य राजाओं

पर और आर्य जनता पर प्रभाव डाल सके ऐसा प्रयत्न करना चाहिये ।

वासुकि—कारु, तू मेरी छोटी बहिन है, पर बुद्धिमत्ता, विचारकता और त्यागसे नागजाति की सरस्वती है । तेरा यह त्याग नागजाति के लिये आशीर्वाद का काम देगा । अब मैं चलता हूं । उन्मत्त नागों को भी समझाना है और मदान्ध आर्यों को भी वश में करना है । कार्य कठिन है पर तुझ सरीखी महिलाओं के त्याग और बलिदान से मार्ग सरल हो जायगा ।

(कारु भाई को प्रणाम करती है और वासुकि उसके सिर पर आशीर्वाद सूचक हाथ रख कर विदा लेता है)

(पटाक्षेप)

दूसरा दृश्य

(विविध भावभंगियों के साथ हंसते नाचते कूदते और गाते हुए नागयुवकों का प्रवेश, गीत के भाव के अनुसार नाट्य भी करते हैं)

गीत ५

हम वैरियों को दास या किंकर बनायेंगे ।
या उनके खून से जमीन तर बनायेंगे ।
कुछ कर दिखायेंगे ॥१॥
रहने न पायेगा यहां पै आर्य एक भी ।
हम उनके खून के यहां निर्झर बहायेंगे ।
जौहर दिखायेंगे ॥२॥

वे नर बने नरेश बने आज घूमते ।
हम उनको पकड के यहा वानर बनायेंगे ।
पत्ते खिलायँगे ॥ ३ ॥

(वन्दर की नकल करते हैं)

जो घोड़े के सवार बने ऐंठ बताते ।
हम उनके घोडे छीन उन्हे खर बनायेंगे ।
मिट्टी लदायँगे ॥ ४ ॥

(गधे के स्वर की नक्ल करते हैं)

कर देंगे यज्ञ बन्द वेदमन्त्र मिटा कर ।
हम अपने शिवालय में उनके सिर झुकायेंगे ।
भूपर गिरायँगे ॥ ५ ॥

देखेंगे कौन रोकता है हमको जगत् में ।
हम उनके राजमन्दिरों को घर बनायेंगे ।
शय्या सजायँगे ॥ ६ ॥

सीखेगा सब जगत हमारी नाग सभ्यता ।
सीखेंगे जो नहीं वही बर्बर कहायेंगे ।
इज्जत गमायँगे ॥ ७ ॥

सब—हर ! हर ! महादेव !

एक युवक— भाइयों, हमारी गफलत से आर्य लोग यहा सम्राट् बनकर बैठ गये हैं । वे हमारा और हमारी महान नाग सभ्यता का नाश करना चाहते हैं, हमारी मूर्तियों की हॅसी उडाते है,

हमको नीचा समझते हैं, हमारे धर्म को तुच्छ मानते है। हमें इन अत्याचारों का बदला लेना है। हमको चाहिये कि जब तक हमारे शरीरमें रक्तकी एक भी बूंद रहे तबतक आर्यों की गर्दनें काटते रहें। हमारे देश में उनकी लाशों को भी जगह न मिलने पाये।

दूसरा–हम उनकी लाशें जलने न देंगे। गीदडों और कुत्तो को खिलायगे।

तीसरा–आर्य लोग अहकारी और दुष्ट हैं। उनने हमारे प्रेम का दुरुपयोग किया है। वे हमारे सिर पर सवार होना चाहते हैं पर हम उन्हे पैरों से कुचल देंगे।

चौथा—ये जगली लोग हमें सभ्यता का पाठ पढाने का दावा करते हैं। जब कि ये सभ्यता को समझते भी नहीं हैं। न इन्हें किसी शिल्प का पता है न कला का। मिट्टी का पुतला बना नहीं सकते और कहते है हम मूर्त्तिपूजा के विरोधी हैं। विज्ञान के नाम पर बेचारे किसी तरह आग जलाना सीख गये हैं इसलिये उसी की पूजा में चिल्लाते रहते हैं। अमूर्त परमात्मा को मूर्तरूप देना इनकी अक्ल के बाहर की बात है।

पाँचवाँ–आखिर है तो जानवर ही। शिवजी जब बन्दर बनाने बैठे तब कुछ बन्दरो की पूछ टूट गई सो वे आर्य बन गये। शक्ल तो मनुष्यो जैसी है पर अक्ल बन्दर जैसी।

[सब हँसते है]

पहिला युवक–भाई, अब हमे अपना सगठन मजबूत बनाना चाहिये। जहाँ किसी आर्य को देखें वहीं कत्ल करदे, आर्य शासको

के छिद्र देखते रहें। मौका पाया कि खत्म। देखें ये कैसे चैन से बैठते हैं। जब इनको सोते जागते उठते बैठते यमराज की तरह नागयुवक चारों ओर दिखाई देने लगें तभी हमारा नाम।

दूसरा—आर्य-वध प्रत्येक नागयुवक का कर्तव्य है।

तीसरा—तो हम कर्तव्य में पीछे न हटेंगे।

सब—हम वैरियों को दास या किंकर बनायेंगे।
या उनके खून से जमीन तर बनायेंगे॥
कुछ कर दिखायेंगे।

[इत्यादि गाते हुए नागयुवकों का प्रस्थान]

तीसरा दृश्य

(स्थान—नागों की राजसभा, नागकन्याओं का साभिनय गीत)

गीत ६

पधारो! पधारो! पधारो महाराज,
मनो-मन्दिर में सबके पधारो।
उबारो उबारो उबारो महाराज,
जाति नौका फँसी है उबारो ॥१॥

तुम ही हो जनता के प्यारे दुलारे।
आँखों के तारे हमारे उजियारे॥
मित्रों की आशा, निराशा हो शत्रुओं की।
आशा हमारी विचारो॥
विचारो महाराज मनोमन्दिर में सबके पधारो॥
पधारो पधारो पधारो ... ॥२॥

अचल पसारे खड़ी हैं ललनाएँ ।
पथ में तुम्हारे लिये आँखें बिछायें ॥
उनका करो काम होवे अमर नाम ।
नागों का संकट निवारो ।
निवारो महाराज मनोमंदिर में सबके पधारो ॥
पधारो पधारो पधारो ॥३॥

जय घोष गूँजे जगत में तुम्हारा ।
अरिदल का दिल दहले भागे बेचारा ॥
ब्रह्मांड हिल जाय, शिव हो प्रचंड-काय ।
अरियों की आशा विदारो ।
विदारो महाराज मनोमंदिर में सबके पधारो ॥
पधारो पधारो पधारो ॥४॥

वासुकि—सज्जनो, आज हमारे लिये बड़े सौभाग्य का दिन है कि आज मेरे प्यारे भाई तक्षक आर्यों की नगरी से सकुशल लौट आये हैं। इनके साहस, चतुरता और वीरता की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इन्होंने जो काम किया है वह शेर की गुफा में जाकर उस का दांत तोड़ आने से भी कठिन था। वह काम करके सफलतापूर्वक लौट आने की खुशी में मैं अपनी और आप लोगों की तरफ से यह हार अर्पण करता हूं।

[हार पहनाता है]

तक्षक—पूज्य भाई साहिब, तथा अन्य मित्रो, आप लोगों के आशीर्वाद को मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। मुझे इस बात की

खुशी नहीं है कि मैं दुष्ट आर्यों के चगुल में से जिन्दा लौट आया खुशी इस बातकी है कि मै उस पापी राजा का वध कर आया। वध करके अगर मैं जिन्दा न भी लौटता तो भी मुझे खुशी होती और अपने जीवन को सफल समझता। पर अगर वध न करके मैं जिंदा भी लौटता तो मै अपने को मुर्दे से भी खराब समझता।

(तालियाँ)

एक सभासद्-महाराज तक्षक ने जो वीरतापूर्ण आदर्श कार्य करके दिखाया है उससे नाग जाति का गौरव ही न बढ़ेगा बल्कि आर्यों के ऊपर हमारी धाक बैठ जायगी। इतना ही नहीं प्रत्येक नागयुवक में बिजली दौडने लगेगी। वे असभव कार्य कर दिखाने में भी समर्थ हो सकेंगे।

दूसरा सभासद्—लोग कहते हैं कि आर्यों को इस देश से भगा देना असभव है पर आज की सफलता से यह कहा जा सकता है कि यह असभव कार्य भी सभव हो जायगा। आर्यों को या तो यहा से मुह काला करना पड़ेगा अथवा हमारा दास बनकर रहना पडेगा।

कारु-भाइयो, मेरे माननीय भाई जो सकुशल लौट आये है उसकी खुशी में मेरे आनन्द की सीमा नहीं है। जब से भाई ने प्रस्थान किया तभी से मुझे दिनरात नींद नहीं आई है। मैं आँचल पसार पसारकर शिवजी से अपने भाई के प्राणों की भीख मॉगती रही हू। आज मै प्रसन्न हू फिर भी निश्चिन्त नहीं हूं। मुझे लगता है कि जो कुछ घटना हुई है वह निकट भविष्य में नागजाति के

ऊपर विपत्ति बरसायेगी। आर्यों का राजा मरा इसलिये सारी आर्य जाति का खून खौलने लगा होगा पर हम आर्यों का इतना नुकसान नही कर सके। राजा मरा है पर इससे हुई तो सिर्फ एक ही मनुष्य की हानि हे। एक मनुष्य के मरने से सारी आर्य जाति नहीं मर सकती पर सगठित होकर हमारा तीव्र विरोध कर सकती है। इसलिये अभी स कोई ऐसा कार्य करना चाहिये जिससे उस विकट समय मे हमारी रक्षा हो सके। मै नारी हू इसलिये इसे आप मेरी कमजोरी भीरुता आदि कह सकते हैं फिर भी अगर आप उचित समझें तो अवश्य मेरी बात पर विचार करें।

वासुकि—कारु बहिन ने जो कुछ कहा है उससे मै भी सहमत हू। जितना हमने आगे कदम बढ़ालिया है उतनी तैयारी हमें अवश्य करना चाहिये। परीक्षित का लडका जनमेजय अभी छोटा है पर कल वह बडा हो जायगा और तब आर्य हमसे बदला लिये बिना न रहेंगे। सौन्दर्य, कला और सभ्यता में हम लोग भले ही बढे चढे हो पर सगठित आर्यों का विरोध करना कठिन है। मै नहीं समझता कि शताब्दियों से जमे हुए आर्य यहा से भगाये जा सकते है। हमें और उन्हें अब इसी देश में रहना है। इसलिये ऐसा कोई रास्ता निकालना चाहिये जिससे दोनों जातियों मे मेल बढ़ और ऐसी एकता हो जाय कि हमारा और उनका अस्तित्व, इन दोनो के मिश्रण से बननेवाली एक नई जाति मे विलीन हो जाय।

एक सभासद- हम लोग आप की आज्ञामें है आप जो कहेंगे हम वही करेंगे परन्तु क्षमा कीजिये मेरा तो यह विचार है

कि मदान्ध आर्यों के साथ मित्रता हो ही नहीं सकती ! आज तक हमने इतने प्रयत्न किये पर सब व्यर्थ गये । वह जाति ही ऐसे कुतत्वों से बनी है कि प्रेम और नम्रता उसमे है ही नहीं । उसने जब देखो तब हमारा नाश और अपमान ही किया है । अब किस मुँह से मित्रता की जाय ।

तक्षक—मैं भाई साहिब की आज्ञा के बाहर नहीं हू पर यह कहना चाहता हू कि मित्रता समान बल में ही हो सकती है । सिंह और हरिण की मैत्री नहीं हो सकती । भय के बिना प्रेम नहीं रहता । आर्यों के साथ हमारी मित्रता तभी सभव है जब आर्यों को हमारी शक्ति का पता लग जाय और उन्हें नागों के साथ मित्रता करने की आवश्यकता का अनुभव होने लगे । हम मित्र बन कर मिल सकते हैं दास बनकर नहीं । अगर वे हमे दास बनाने की चेष्टा करेंगे तो हम उन्हें दास बनाकर छोड़ेंगे ।

वासुकि—भाई, एक देश के भीतर सदा के लिये दो जातियाँ स्वामी और दास बनकर नहीं रह सकतीं । उनमें से या तो किसी एक को मिट जाना पडता है या दोनों को मिलकर एक हो जाना पड़ता है । यहा न हम मिट सकते हैं न आर्य मिट सकते है इसलिये अंत में दोनों को मिल कर एक होना ही पड़ेगा । आप का यह कहना बहुत ही ठीक है कि मित्रता समान बलमें होती है पर हम निर्बल नहीं हैं । अगर निर्बल होते तो भाई तक्षक के आने के पहिले आर्यों की सेनाने हम पर चढ़ाई कर दी होती । हम पर चढ़ाई करने के लिये आर्यों को समय लगेगा । और दस बीस वर्ष

के पहिले वे हमारा कुछ न कर सकेंगे । पर आर्य इस वैर को भूलेंगे नहीं, एक न एक दिन उनका कोप हम पर उतरेगा, उस दिन के लिये हमें अभी से तैयारी करना चाहिये ।

दूसरा सभासद्–आपका यह कहना बिलकुल ठीक है । हमें अपना सैनिक शिक्षण बढाना चाहिये संगठन करना चाहिये ।

वासुकि–यह तो आवश्यक और पहिला काम है पर इतने में ही कर्तव्य की समाप्ति नहीं हो जाती । स्थायी शान्ति के लिये भी कुछ करना चाहिये ।

तक्षक–आप आज्ञा दीजिये कि हम क्या करें ?

वासुकि–अपने सामने तीन काम हैं । पहिली बात तो बल और संगठन की है वह निर्विवाद है । दूसरी बात संस्कृति या धार्मिक एकता की है । आर्यों का धर्म ऐसा अद्भुत है कि न तो उससे बुद्धि को संतोष मिलता है न मन को । न उसमें कला को स्थान है न विज्ञान को । इसलिये एकता के लिये ही नहीं किन्तु उनके ऊपर दया करके भी अपने धर्म का रहस्य उन्हें सिखाना चाहिये । तीसरी बात सामाजिक एकता की है यही सब से बडी महत्त्व की बात है । अगर दोनों समाजों मे विवाहसंबंध स्थापित हो जाय तो धीरे धीरे दोनों जातियों का द्वेष नष्ट हो जायगा ।

तक्षक–पर अभिमानी आर्य ऐसा न करेंगे । वे कभी यह बात पसंद न करेंगे कि आर्यकन्याएँ नागकुमारों के साथ विवाह करें ।

वासुकि–यह अहंकार बहुत दिन न चलेगा और न हमें इसकी जरूरत है । आर्यकन्याएं अगर हमारे घरों में आयेंगी

तो वे आर्य सभ्यता को ही हमारे घरों में लायेंगीं इससे हमें विशेष लाभ न होगा। आवश्यकता इस बात की है कि आर्यकुमार हमारे घरों में आवें और वे हमारी सभ्यता से प्रभावित हों अथवा नाग-कन्याएँ आर्यों के घर में जावें जिससे उनके घरो में नाग सभ्यता के बीज बोजॉयॅ।

तक्षक—पर साधारण नागकन्याएँ यह काम नहीं कर सकतीं और असाधारण कन्याएँ इस प्रकार के विजातीय विवाह के लिये तैयार न होंगी। क्या कोई ऐसी कन्या तैयार है ?

कारु—मैं हूँ।

एक सभासद्—राजकुमारी जी, आप !

कारु—हा भाई, मैं। नागों और आर्यों के बीच में जो विरोध का समुद्र लहरा रहा है उसके ऊपर अगर मैं पुल बन सकूं तो इससे बढ़कर मेरे जीवन की सफलता क्या होगी ? नाग जाति के कल्याण के लिये आप जो आज्ञा मुझे देंगे वह पूजनीय, वन्दनीय और आचरणीय होगी। आप लोगों की आज्ञा से मैं जीवन-भर कुमारी रह सकती हू, जिस जाति के मनुष्य के साथ आप लोग कहें उस जाति के मनुष्य के साथ विवाह कर सकती हू इतना ही नहीं, अगर जाति के कल्याण के लिये मुझे विधवा का जीवन बिताना पडे तो वह भी बिता सकती हू।

एक सभासद—राजकुमारीजी की

सब—जय !!

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

[स्थान —वनपथ। ऋषिकुमार जरत् का प्रवेश]

जरत्–पितृ ऋण। आर्यधर्म कहता है कि छोटासा बच्चा भी जन्म से ऋणी पैदा होता है। माता का ऋण, पिता का ऋण, समाज का ऋण सब का ऋण, सो भी ऐसा कि सारी तपस्याओं को व्यर्थ कर दे। गुरुओं की आज्ञा है कि मैं पहिले पुत्र उत्पन्न करूं पीछे सन्यास लूं। किसी तरह आर्यों की सख्या बढना चाहिये इसीलिये यह सब ऋण का ढकोसला है। पर गृहस्थ जीवन के बोझ को मैं नहीं उठाना चाहता। और न मुझे अनार्यों पर चढने के लिये आर्यों की सख्या बढ़ाने की चिन्ता है। मैं तो समझ ही नहीं सकता कि मनुष्य मनुष्य के साथ वैर करता ही क्यों है और जाति भेद की रचना भी क्यों करता है? आर्य हो या नाग आखिर सब मनुष्य हैं।

(वासुकि और कारु का प्रवेश)

वासुकि–ऋषिराज, इधर किधर जा रहे हैं?

जरत्–मैं एक विशेष उद्देश्य से देशाटन कर रहा हूँ।

वासुकि–आप का शुभ नाम?

जरत्–मेरा नाम जरत्। मै एक आर्य ऋषि हूँ। पर आप का शुभ नाम?

वासुकि–मैं नागराज वासुकि हूँ।

जरत्–नागराज वासुकि! धन्य भाग्य! और ये देवी?

वासुकि–यह मेरी बहिन कारु है। क्या आप बतलाने की कृपा करेंगे? कि आप का यह विशेष उद्देश्य क्या है?

जरत्–आप सुनकर क्या करेंगे ? आप नाग हैं न तो आर्यों पर विश्वास रखते हैं न प्रेम। इसमें आप का अपराध भी नहीं है। आर्य भी ऐसा ही करते हैं। ऐसी परिस्थिति में आप से अपनी बात कहने में कोई लाभ नहीं।

वासुकि–ऋषिकुमार, आपका कहना ठीक है पर मैं इस बात से अनभिज्ञ नहीं हूं कि आर्यों के भीतर भी ऐसे मनुष्य हैं जो आर्यत्व की अपेक्षा मनुष्यत्व के पुजारी हैं और नागों के भीतर तो आप को ऐसे लोगों की संख्या और भी अधिक मिलेगी।

जरत्–नागराज, आप की बातों से मुझे प्रसन्नता हुई है मैं भी यही चाहता हूँ। मैं आर्य और नाग, आर्यावर्त और नागलोक के भेद को पसन्द नहीं करता। आप सरीखे सज्जनों के दर्शनों से मैं जीवन सफल समझता हूं। यद्यपि मैं मानता हूं कि ऐसे उदार होने पर भी मेरे उद्देश्य में मुझे आप सहायता न कर सकेंगे फिर भी अपना संकट आप से कह देने की इच्छा होती है।

वासुकि–अवश्य कहिये, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपका संकट दूर करने में मैं कुछ उठा न रक्खूंगा।

जरत्–बात यह है कि मैं एक युवक सन्यासी हूँ। सन्यास में ही मुझे आनन्द आता है। गार्हस्थ्य जीवन की दीनता और झंझट मैं सहन नहीं कर सकता इसलिये युवा होते ही मैं सन्यासी हो गया। पर आर्य लोग इस बातको सहन नहीं करते। वे सन्तान उत्पन्न करने के लिये मुझे ज़ोर दे रहे हैं। वे हर तरह आर्यों की

मख्या बढ़ाना चाहते हैं। मुझे न तो यह विचार पसन्द है न इस कार्य में रुचि है। यही मेरा संकट है।

वासुकि—अगर आप विवाह न करें तो?

जरत्—तो आर्य लोग मेरा बहिष्कार कर देंगे। घोर निन्दा करेंगे। आर्यों के भीतर मेरा रहना मुश्किल हो जायगा।

वासुकि—तब तो आपको विवाह करना ही उचित है।

जरत्—इसके लिये मैं तैयार हूँ परन्तु दुर्भाग्य यह है कि कोई कन्या मेरे साथ विवाह करने को तयार नहीं होती। मैं किसी भी जाति की योग्य कन्या से विवाह करने को तयार हूँ पर मिले तो।

वासुकि—आश्चर्य है कि आप सरीखे प्रतिष्ठित सुन्दर विद्वान सदाचारी युवक ऋषि के साथ कोई कन्या शादी नहीं करना चाहती! क्या आर्योंने इधर भी कुछ अड़गा लगाया है?

जरत्—नहीं, आर्य लोग इस में बाधक नहीं है। बाधक हैं मेरी दो शर्तें।

वासुकि—कौनसी?

जरत्—पहिली तो यह कि मैं गार्हस्थ्य जीवन का आर्थिक प्रबन्ध और तत्सम्बन्धी कोई बोझ अपने सिर पर लेने को तयार नहीं हूँ। यह बोझ कन्या के अभिभावकों को ही उठाना पड़ेगा। दूसरी यह कि पुत्र उत्पन्न होने के बाद एक वर्ष के भीतर ही मैं फिर सन्यासी हो जाऊंगा।

वासुकि—आपकी यह दूसरी शर्त ही कठिन है।

जरत—सो तो है पर मैं विवश हूँ।

(वासुकि गम्भीर चिंता में पड जाते है फिर कारु की तरफ देखते हैं)

वासुकि—कारु ।

कारु–भैया, मैं तैयार हूँ ।

जरत्–राजकुमारी जी, आप !

कारु–हाँ देव, मैं ।

जरत्–नहीं, ऐसा नहीं हो सकता । आप राजकुमारी है आपने पुण्योदय से सभी सुख साधन पाये हैं । इसलिये जानबूझकर वैधव्य न पाकर भी वैधव्य की यातना को निमन्त्रण न दीजिये ।

कारु–ऋषिराज, मैंने अच्छी तरह सोच विचार कर ही निश्चय किया है । मेरे जीवन का भी एक ध्येय है । मै न कौमार्य से डरती हूँ न वैधव्य से । मै चाहती हूँ— आर्यों और नागो की एकता और उस एकता के लिये मर मिटनेवाली सन्तान । इसके लिये मै जीवनभर तपस्या करने को तैयार हूँ । आपके और मेरे विचार एक से हैं इसलिये हमारी सन्तान हमसे बढ़कर निकलेगी। आपकी जब इच्छा हो तब आप आत्मोद्धार के लिये चले जाना पर मैं तो समाजोद्धार के लिये मनुष्य-निर्माण के कार्य में लगी रहूगी ।

जरत्–देवी, तुम्हारे इस त्याग, सेवा, साहस और विवेक के आगे मेरा मस्तक झुक जाता है । जब आप इस दीन पर इतनी कृपालु है तब मै उस कृपा की अवहेलना नहीं कर सकता । पर आपको मेरी पहली शर्त भी मजूर है न ?

वासुकि–उसकी आप चिन्ता न कीजिये । उसका बोझ मेरे ऊपर है ।

जरत्–तब चलिये ।

(तीनो का प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान-अन्त पुर । दासियाँ शयनागार सजा रहीं हैं और बातें भी करती जाती हैं ।

पहली दासी–बहिन, मेरी तो समझमें नहीं आता कि शयनागार कैसा सजाऊँ ?

दूसरी—जैसा अपने यहाँ सजाया जाता है वैसा ही सजाओ।

पहली--पर जीजा जी तो आर्य है । आर्यो की रुचि कैसी होती है मैं क्या जानूँ ?

दूसरी--आर्यों की रुचि कैसी भी हो पर जीजाजी की रुचि कैसी है इसका पता इसीसे लगजाता है कि उनने एक नागकुमारी से शादी की है ।

पहली--आर्यकुमारी हो या नागकुमारी हो शरीर में तो कुछ भेद मालूम होता नहीं है इसलिये निभ जाती है पर सजावट वगैरह तो वही अच्छी लगती है जिसे देखने की आँखों को आदत रहती है।

दूसरी--पर मेरी समझमें तो नई चीज देखने में मजा ज्यादह आता है । नई चीज़ तो कम सुन्दर हो तो भी नई होने से अच्छी मालूम होती है । इसलिये अपने यहाँ की सजावट जीजाजी को और अच्छी मालूम होगी ।

(एक तरफ से जरत् और कारु का प्रवेश दासी की उस तरफ पीठ होने से वह उन्हें नहीं देखपाती और बोलती है)

पहली दासी--तब तो जीजी उन्हें और भी अच्छी मालूम होगी।

[दासी की बात सुनकर दम्पति मुसकराते है, दासियां उन्हे देखकर शर्मिन्दा होकर भ ग जाती है ,]

जरत्- कारु, तुम्हारे यहां कितना आनन्द है ? कितनी शान्ति है ? इस अवस्था में मनुष्य को स्वर्ग या मोक्ष की इच्छा ही कैसे हो सकती है ?

कारु देव, मनुष्य अगर मनुष्य के सिर पर सवार होने की कुचेष्टा न करे, प्रेमका पुजारी बने तो इस जगत् में किसी को स्वर्ग और मोक्ष की जरूरत ही न मालूम हो।

जरत्--ठीक कहती हो कारु, मनुष्य ने ही इस स्वर्ग को नरक बनाया है।

कारु--स्वर्ग और नरक को बनते देर नहीं लगती। जहां प्रेम है वहीं स्वर्ग है, जहां प्रेम नहीं है वहीं नरक है।

जरत्--पर स्वर्ग नरक की चंचलता को देखकर कहना पड़ता है कि प्रेम माया है।

कारु--प्रेम माया भी है और प्रेम ईश्वर भी है। ईश्वर अकेला ईश्वर है और माया अकेली माया है पर प्रेम तो ईश्वर और माया दोनों है।

(गीत ७)

प्रेम जगत का ईश्वर भी है प्रेम जगत की माया।
स्वर्ग न पाया मोक्ष न पाया जिसने प्रेम न पाया ॥१॥

प्रेम भवन का पन्थ निराला ।
प्रेम न जाने गोरा काला ॥
प्रेम न जाने ऊंचा नीचा अपना और पराया ॥
प्रेम जगत का ईश्वर भी है प्रेम जगत की माया ॥२॥

मन मन्दिर में दीप जलायें ।
आयें सब रवि शशि ताराएँ ॥
मिलकर प्रेमगीत सब गायें पायें सब मनभाया ॥
प्रेम जगत का ईश्वर भी है प्रेम जगत की माया ॥३॥

मिलें गगनचर जलचर थलचर ।
अनिल अनल भूतल रत्नाकर ॥
मनमें मन मिल जाय प्रेम की छाये सब पर छाया ।
प्रेम जगत का ईश्वर भी है प्रेम जगत की माया ॥४॥

जरत्--धन्य है कारु तुम्हे । तुम्हारी प्रेमभक्ति असाधारण है । अगर ससार का प्रत्येक मनुष्य ऐसा ही प्रेमपुजारी होता ।

कारु--होता कैसे देव, अहकार और स्वार्थ पिशाच की तरह मनुष्य के पीछे पडे है । वे उसे प्रेम पुजारी नहीं बनने देते ।

जरत्--समझ मे नहीं आता अहकार में मनुष्य को क्या आनन्द आता है । मै तुम्हारा हू, इसमे जो आनन्द है वह 'मै बडा हू, इसमें कहा है ?

कारु--पर मनुष्य जितना विकसित होता जाता है मानो उतना ही आनन्द का शत्रु बनता जाता है । मनुष्य की बुद्धि

मनुष्यता के विकास में नहीं, किन्तु व्यवस्थित रूप में पशुता के प्रदर्शन में लग रही है। पशु जहा जातिभेद की कल्पना नहीं कर सकता वहा मनुष्य करता है, पशु वैर की परम्परा लम्बी नहीं करता मनुष्य सदा के लिये वैर को वसाता है। मनुष्य ने व्यवस्था और विज्ञान के द्वारा पशुता को तीक्ष्ण और चटपटा वनाया है। जडता की कमी हो रही है पर उसकी जगह शैतानियत ले रही है।

जरत्--सच है कारु, जगत में मनुष्याकार जन्तु तो है पर मनुष्यता नहीं है।

कारु--मनुष्याकार जन्तुको मनुष्य वनाने के लिये, सच्चे मनुष्यों को पैदा करने के लिये हमारी शक्ति जितनी लगे हमारे जीवन की उतनी ही सार्थकता है।

जरत्—तुम्हारा कहना वहुत ठीक है पर यह भी न भूलना चाहिये कि मनुष्य वनाने के मार्ग जुदे जुदे है। मनुष्य के जनक वनकर, मनुष्य के गुरु वनकर, मनुष्य के भाई या मित्र वनकर अथवा निरपेक्ष भाव से मानव-जगत में मनुष्यता का सगीत गुँजाकर हम मनुष्यता का पाठ पढा सकते हैं। हरएक को अपनी अपनी योग्यता के अनुसार सेवा का ढग चुनलेना चाहिये। पर हर हालत में निःस्वार्थ और अप्रमत्त रहना जरूरी है।

(कारु कुछ सोचती रहती है)

जरत्--क्या सोचती हो कारु ?

कारु--सोचती हूँ कि मै पत्थर खोजने निकली थी और मुझे रत्न मिल गया है।

जरत्–तो इसमें सोचने की क्या बात है ? यह तो खुशी की बात हुई (मुसकराते हैं)

कारु–किसी गरीब को रत्न मिल जाय तो उसे खुशी होगी ही, पर इस बात की चिन्ता भी होगी कि अयोग्यता देखकर रत्न कहीं चला न जाय ।

जरत्–रत्न ऐसा कृतघ्न नहीं हो सकता कि जो उसे धूल में से उठाकर सिर पर रक्खे वह उसे ही छोडकर चला जाय ।

कारु–हां, जड-रत्न तो ऐसा नहीं हो सकता पर चेतन-रत्न कभी कभी इतना ईमानदार नहीं होता । (मुसकराती है)

जरत्-- (गम्भीरता से कुछ सोचने के बाद) कारु, कृतज्ञता के वश में होकर क्या रत्न कहीं नहीं जा सकता ?

कारु–जा करके भी कृतज्ञता ?

जरत्–हां, अगर रत्न यह सोचे कि यहां रहकर न तो मैं मालिक की शोभा बढ़ाता हूं न उसके जीवन का कष्ट दूर करता हूं इसलिये मुझे बाजार में बिककर मालिक के कष्ट दूर करना चाहिये, तो यह उसकी कृतज्ञता ही होगी ।

कारु–पर गरीब के दिलको कितनी चोट पहुचेगी ।

जरत् —पर जीवन सिर्फ दिलका बना हुआ नहीं है । वहां कठोर सत्य भी है जिसकी वेदी पर दिलका भी बलिदान करना पडता है । जिसने सेवा का व्रत लिया हो उसको सारा जीवन चढाना पडता है फिर दिल कहां बचेगा दिल भी चढाना पडेगा ।

[दोनों कुछ सोचने लगते हैं]

कारु--देव, आप भी जन-कल्याण के लिये जीवन अर्पण करना चाहते हैं और मैं भी। फिर दोनों का रास्ता जुदा क्यों ?

जरत्—अब रास्ता जुदा कहा है देवि, तुम्हारे सम्पर्क में आने के बाद मेरी कायापलट हो गई है। प्रथम दर्शन के समय तुमने जो यह वाक्य कहा था कि-'समाजोद्धार के लिये मनुष्य निर्माण के कार्य में लगी रहूंगी' वह मेरे कानों में अभी तक गूँज रहा है। मैं सोचता हूं कि इसी में सच्ची तपस्या और आत्मोद्धार है और अब मैं समझता हूं कि प्रेम, सेवा और तप में कोई विरोध नहीं है।

कारु--धन्य भाग्य, मेरा प्रेम सार्थक हुआ।

जरत्--अवश्य सार्थक हुआ है। विजयी होकर सार्थक हुआ है। पर पति प्रेम नहीं विश्वप्रेम। तुम मेरी दृष्टि मे मेरी पत्नी ही नहीं हो विश्वप्रेम की देवी भी हो।

कारु–पर देव के बिना देवी का देवीत्व अधूरा है।

जरत्–लेकिन जहा देवीत्व पूरा है वहा देव कहा जा सकता है ? पर एक बात है कारु, हम तुम सेवा की वेदी पर चढाये जाने वाले फूल हैं। पुजारी किस फूल को चढाने के लिये पहिले उठायगा और किसको पीछे और किसको किस तरह किस जगह चढायगा यह नहीं कहा जा सकता। इस जुदाई को जुदाई न मानना चाहिये। क्योंकि अन्त में सभी फूल एक ही देव की शरण में पहुँचनेवाले है।

कारु–देव, मै अपने मनकी कमजोरी दूर हटाने की कोशिश करूंगी। उस अनन्त सम्मिलन की आशामें क्षणिक वियोग पर विजय पाऊंगी।

जरत्–ऐसी कोई आशा नहीं जो मैं तुमसे न कर सकूं।

[स्नान की तैयारी करते हैं]

[पटाक्षेप]

छट्ठा दृश्य

[स्थान—वनपथ, राजा जनमेजय का मंत्री के साथ प्रवेश]

जनमेजय – मन्त्रिन्, आज हम जंगल में बहुत दूर निकल आये हैं। कुछ विश्राम की इच्छा है। पास में यह आश्रम किस का है ?

मंत्री—महाराज (इतना कहकर मंत्री का गला भर आता है वह कुछ नहीं बोल सकता। उसके मुंह पर विषाद की छाया छा जाती है)

जनमेजय–मन्त्रिन्, आप रुक क्यों गये ?

मंत्री–कुछ नहीं महाराज, यह शमीक ऋषि का आश्रम है।

जनमेजय–समझा। पर शमीक ऋषि के आश्रम की याद से आपके चेहरे पर इतना विषाद क्यो आ गया ? इसमें कुछ रहस्य मालूम होता है, आप क्यों छिपाते हैं ?

मंत्री–महाराज ऐसी कौन सी बात है जो आपसे छिपाई जाय। पर जो वेदना पिछले बीस वर्षों से दिल मे सुलाये हुए हूं वही आज इस आश्रम को देख कर जग पड़ी है। जी चाहता है कि एकबार जोर से रोऊं, नहीं तो दुःख से पागल हो जाऊंगा।

(हाथों से आखें बन्द कर लेता है)

जनमेजय–आपकी बात सुनकर मेरा हृदय बहुत दुःखी हो रहा है। कहिये, आपके जीवन मे ऐसी कौनसी घटना घटी है जिसका सम्बन्ध इस आश्रम से है और जो आपको इतना दुःखी

कर रही है।

मंत्री—महाराज, अगर उस घटना का सबंध सिर्फ मेरे जीवन से होता तो मैं आपके सामने इस प्रकार रोने न बैठता। मेरा दु.ख सारी आर्यजाति का दु.ख है और आर्य-जाति के प्रतिनिधि आप हैं इसलिये आपका दु.ख है। यदि आपका उस घटना से कौटुम्बिक सबध न होता तो भी आर्य प्रतिनिधि की हैसियत से वह आप का दुःख और आपका अपमान होता।

जनमेजय—मन्त्रिन्, मैं अधीर हो रहा हू, शीघ्र बतलाइये, बात क्या है ?

मंत्री—महाराज, इस आश्रम में एक ऐसी घटना हुई थी जिसके बहाने पापी नाग तक्षक ने स्वर्गीय महाराज का वध किया था। आप बालक थे इसलिये आर्यजाति इस अत्याचार का बदला न ले सकी तभी से आर्य-लोग इस अपमान की आग से जल रहे हैं। जबतक उस आग को नाग जाति की आहुति न मिले तब तक आर्यों को चैन नहीं है। महाराज, अब वह समय आ गया है जब स्वर्गीय महाराज की मृत्यु का बदला लिया जाय।

जनमेजय--मन्त्रिन्, आपने आज तक यह घटना क्यों न बताई ? मेरे पिता का वध करनेवाला आराम से ज़िन्दा रहे और मैं निश्चिन्तता से राजगद्दी पर आराम करू इससे बढकर मेरी कृतघ्नता और नीचता क्या होगी ? मन्त्रिन्, मै बालक था तो क्या हुआ ? आखिर शेर का बच्चा था जो इन जानवरों के लिये काफी था। मेरे हृदय में आग लगी है उस आग में नाग जाति जल जायगी-यह आश्रम जल जायगा।

मंत्री-महाराज, आश्रम का इसमें अपराध नहीं है। स्वर्गीय महाराज ने भूल से शमीक ऋषि के गले में मरा साँप डाल दिया था पर शमीक ऋषि ने हृदय से क्षमा कर दिया था। यह घर की बात थी इससे नागों का कोई सम्बन्ध नहीं था पर इस बहाने से वे लोग बीच मे कूद पडे और शमीक ऋषि के पुत्र को फुसला कर अपने में मिलाया और उसके साथ ऋषिवेष में आकर नागों ने धोखे से स्वर्गीय महाराज का वध कर दिया अब आप जैसा उचित समझें करें।

जनमेजय-मैं नाग जाति को जिन्दा जलाऊंगा।

मंत्री—आप से ऐसी ही आशा है महाराज! अपने पूर्वजों ने नागयज्ञ का विधान किया है जिस में एक विशाल कुण्ड में जिन्दे नागों की आहुति दी जाती है। पर आज तक इस नागयज्ञ को कोई कर नहीं सका। आर्यों का सिर्फ यही विधान शास्त्रो की कथा बनकर रह गया है। अब आर्य जनता की दृष्टि आप पर है। आप अगर नागयज्ञ कर दिखायँगे तो आपका नाम अमर हो जायगा और संसार का एक बडा भारी पाप कट जायगा।

जनमेजय-बस, अब शीघ्र लौटना चाहिये, अब आश्रम में विश्राम की जरूरत नहीं है। मै नागयज्ञ की तैयारी शीघ्र करना चाहता हूं।

[प्रस्थान]

सातवां दृश्य

(स्थान और समय—विवाह के बीस वर्षबाद, प्रात काल जरत् ऋषि सो रहे हैं। कारु का प्रवेश)

कारु—अरे, अभी तक ये सो ही रहे है प्रात.काल की सभी क्रियाएँ ढीली पड गईं । एक प्रहर दिन चढ आया। (जगाती है) देव, उठिये एक प्रहर दिन चढ आया है ।

जरत्-(अलसाते हुए उठकर) ओह, आज वहुत समय वीत गया । प्रात.काल के धर्म-कार्य न हो पाये, इस प्रमाद को धिक्कार है । कारु, यह वहुत वुरा हुआ ।

कारु—आप कहें तो प्रतिदिन आपको ठीक समय पर जगा दिया करू ।

जरत्--यह ठीक है पर उस समय में मनुष्य मिटकर सिर्फ एक यन्त्र रह जाऊगा । और यह मनुष्यता का अन्त होगा जो कि मै करना नहीं चाहता ।

कारु--देव, मै आप की कोई सेवा कर दूं इसमे यत्र होने की क्या वात हुई ?

जरत्—तुम उठाओ तब मै उठू, तुम सुलाओ तब मैं सोऊ यह यन्त्रता नहीं तो क्या है ? जड़ और चेतन में यही तो अन्तर है कि जड किसी से प्रेरित होकर कर्तव्य करता है । और चेतन स्वय कर्तव्य करता है, जो कर्तव्य नहीं करते वे वस्तु ही नहीं हैं, जो उतने वार ही कर्तव्य करते है जितने वार उन्हें प्रेरित किया जाय वे वस्तु तो हैं पर यत्र के समान व्यवस्थित नहीं है, जो एक वार प्रेरणा पाकर कुछ देर कर्तव्यरत

रहते हैं वे यन्त्र हैं, जो विना किसी प्रेरणा से कर्तव्य को जान कर करते हैं वे मनुष्य हैं । इस राजभवन मे रहकर मेरी मनुष्यता क्षीण हो गई है ।

कारु--देव, आप इस तरह क्यों वोलते हैं ?

जरत्--ठीक कहता हू कारु । मै प्रमादी और कर्तव्य-भ्रष्ट हो गया हू । मैं आज सोता रहा यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है किन्तु मेरे प्रमादी जीवन का आकस्मिक दर्शन है । मैं मनुष्य नहीं विलास का कीडा वन गया हू । प्रतिज्ञा से भ्रष्ट हो गया हू ।

कारु--आप इस छोटी सी वात को लेकर क्यों इतने उद्विग्न हो रहे हैं । आपका जीवन पवित्र और प्रेममय रहा है इसमें प्रतिज्ञा-भ्रष्ट होने की वात ही क्या है ?

जरत्--इस समय आस्तीक की उम्र क्या होगी ?

कारु--उन्नीस वर्ष की ।

जरत्--मैंने प्रतिज्ञा की थी कि पुत्रोत्पत्ति के एक वर्ष वाद मैं गृह-त्याग करूगा । पर उन्नीस वर्ष हो गये मैं यहीं पडा हू । इससे वढकर प्रतिज्ञा भ्रष्टता और क्या होगी ?

जरत्--पर आपने तो विचार वदल दिये थे जगत की सेवामे मे तप समझ लिया था ।

जरत्--पर पलग पर पडे रहकर आराम से सोने का नाम जगत की सेवा नहीं है । जो आदमी यह नहीं सोचता कि आज मैंने दुनिया से जितना लिया है उतना दिया है या नहीं वह सेवक तो क्या मनुष्य भी नहीं है । इन वीस वर्षों में एक भी दिन

ऐसा गया है जिस दिन मैंने लेने की अपेक्षा अधिक दिया हो। कारु, मैं मोघजीवी (हरामखोर) बन गया हू। अब मुझे यहा से जाना होगा।

कारु--(कुछ रुलाई के साथ) देव, आप यह क्या कह रहे हैं? आपने सन्यास का और व्यर्थ की तपस्याओं का त्याग कर दिया था। मानव सेवा के कार्य म मेरे सहयोगी बनने की बात आप समय समय पर कहते आये है फिर आज इस प्रकार क्यों भाग रहे हैं?

जरत्--मैं सेवा के क्षेत्र से नहीं भाग रहा हू। बल्कि वहा प्रवेश करना चाहता हू। कारु, मैंने यहा रह कर तुम्हारे कर्तव्य में बाधा ही डाली है। जिस शक्ति से तुम दुनिया की सेवा करती उस शक्ति से सिर्फ अपनी सेवा कराई है। मेरे और तुम्हारे जीवन की सफलता के लिये मेरा बाह्य त्याग आवश्यक है। राजमहलों को छोडकर मुझे अब झोपडियों की सुध लेना चाहिये। देवि, तुम वीरा गना हो तुमने मुझे सेवा मार्ग की दीक्षा दी है। इतना उच्च जीवन है तुम्हारा कि उसको देखते हुए रोना ठीक नहीं मालूम होता। तुम सरीखी वीर विदुषी से मै यही आशा करता हू कि वह मेरे आत्म-सुधार में साधक बनेगा।

कारु--यदि ऐसा है तो आप मुझे भी साथ ले लीजिये। विश्वास रखिये कि मैं आपको कोई कष्ट न दूगी।

जरत्--अवश्य जिस दिन मै यह समझूगा कि दुनिया की भलाई के लिये तुम्हारी यहा की अपेक्षा वहा आवश्यकता अधिक है

उसी समय मैं तुम्हें बुलाने आजाऊगा, मैं तुम्हें छोड़ नहीं रहा हूं पर एक सैनिक की तरह युद्ध-क्षेत्र में जाने के लिये तुमसे विदा माँग रहा हूँ। इसलिये विदा दो देवि, अब मैं जाता हूँ।

[जरत् ऋषि चले जाते हैं, कारु देवी मूर्छित होकर गिर पड़ती हैं, सखियाँ सँभालने लगतीं हैं।]

[पटाक्षेप]

तीसरा अंक

(पहिला दृश्य)

[स्थान–जनमेजय की राजसभा]

मंत्री–भाइयो, आप लोगों को मालूम है कि कई हजार वर्ष से हम लोग इस देश की सेवा कर रहे हैं और हमने यहा की नाग आदि जातियों को सभ्यता का पाठ पढाया है। इस देश को भूस्वर्ग बनाने के लिये हमने दिन रात पसीना बहाया है, एक साम्राज्य स्थापित करके यहा के आपसी झगडों को मिटाया है, हमारे पितामहों ने युद्ध का सदा के लिये अन्त करने के लिये महाभारत में लाखों प्राण गमाये थे इस प्रकार हमारी सेवाएँ असंख्य और अमूल्य होनेपर भी पापी नागों ने हमारे स्वर्गीय महाराज का दिन दहाडे धोखे से वध किया था। अपमान का यह टीका आर्यजाति के सिरपर तबतक के लिये लग गया है जबतक आर्य जाति इसका बदला न ले ले। हमारे महाराज की बाल्यावस्था होने के कारण अभी तक हम लोग इस विषय में कुछ न कर पाये पर समय आ गया है जब दृढता के साथ हम अपना कलंक–मोचन करें। कल सन्ध्या समय जब महाराजने मुझसे स्वर्गीय महाराज के निधन का वास्तविक समाचार जाना तभी से महाराज बेचैन है और उनने नागयज्ञ करने का विचार किया है। हमारे शास्त्रों में नागयज्ञ का

विधान है। पर आज तक इस विधान की पूर्ति नहीं हो पाई है। यह सुंदर अवसर हमारे सामने आगया है। इसे अपना सौभाग्य ही समझना चाहिये। नागयज्ञ करने की वंशपराम्परागत आकांक्षा पूर्ण करने का हम निमित्त पा गये हैं। मैं समझता हूँ कि महाराज का यह विचार आप लोगों को पसंद आयगा और आप लोग इस का उपाय सोचकर पूरा सहयोग प्रदान करेंगे।

एक सभासद—हमारे सिरपर जो कायरता के कलंक का टीका बीस वर्ष से लगा हुआ है उसे पोंछना हमारा परम कर्तव्य है। मैं मंत्री महोदय के वक्तव्य का समर्थन करता हूँ। कल ही युद्ध के लिये प्रयाण करना चाहिये और युद्ध में जितने लोग जीवित या मृत मिल सकें उनकी आहुति यज्ञ में देना चाहिये।

दूसरा सभासद—नागयज्ञ का समर्थन मैं भी करता हूं पर इसके लिये मैं युद्ध का विरोधी हूँ। युद्ध में से मुर्दे लाना और उसका होम करना यह अपने घर में यज्ञ करना नहीं है किन्तु अपने घर को श्मशान बनाना है। यज्ञमें मुर्दोंसे बाजी लेनेवाले घायलों से यज्ञ किया जा सकता है इसके लिये तो सर्वांगपूर्ण जीवित नागोंकी आवश्यकता है।

पहिला सभासद—पर ऐसे जीवित नाग कैसे मिलेंगे?

दूसरा सभासद—इसका उपाय सीधा है। हमारी सेनाओं के संगठित दल नाग लोगों के गावों पर धावा बोलें और जितने भी नागयुवक पकड़े जा सकें पकड़ कर यज्ञभूमि में भेज दें।

पहिला सभासद—पर शान्त नागरिकों पर इस प्रकार अत्याचार करना युद्ध-नीति के सर्वथा विरुद्ध है।

दूसरा सभासद—पर हम युद्ध कहाँ कर रहे हैं ? युद्ध में युद्ध-नीति का विचार किया जा सकता है पर यह तो यज्ञ है, धर्म है, इसमें युद्धनीति का विचार नहीं किया जा सकता । जब हम शिकार को जाते हैं तब क्या युद्ध-नीति का पालन करते हैं ? क्या जानवर आपके सामने दल बाँधकर लडने आते हैं ? क्या हम उनके घरों पर जाकर उनके प्राण नहीं लेते ? उनको कैद नहीं करते ? यदि हम जानवरों के साथ ऐसा करते हैं तो नागों के साथ क्यों नहीं कर सकते ?

पहिला सभासद—पर नाग लोग मनुष्य हैं ।

दूसरा सभासद—मनुष्याकार होने से ही कोई मनुष्य नहीं हो जाता । नागों को जानवरों से ऊँचा उठाकर प्रकारान्तर से आप आर्यों का अपमान कर रहे है । मैं सारे सभासदों से पूछता हूँ कि क्या नाग लोग मनुष्याकार होने पर भी मनुष्यों की अर्थात् हमारी बराबरी कर सकते हैं ?

सब सभासद—नहीं, कभी नहीं ।

दूसरा सभासद—बस, तब जानवरों की तरह उन्हें पकड लाने में युद्ध-नीति का कोई विरोध नहीं है ।

तीसरा सभासद—मैं भी यही समझता हूँ । युद्ध करने में हमें संगठित नागों का मुकाबिला करना पडेगा । युद्ध में किस की जीत हो किस की हार हो इसका क्या ठिकाना ! और कुछ न होगा तो जहाँ सौ नाग मरेंगे वहा पचास आर्य भी मरेंगे । हम पचास आर्यों की मौत के कारण क्यों बनें ? इसलिये हमें नागोंपर अचानक धावा करके ही जानवरों की तरह उन्हें पकड़ कर लाना चाहिये ।

मंत्री मैं समझता हूँ कि सभा की यही इच्छा है। मैं भी इसी नीति को पसद करता हूँ।

दूसरा सभासद्–पर इसके लिये हमें योग्य ऋपियोंका सहयोग प्राप्त कर लेना चाहिये, नागयज्ञ हर तरह पूरा यज्ञ होना चाहिये। वह सिर्फ सूना घर ही बनकर न रह जाये इसलिये होता उद्गाता ब्रह्मा, अध्वर्यु और सदस्यों के रूप में अच्छे अच्छे ऋषियो का प्रबन्ध होना चाहिये जिनका मन मजबूत हो।

मंत्री–आप लोग इसकी चिन्ता न करें। इस महायज्ञ में च्यवन वशी प्रसिद्ध वेदज्ञ श्रीमान चण्डभार्गवजी ने 'होता' बनना स्वीकार किया है। [तालियाँ] वृद्ध और परम विद्वान श्री कौत्सजी ने 'उद्गाता' होना स्वीकार किया है [तालियाँ] मुनिश्रेष्ठ जैमिनि जी 'ब्रह्मा' बनेंगे [तालियाँ] श्री शार्ङ्गरव और पिंगल मुनि ने 'अध्वर्यु' होना स्वीकार किया है (तालियाँ) और श्री उद्दालक, प्रमत्तक, असित, देवल, देवशर्मा, मौद्गल्य आदि प्रसिद्ध वेदज्ञ विद्वान 'सदस्य' बनेंगे। (तालियाँ) इन सबने प्रसन्नता से सहयोग देना स्वीकार किया है। आप विश्वास रखिये हमारे विद्वान इतने भीरु नहीं हैं कि नागों का रोना चिल्लाना सुनकर या उनको आग में तड़पते देखकर घबरा जाँय। वे दृढतामें वज्रको भी जीत सकते हैं। (तालिया)

दूसरा सभासद्–महाराज जनमेजय की !

सब सभासद्–जय।

दूसरा सभासद्–नाग-वशका !

सभासद्–क्षय।

(पटाक्षेप)

दृश्य दूसरा

[स्थान—वन पथ, एक वृद्ध दम्पति अपने जवान लडके और एक छोटी लडकी के साथ जा रहे हैं। दम्पति थककर बैठ जाते है]

वृद्ध—बेटा, अब तो नहीं चला जाता, कहाँ तक चलें और कहाँ जाँयँ ?

वृद्धा—बेटा, कोई ऐसी जगह देख, जहाँ जनमेजय न लगे जिस गाव को जनमेजय लगा वह उजड गया। वहा उल्लुओं की वस्ती हो गई। इससे तो इसी जगल मे रहना अच्छा है।

युवक—मा, पर जनमेजय तो जंगलों को भी लग रहा है। जगल में झोपडियाँ बनाकर रहनेवाले न जाने कितने किसान जनमेजय के शिकार हो गये हैं।

वृद्धा—हे भूतनाथ महाराज, तुम कहा हो ? जनमेजय पिशाच गावों, नगरों और जङ्गलों को भी लग रहा है और तुम्हारा त्रिशूल उस पापी के सिर पर नहीं गिरता।

युवक—मा, शकरजी की योगनिद्रा टूटते ही उस पापी का जल्दी अन्त हो जायगा।

वृद्धा—बेटा, शंकर जी को दिन में तीन बार जल चढाया कर जिससे उनकी योगनिद्रा जल्दी टूट जाय।

लड़की—जल तो मुझे भी चाहिये मा, बडी प्यास लगी है।

युवक—बहिन, मैं ला देता हूँ, अभी जङ्गल में जल कहीं मिल ही जायगा।

वृद्धा—नहीं बेटा, अकेला जङ्गल में मत जा, वहा जनमेजय लग जायगा।

लड़की—नहीं भैया, मुझे प्यास नहीं है। तुम अकेले मत जाओ वहा जनमेजय लगजायगा।

युवक—[हँसकर] तू जानती है जनमेजय क्या है ?

लड़की—वह एक पिशाच है भैया, वह जिसे लगता है वह आगमें जल जाता है।

युवक—पर मैं तो पानी लेने जाता हू, वहा आग कहा से आई ?

लडकी—नहीं भैया, जनमेजय तो पानीमें भी लग जाता है। मैं पानी नहीं पियूगी।

(एक पथिक का प्रवेश, वह उसके हाथ में पानी से भरा लोटा देता है।)

पथिक—ले बहिन, इस पानी में जनमेजय नहीं लगा है यह पी ले।

लड़की—(पिताजी की तरफ) पिताजी, इस पानी में तो जनमेजय नहीं है ?

वृद्ध—नहीं है बेटी, वह पिशाच इसमें नहीं है। [लड़की पानी का लोटा लेती है और गौर से पानी को देखती है फिर घबरा कर लोटा वापिस कर देती है।]

लड़की—इसमें किसी का चेहरा नच तो रहा है।

पथिक—नहीं बहिन, वह तो तेरी ही छाया होगी। मैंने तो इस लोटे से बहुत पानी पिया है। इसमें जनमेजय नहीं है।

(नेपथ्य में आवाज आजाती है 'अरे ओ जनमेजय के बच्चे' सब उसी ओर देखने लगते हैं। दूसरे पथिक का प्रवेश)

दूसरा सभासद—मैं प्यास से मर रहा हू और तू पानी का लोटा लेकर यहा भाग आया।

(पहिला पथिक दूसरे पथिक को मारने दौडता है।)

पहिला पथिक—सिर तोड दूगा अगर ऐसी गाली दी तो।

दूसरा पथिक—गाली न दूं तो क्या करू? मैं प्यासों मर रहा हू और तू लोटा लेकर चला आया।

पहिला पथिक–गाली देना है तो तू गधे का बच्चा कह उल्लू का बच्चा कह, सुअर का बच्चा कह, पिशाच का बच्चा कह, यह मैं सब सह लूंगा पर जनमेजय का बच्चा कहा तो सिर तोड दूगा। (वृद्ध की तरफ मुँह करके) देखो दादा, कोई इतनी खराब गाली सह सकता है?

वृद्ध–(दूसरे पथिक से) भैया, गुस्सा सदा रोकना चाहिये गाली देना अच्छा नहीं होता। फिर अगर कभी मुँह से गाली निकल ही पडे तो दुनिया में एक से एक बढकर खराब गालियां पडी हैं, देना है तो दे डाल, पर जनमेजय के बच्चे की गाली मत दे। अगर किसी पिशाच को भी ऐसी गाली दो तो वह भी न सहेगा फिर यह तो आदमी है।

दूसरा पथिक–पर मैंने तो हँसी में वह गाली दी थी।

वृद्ध– हँसी की भी मर्यादा होती है बेटा। हँसी में थपथपाना अच्छा मालूम होता है पर किसी के पेट में कटारी ठूँसना हँसी नहीं है। हँसी में और सब गालियाँ दी जा सकती हैं पर जनमेजय का बच्चा नहीं कहा जा सकता।

दूसरा पथिक— कान पकड़ता हूँ दादा [अपने कान पकड़ता है] अब कभी किसी को इतनी खराब गाली नहीं दूँगा ।

[निपथ्य में कोलाहल सुनाई देता है । सब चौकन्ने होकर सुनने लगते हैं । फिर आवाज आती है ' भागो भागो इस जंगल को जनमेजय लग रहा है ' आवाज सुनकर दोनों पथिक चिल्लाते हैं ' भागो भागो ' और भाग जाते हैं ।]

वृद्ध— बेटा, उनके साथ तू भी भाग जा ।

युवक— नहीं पिताजी, आपको छोडकर मैं भाग जाऊँ तो मुझे धिक्कार है ।

वृद्धा— हम लोगों की चिन्ता न कर बेटा । हमारा क्या ? हम तो मौत के किनारे बैठे हैं । कल नहीं आज गये । तू बचा रहेगा तो हमारा वंश बचा रहेगा - हम बचे रहेंगे ।

युवक—मनुष्यता खोकर अगर मैं बचा ही रहा तो इसमें वंश की क्या शोभा है ? जानवर बनकर जीने की अपेक्षा मनुष्य बनकर मरना हजार गुणा अच्छा है । मैं नहीं जाऊंगा मा ।

(जनमेजय के सैनिकों का प्रवेश वे युवक को पकड़ते हैं । युवक हाथ छुड़ाता है , थोडी झपाझपी के बाद वे युवक को पकड लेते हैं और लेजाना चाहते हैं, वृद्धा युवकका कंधा पकड़ लेती है । बहिन भी कमरसे लिपट जाती है ।)

वृद्धा—इसे मत लेजाओ, मेरा एक ही बेटा है ।

लड़की—भैया, भैया, [रोती है]

[सैनिक युवक को मा-बेटी से हटाने की कोशिश करते हैं पर दोनों इस तरह चिपट जाती हैं कि हटाये नहीं छूटतीं । तब सैनिक युवक को घसीट कर लेजाते हैं और मां बेटी भी घिसटती जाती हैं । साथ ही रोती चिल्लाती जाती हैं, उनके पीछे पीछे वृद्ध भी रोता जाता है और कहता है ।)

वृद्ध—बेटा, आखिर तुझे जनमेजय पिशाच लग ही गया ।

तीसरा दृश्य

[स्थान—इन्द्रसभा । आनन्द गान]

[गाना ८]

काली काली कोइलिया कूज रही कुंजन में गूँज रहे भौंरे हजार।
मंद मंद चलती बयार ॥ १ ॥
अणु-अणु में गूँज रहा प्रेमका संगीत सखि, झनक रहे वीणा के तार।
तार तार सुमनों के हार ॥२॥
चम्पा भी फूल रहा बेला भी फूल रहा, फूल रहे कुन्द डार डार।
कुंज कुंज आई बहार ॥३॥
लोल लोल लतिकाएँ लोट रहीं तरुओं पै, तरुओं का पाया दुलार।
अंग अंग छाया है प्यार ॥४॥
नाचते मयूर कहीं नाचतीं लताएँ कहीं, झूम रहीं सुमनों के भार।
अंग अंग शोभा अपार ॥५॥
वैर-भाव नष्ट हुआ दूर दुःख कष्ट हुआ, प्रेम राज्य आया द्वार द्वार।
आज दिखा जीवन में सार ॥६॥

(गीत के बाद द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—महाराज नागलोक से तक्षक जी आये हैं।

इन्द्र—उनको आदर सहित यहाँ भेजो।

[द्वारपाल का प्रस्थान]

इन्द्र—बहुत दिनों से मर्त्य और पाताल लोक के समाचार नहीं मिले। आज कुछ नये समाचार मिलने की आशा है।

मंत्री —अब तो त्रिविष्टप का और आर्यावर्त का सम्बन्ध ही टूटता जाता है।

इन्द्र--सिर्फ़ सकट के समय त्रिविष्टप याद आता है।

[तक्षक का प्रवेश, तक्षक इन्द्र को प्रणाम करता है और इन्द्र क इशारे से आसन पर बैठता है।]

इन्द्र—कहिये नागराज, आज कैसे पधारे ?

तक्षक--महाराज, प्राण-रक्षा के लिये आपकी शरण में आया हूँ।

इन्द्र—त्रिविष्टप की शक्तियाँ आश्रित जनके रक्षण के लिये सदा तैयार हैं इसलिये आप निर्भय है। पर सुनूँ तो, बात क्या है ?

तक्षक—महाराज ! आर्य लोग शताब्दियों से नागों पर अत्याचार करते आ रहे हैं। पर अब की बार जो अत्याचार वे कर रहे हैं, ऐसा अत्याचार न तो कभी किसी ने किया न कोई करेगा।

इन्द्र—इसमें सन्देह नहीं कि आर्यों का उन्माद बढ गया है। अब तो वे धीरे धीरे त्रिविष्टप से भी सबंध तोडते जा रहे हैं।

तक्षक--तभी तो वे निरकुश अत्याचारी हो गये हैं। उनने हमारे सैंकड़ों गाँव नष्ट कर दिये -- हजारों युवकों को ज़िन्दा जला दिया और उनने निश्चय किया है कि जब तक वे मुझे न जला देंगे तब तक चैन न लेंगे।

इन्द्र—क्या आर्य लोग मनुष्यों को जिन्दा जलाते हैं ? यह वीरता नहीं—क्रूरता है।

तक्षक— यह क्रूरता धोकेबाजी के साथ होने से और भी घृणित हो गई है। आर्य लोग युद्ध नहीं करते किन्तु डाकुओं

की तरह गाँवोंपर छापा मारते हैं और जितने युवक मिलते हैं पकड़ लेते हैं फिर राजधानी में ले जाकर उन्हें जला देते हैं। इस हत्या-काण्ड का नाम रक्खा है 'नागयज्ञ'। ढोंग भी यज्ञका पूरा किया है। होता उद्गाता आदि सब बनाये गये हैं।

इंद्र-- नागराज, आपकी ये बातें सुनकर मुझे बहुत खेद हो रहा है। आर्यावर्त में यज्ञ हो और मुझे निमन्त्रण भी न मिले उसकी सूचना भी न मिले यह आश्चर्य की बात है आर्यों की यह कृतघ्नता असह्य है। आर्यों को खासकर जनमेजय के पूर्वजों को त्रिविष्टप से सदा सहायता मिली है और आज ये लोग इतनी नीचता पर उतारू हो गये हैं। खैर, आप यहाँ आराम से रहिये। आर्य लोग आपका यहा कुछ भी नहीं कर सकते।

तक्षक-- महाराज, मैं सिर्फ अपनी रक्षा ही नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ कि यह नागयज्ञ बंद हो। आज तक ऐसा कोई यज्ञ नहीं हुआ जिसमें आपको निमन्त्रण न मिला हो पर इस यज्ञमें आपका पूरा अपमान हुआ है। दूसरी बात यह है कि आजतक यज्ञ के लिये मनुष्यों का इस प्रकार शिकार नहीं हुआ इसलिये यह यज्ञ पापरूप है। ऐसे पाप-यज्ञ का बंद करना आपका परम कर्त्तव्य है।

इंद्र-- मैं यह अन्याय सहन नहीं कर सकता। इसे रोकने की और अपराधियों को दण्ड देने की मैं पूरी चेष्टा करूँगा। समय कितना भी बदल गया हो पर आज भी मेरे हाथमें वज्र है।

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

[स्थान—वन पथ, कारु और आस्तीक का प्रवेश]

आस्तीक--मा, यह क्रूरता असह्य हो रही है। मैं समझ ही नही पाता कि मनुष्य इतनी निर्दयता कैसे कर सकता है ?

कारु--बेटा, मनुष्य ससार का सब से क्रूर जानवर है। सिंह व्याघ्रादि की क्रूरता इसके आगे किसी गिनतीमें नहीं। सिंह जानवरों को मारता है फिर भी विवेक रखता है, वह सिर्फ पेट भरने के लिये जानवर मारता है पेट भरने पर उसकी हिंसकता शान्त हो जाती है परन्तु मनुष्य का पेट कभी नहीं भरता। वह संग्रह करता है और उसको बढाने के लिये जीवनभर हिंसा करता है। सिंह अपनी जाति के जानवर का शिकार कभी नहीं करता परन्तु मनुष्य मनुष्य का शिकार करता है। ऐसा मालूम होता है कि सिंहादि क्रूर जानवरों को भी प्रकृति ने जो विवेक दिया है मनुष्य ने अपनी बुद्धि से उसका भी नाश कर दिया है।

आस्तीक--मा, मनुष्य की यह पशुता जाना चाहिये।

कारु--मनुष्य मे अगर यह पशुता ही होती तो भी गनीमत थी वह पेट भरने के लिये ही पाप करता, वह परिमित और परिहार्य होता परन्तु मनुष्य में पशुता के साथ पैशाचिकता है। वह रोटी के नामपर सार्थक पाप ही नहीं करता पर धर्म, सभ्यता, संस्कृति, जाति आदि के नामपर निरर्थक पाप भी करता है। कुछ मनुष्य आर्य कहलाते हैं, कुछ मनुष्य नाग कहलाते हैं इसलिये दोनों एक दूसरे के खून के प्यासे हैं। आज आर्यों की बारी है

इसलिये वे ऐसा भयकर अत्याचार कर रहे हैं जैसा आज तक किसी ने नहीं किया और भविष्य में कदाचित् कोई न कर सकेगा।

आस्तीक--मा, ऐसा लगता है कि मैं आर्यों की इस पैशाचिकता को नष्ट करने के लिये अपने प्राण लगा दूँ। जब एक तरफ मनुष्य इस प्रकार जानवरों की तरह नष्ट हो रहे हों और दूसरी तरफ इस प्रकार पैशाचिकता दिखा रहे हों तब मेरा चैनसे बैठना लज्जास्पद है।

कारु--बेटा, मैंने तेरे ही लिये अपने जीवन में यह परिवर्तन किया है और एक आर्य ऋषि के साथ इसीलिये विवाह किया था कि उससे तुझ सरीखी सतान पाकर हम लोग आर्यों और नागों के मिलाने के लिये एक प्रेमसूत्र दे सकें। बेटा, तुझसे मैं ऐसी ही आशा करती हूँ।

आस्तीक--मा, मैं तुम्हारे आशीर्वाद से अवश्य ही तुम्हारी आशा पूरी करूंगा।

कारु--तभी तेरा और मेरा जीवन सार्थक होगा बेटा। मैं तुझे इसीलिये लाई हूँ कि तू मनुष्य की पैशाचिकता के दर्शन कर सके।

(एक तरफ से प्रस्थान और दूसरी तरफ से जरत् का प्रवेश)

जरत्--सेवा का मार्ग कठिन है। मुक्ति के लिये गृहत्याग कितना सरल था। उस समय आर्य भी सिर झुकाते थे और नाग भी। जगत को कुछ नहीं देता था पर जगत सब कुछ मुझे देता था पर आज जब दभ छोड़कर जगत की सेवा करने चला, सर्वस्व

के साथ जब वाहवाही और पूजा सत्कार का त्याग कर जगत को सुखी बनाने के लिये सारी शक्ति लगाई तब चारों तरफ से तिरस्कार की वर्षा हो रही है। बड़ी से बड़ी विपत्तियों को सहना सरल है प्रलोभनों पर भी विजय पाई जा सकती है पर जगत् का यह अन्धेर सहना कठिन है। इसीलिये जगत में सैकडों मुक्तात्मा हैं पर मुक्त सेवक ढूँढे भी नहीं मिलते । देवी कारु जो साधना कर रही है वैसी साधना कितने मुक्तात्मा कर पाते हैं । मनुष्य मनुष्य के खूनका प्यासा है, वह मनुष्य होकर भी पिशाच बन रहा है उसकी पैशाचिकता दूर करने के लिये-आर्यों और नागों को मनुष्य बनाने के लिये-कारु के जीवन का क्षण क्षण जाता है मैंने भी उससे यही पाठ सीखा है। पर कितना कठिन है यह पाठ ! ऋषि, तपस्वी और जिन बनना सरल है पर सच्चा जन-सेवक बनना कितना कठिन है ! चुपचाप जीवन का बलिदान किये बिना इस पथ पर सफलता से नहीं चला जा सकता ! ईश्वर, मुझे मर मिटने का बल दे ।

[प्रस्थान]

पाँचवाँ दृश्य

[स्थान—एक नाग गृहस्थ का घर। युवक पुत्र बीमार होकर खाटपर पड़ा है उसकी विधवा माता सिरहाने बैठी है. बहिन उत्सुकता से रोगी की तरफ देख रही है।]

मां– बेटा, कैसी तबियत है ?

युवक– क्या बताऊँ मा, अंग अंग में बड़ा दर्द हो रहा है सिर फटा जा रहा है और चिन्ता के मारे और भी बेचैनी है ।

मां— बेटा, चिंता न कर। पहिले बीमारी हट जाने दे फिर चिन्ता करते रहना।

युवक— चिन्ता क्यों न हो मा। आज पद्रह दिन हो गये मैं खाट पर पडा हूँ। घर में खाने को कौन लायेगा ? लकडियाँ भी न होंगी, कैसे काम चलेगा ?

मां— हम लोग सब कर लेंगे बेटा, लकडियाँ तो सुपर्णा बटोर लाई थी। मुट्ठी दो दो मुट्ठी अनाज से गुजर कर रही हूँ।

युवक— इस जनमेजय पिशाच ने सत्यानाश कर दिया मा, नहीं तो मैं नहीं तो गाववाले सब कर देते मैं सबके काम आता हूँ फिर सब मेरे काम क्यों न आते मा ? फिर क्या मेरी सुपर्णा वहिन को लकडियाँ लाना पडतीं।

(सुपर्णा का हाथ पकड लेता है और रोने लगता है।)

मां— भाग्य पर किसका वश है बेटा। बेचारे पडौसी क्या करें। सब जगलों में भाग गये हैं न जाने कब कहाँ से यमदूत की तरह जनमेजय के सिपाही आजायँ। सब व्यापार रोजगार खेतीबाडी का नाश हो गया।

युवक—देख माँ, मेरी बहिन के हाथ में लकडी की खरोंच लग गई है, खून आ गया है। माँ, मेरे जीते जी तुम दोनों का यह कष्ट देखा नहीं जाता। पिताजी कैलाश पर बैठे बैठे क्या कहते होंगे कि बेटा जाया पर किसी काम न आया।

सुपर्णा—भैया, तुम यह सब क्या कहते हो? बीमारी सब को आती है और जिंदगी में सब को सभी काम करना पडते हैं

इसमें आपत्ति क्या है ? क्या मैं इतनी भी महनत नहीं कर सकती ?

मां--बेटा, किसी तरह तू अच्छा होजा फिर सब ठीक हो जायगा ।

युवक--माँ, मुझे ठीक होने की चिंता नहीं है पर डर है कि मुझे जनमेजय लग जायगा । मरने की चिंता नहीं है पर मेरे पीछे तुम्हारी सेवा कौन करेगा ?

मां--बेटा, ऐसी अपशकुन की बातें न कह । जनमेजय किसी पापी को भी न लगे ।

युवक--माँ, आर्यों ने हमारे देश का नाश कर दिया । इन जंगलियों ने अपने पशुबल से हमारी उच्च सभ्यता को बर्बाद कर दिया । इन्हें कला-कौशल और सभ्यता हमने सिखाई पर ये कृतघ्न निकले । सबेरे से किसी पिशाच का मुँह दिख जाना अच्छा पर किसी आर्य का मुँह दिखना अच्छा नहीं ।

मां--अब शंकरजीकी योगनिद्रा जल्दी ही खुलेगी और ये पापी अपना फल चखेंगे ।

युवक--शंकर शंकर., जागो महादेव ! मां, प्यास लगी है ।

सुपर्णा--मैं पानी लाती हूँ भैया ।

[पास में रखे हुए मिट्टी के घड़े से सुपर्णा सकोरे में पानी लेती है और युवक के हाथ में देने लगती है इतने में जनमेजय के सिपाहियों का प्रवेश होता है उनको देखकर सुपर्णा चौंक उठती है उसके हाथ का सकोरा छूटकर गिर पड़ता है । पानी बह जाता है ।]

सिपाही—आखिर यहां भी एक यज्ञपशु मिल ही गया ।

(सुपर्णा और उसकी मां रोने लगती है वे युवक की खाट को ओट में करके खडी हो जाती हैं। सिपाही उन्हें धक्का देकर युवक को पकड लेते हैं। युवक बीमारी में भी उत्तेजित होकर उठ बैठता है और जोश में एक सिपाही को इतने जोर से धक्का देता है कि सिपाही गिर पडता है। पर बाकी सिपाही उसके हाथ रस्सी से बाँध देते हैं और दो चार मुक्के जमाते हैं।)

सिपाही— अगर तू यज्ञ का जानवर न होता तो तेरे अभी टुकडे टुकडे कर दिये जाते।

मां— (सिपाहियों से) भैया, मेरे एक ही बेटा है और पंद्रह दिन से बीमार है।

सिपाही—तो बीमार बच्चे का क्या करोगी? हम लोग ले जाकर उसकी बीमारी ही दूर न कर देंगे पर उसका यह पशु शरीर भी छुड़ा देंगे। [सब सिपाही आपस में हँसते हैं]

मां— ऐसा न कहो भैया, तुम्हारे भी बच्चे होंगे वे भी बीमार पडते होंगे पर उनकी बीमारी कोई इस तरह से दूर करे तो तुम्हें कैसा लगे?

सिपाही— चल, बकबक मत कर, हमारे भी बच्चे होंगे! और उनकी बीमारी कोई इस तरह दूर करेगा? अगर दूसरी बार इस तरह की बात निकाली तो तेरी जीभ निकाल ली जावेगी।

मां— भैया, दया करो हम अभागिनों को और न सताओ मेरे बुढापे की लकडी यही है।

सिपाही—चल, तो यह लकडी छोड दे और लड़की को लेकर घर बैठ।

[युवक को खींचकर लेजाना चाहते हैं मॉ बेटी उसे जकड कर रह जाती है। सिपाही उसे छुडाने की कोशिश करते हैं पर जब नहीं छुटता तब वृद्ध को और उसकी लडकी को हण्टर मारते हैं इसी समय जरत् का प्रवेश]

जरत्-खबरदार, अगर आगे हाथ बढाया तो। तुम लोग पुरुष होकर भी निरपराध नारियों पर हाथ उठाते हो ! तुम्हें शर्म नहीं आती ?

सिपाही--(जरत् को प्रणाम करके) ऋषिराज, हम क्या करें ? हम तो सिर्फ इस यज्ञपशु को ले जाना चाहते हैं पर ये दोनों इसमें बाधा डालतीं हैं। हम लोग कबतक इन्हें मनायें ? हमें तो थोड़े ही दिनों में हजारों यज्ञपशु इकट्ठे करना है।

जरत्--तुम मनुष्य को पशु कहते हो, निरपराधों का खून करते हो, नारियों पर अत्याचार करते हो यह तुम्हारी मनुष्यता है ?

सिपाही--महाराज, आप किसी तपस्या में लीन रहे हैं इसलिये आपको मालूम नहीं है कि अपने सम्राट् जनमेजय पवित्र नागयज्ञ में दीक्षित हुए है, उन्हीं की आज्ञा से ये नागपशु इकट्ठे किये जाते हैं।

जरत्--जानता हू, सब जानता हू उस आर्य-कुल-कलंक जनमेजय को जानता हू। वह संसार का सब से बडा कसाई है-पिशाच है।

सिपाही--आप आर्य ऋषि होकर भी अपने सम्राट् के विषय में ऐसा क्यों कहते हैं ?

जरत्--बस, मुझे आर्य ऋषि मत कहो। एक दिन मैं आर्य ऋषि कहलाने में गौरव मानता था पर अब तुम्हारी करतूतें देखकर आर्य कहलाने की अपेक्षा पिशाच कहलाना अधिक पसन्द करूंगा।

(सुपर्णा और उसकी मां रोने लगती है वे युवक की खाट को ओट में करके खडी हो जाती हैं। सिपाही उन्हें धक्का देकर युवक को पकड लेते हैं। युवक बीमारी में भी उत्तेजित होकर उठ बैठता है और जोश में एक सिपाही को इतने जोर से धक्का देता है कि सिपाही गिर पडता है। पर बाकी सिपाही उसके हाथ रस्सी से बाँध देते हैं और दो चार मुक्के जमाते हैं।)

सिपाही– अगर तू यज्ञ का जानवर न होता तो तेरे अभी टुकडे टुकडे कर दिये जाते।

मां– (सिपाहियों से) भैया, मेरे एक ही बेटा है और पंद्रह दिन से बीमार है।

सिपाही—तो बीमार बच्चे का क्या करोगी? हम लोग ले जाकर उसकी बीमारी ही दूर न कर देंगे पर उसका यह पशु शरीर भी छुडा देंगे। [सब सिपाही आपस में हँसते हैं]

मां– ऐसा न कहो भैया, तुम्हारे भी बच्चे होंगे वे भी बीमार पडते होंगे पर उनकी बीमारी कोई इस तरह से दूर करे तो तुम्हें कैसा लगे?

सिपाही– चल, बकबक मत कर, हमारे भी बच्चे होंगे! और उनकी बीमारी कोई इस तरह दूर करेगा? अगर दूसरी बार इस तरह की बात निकाली तो तेरी जीभ निकाल ली जावेगी।

मां– भैया, दया करो हम अभागिनों को और न सताओ मेरे बुढापे की लकडी यही है।

सिपाही—चल, तो यह लकड़ी छोड दे और लड़की को लेकर घर बैठ।

[युवक को खींचकर लेजाना चाहते हैं माँ बेटी उसे जकड कर रह जाती हैं। सिपाही उसे छुडाने की कोशिश करते हैं पर जब नहीं छुटता तब वृद्धा को और उसकी लडकी को हण्टर मारते हैं इसी समय जरत् का प्रवेश]

जरत्--खबरदार, अगर आगे हाथ बढाया तो। तुम लोग पुरुष होकर भी निरपराध नारियों पर हाथ उठाते हो! तुम्हें शर्म नहीं आती?

सिपाही--(जरत् को प्रणाम करके) ऋषिराज, हम क्या करें! हम तो सिर्फ इस यज्ञपशु को ले जाना चाहते हैं पर ये दोनों इसमें बाधा डालती हैं। हम लोग कबतक इन्हें मनायें? हमें तो थोड़े ही दिनों में हजारों यज्ञपशु इकट्ठे करना है।

जरत्--तुम मनुष्य को पशु कहते हो, निरपराधों का खून करते हो, नारियों पर अत्याचार करते हो यह तुम्हारी मनुष्यता है?

सिपाही--महाराज, आप किसी तपस्या में लीन रहे हैं इसलिये आपको मालूम नहीं है कि अपने सम्राट् जनमेजय पवित्र नागयज्ञ में दीक्षित हुए हैं, उन्हीं की आज्ञा से ये नागपशु इकट्ठे किये जाते हैं।

जरत्--जानता हूं, सब जानता हू उस आर्य-कुल-कलंक जनमेजय को जानता हू। वह ससार का सब से बडा कसाई है-पिशाच है।

सिपाही--आप आर्य ऋषि होकर भी अपने सम्राट् के विषय में ऐसा क्यों कहते हैं?

जरत्--बस, मुझे आर्य ऋषि मत कहो। एक दिन मैं आर्य ऋषि कहलाने में गौरव मानता था पर अब तुम्हारी करतूतें देखकर आर्य कहलाने की अपेक्षा पिशाच कहलाना अधिक पसंद करूंगा।

सिपाही--तो क्या आप आर्य कुल में पैदा होकर अपने को आर्य भी नहीं मानना चाहते ?

जरत्--नहीं ।

सिपाही--बडे खेद की बात है। अस्तु, आप की इच्छा, पर अब आप हमारे काम में बाधा न डालिये।

जरत्--मेरे जीते जी तुम लोग इस युवक को नहीं ले जासकते।

सिपाही--आप हठ न कीजिये। हम लोग ब्रह्महत्या से डरते हैं इसलिये आप से प्रार्थना करते हैं । आप आर्य-कुल में पैदा हुए हैं, ब्राम्हण हैं, ऋषि हैं और हमारे पूज्य हैं। फिर भी हम लोग कार्य में बाधा नहीं सह सकते।

जरत्--अरे धर्म नाम को कलङ्कित करने वाले पापियो, तुम इस कसाई काम को धर्म कहते हो ? जरा शर्म करो, तुम्हारी जीभ में कीडे पड जाँयगे।

सिपाही--बस आप चुप रहिये। यज्ञपशु को ले जाने दीजिये।

जरत्—नहीं ले जा सकते।

(सिपाही युवकको खींचते हैं और जरत् ऋषि सिपाही का गला पकड लेते हैं एक सिपाही उन्हें डराने के लिये कटार दिखाता है, जरत् ऋषि झपटकर उसकी कटार छीन लेते हैं और एक सिपाही के गलेपर कटार का वार करते हैं, सिपाही घायल होकर गिर पडता है, दूसरे सिपाही वार करते हैं, अन्त में जरत् घायल होकर गिर पडते हैं। युवक छूट जाता है, वह सिपाहियों पर आक्रमण करता है पर अन्त में वह भी घायल होकर गिर पडता है)

सिपाही—हाय! हाय!! ब्रम्हहत्या भी हो गई और यज्ञपशु भी बेकाम हो गया।

[सिपाही घायल साथी को लेकर चले जाते हैं]

मॉँ--हाय, ऋषिराज, तुमने आर्य ऋषि होकर भी हम नागों की रक्षा के लिये अपने प्राण दे दिये।

जरत्--बहिन, मेरा जीवन सार्थक होगया।

युवक--मॉ, मुझे जरा उठाओ।

(मा और सुपर्णा युवक को उठातीं हैं, युवक धीरे धीरे खिसक कर जरत् ऋषि के पैरों पर अपना सिर रख देता है और पैरों पर सिर रक्खे ही लेट जाता है)

ऋषिराज, मुझे क्षमा करो। मैं जनमेजय की नरपशुता से चिढकर सारी आर्य-जाति को ही नरपशु समझता था। पर अब इस भूल के लिये क्षमा चाहता हू। अगर आर्य जाति में जनमेजय सरीखे नरपशु हैं तो आप सरीखे दिव्य पुरुष भी हैं। आपके माता पिता धन्य हैं, आर्य जाति धन्य है।

(कारु और आस्तीकका प्रवेश)

कारु--देखो बेटा, इस घर को आर्यों ने स्मशान बना दिया।

(कारु को देखकर सुपर्णा और उसकी मा करुण विलाप करने लगती हैं)

सुपर्णा- (कारु से) मा, हम अनाथ हो गये।

मां- और हमारे पीछे इन ऋषिराज के भी प्राण गये।

कारु- (जरत् ऋषि को देखकर और चकित होकर) आर्यपुत्र, आप यहा कहा?

सुपर्णा—मां, सिपाहियों से भैया की रक्षा करने मे इन्हें पापी सिपाहियों ने घायल कर दिया।

कारु- नाथ, आपने यह क्या किया?

जरत्- मनुष्य जीवन सफल बनाया देवि, आर्य जाति के पापों का थोडा प्रायश्चित्त हो गया। रेशम के बिस्तर पर मरने की अपेक्षा आज की यह वीरशय्या अधिक संतोषप्रद है।

कारु--(रोने लगती है) नाथ, पर आप मुझे इस प्रकार मॅझधार में क्यों छोड जाते हैं!

जरत्--दुःख न करो देवि, मेरा रक्त आर्यों और नागों को मिलाने मे सहायक होगा।

आस्तीक--पिताजी, पर आपने इस तरह अज्ञातवास क्यों किया?

जरत्--अज्ञातवास न किया होता बेटा, तो घरमें ही कीडे की मौत मर गया होता। पर आज यह कितना बडा सौभाग्य है कि वीरशय्यापर पडा पडा मर रहा हूं। और इस समयभी तुझे ओर तेरी मा को देखकर पूर्ण मुख का अनुभव कर रहा हू। मुझे आशा है कि तू मेरे और अपनी मा के अधूरे काम को पूरा करेगा।

आस्तीक-- पिताजी, आप विश्वास रखिये कि मैं इस पाप का सदा के लिये अन्त कर दूगा अगर न कर सकूगा तो शीघ्र ही स्वर्ग में आकर आपसे उपाय पूछूँगा।

जरत्--धन्य, स तु...ष्ट · हु...आ।

(जरत्‌ कपि की मृत्यु, कारु का बेहोश हो जाना, सब का कारु को सम्हालना)

[पटाक्षप]

छट्ठा दृश्य

(इन्द्र और तक्षक टहल रहे है)

तक्षक--देवराज, मैं बहुत बेचैन हू। रातभर मुझे नींद नहीं आती। मेरी जाति के सैकड़ों हजारों मनुष्य अग्नि में जिन्दे जलाये जाते है, उनका करुण क्रन्दन मानों मेरे कानों के पास गूंज रहा है और उसमें मेरे कान फटे जारहे हैं। इसका शीघ्र उपाय कीजिये देवराज।

इन्द्र--आर्यों की इस कृतघ्नता और त्रिविष्टप के विषय में लापर्वाही देखकर मैं स्वय चिन्तित हू । मैं शीघ्र ही कुछ न कुछ उपाय करूगा । तब तक आप सुरक्षित हैं ।

तक्षक--मेरी सुरक्षा का कुछ अर्थ नहीं है देवराज, मेरा एक एक घडी का जीवन सैकडों लोगों के प्राण ले रहा है । इसकी अपेक्षा तो यही अच्छा है कि मैं स्वय जनमेजय के सामने उपस्थित होजाऊ । मैंने सुना है कि मुझे जला देने के बाद जनमेजय यज्ञ बन्द कर देगा ।

इन्द्र--पर इससे नाग जाति की इज्जत को बहुत धक्का लगेगा।

तक्षक--पर इस तरह तो सारी नागजाति समाप्त होजायगी फिर इज्जत किसके लिये बचेगी ?

इन्द्र--पर मेरी शरण में आकर भी इस तरह निराश होकर चला जाना पडे यह त्रिविष्टप की इज्जत को भी बडा भारी धक्का है ।

तक्षक--पर त्रिविष्टप को धक्का लगने की अपेक्षा मनुष्यता को जो धक्का लग रहा है वह इससे भी बहुत बडा है ।

इन्द्र (कुछ ठहर कर और निराशा से गहरी स्वास लेकर) भाई, मैं किंकर्तव्यविमूढ हो रहा हू । मैं समझ नहीं सकता कि क्या करू ? ऐसा माल्हम होता है कि त्रिविष्टप के भी अन्तिम दिन आगये हैं ।

तक्षक--यज्ञ के नामपर चलनेवाले इस हत्याकाड को अगर आप न रोक सके तो त्रिविष्टपका नाम सदाके लिये लुप्त हो जायगा ।

[इन्द्र फिर विचार में पडकर स्तब्ध हो जाते है]

तक्षक--अच्छा तो विदा दीजिये देवराज ।

इन्द्र -नहीं भाई, मैं इस तरह विदा नहीं दे सकता। तुम्हारी विदाई मेरे प्राणों की विदाई है।

तक्षक पर अब मेरे सामने दूसरा कोई रास्ता नहीं है, मुझे जाना ही होगा।

इन्द्र–(कुछ विचार कर) ठीक है कोई दूसरा रास्ता नहीं है तुम्हें वहा पहुचना ही चाहिये। पर साथ में मै भी चलूगा। देखू आर्य लोग कितने कृतघ्न हो गये हैं! जो आर्य सम्राट होकर भी एक दिन त्रिविष्टप के द्वार पर भिखारी के समान आते थे वे आज अपने द्वार पर इन्द्र को देखकर क्या करते है?

तक्षक–कृतार्थ हुआ देवराज, अब मेरी रक्षा हो या न हो पर आपके उपकार का मैं ऋणी हूँ।

[प्रस्थान]

सातवाँ दृश्य

[स्थान–जनमेजय की यज्ञभूमि। यज्ञ का कार्य शुरू होनेवाला है। नेपथ्य मे से कुछ ऐसा प्रकाश आ रहा है मानो वहाँ अग्नि जल रही है। इतने में ऋषि लोग आते हैं, अपने अपने स्थानों पर बैठते हैं।]

देवशर्मा—होता जी, यह हत्याकाड कब तक चलेगा?

चण्ड भार्गव—जब तक नागजाति नामशेष न हो जायगी।

पिंगल—मैं तो नहीं समझता कि इस तरह नागजाति नामशेष हो जायगी। यद्यपि हजारों नाग जला दिये गये हैं पर लाखों मौजूद हैं। सुनते हैं कि नागों ने भी सैनिक सगठन किया है और वे आर्य सैनिकों को मारते भी हैं।

देवशर्मा- समाचार तो यह भी है कि कुछ आर्य ऋषि भी नागों की रक्षा में प्राण लगा रहे हैं। सैनिकों ने कहा है कि एक नाग के घर में उन्हें एक आर्य ऋषि का विरोध सहन करना पड़ा आखिर हम लोग उस नागयुवक को नहीं ला सके।

पिंगल- यह तो वडे आश्चर्य का समाचार है। इससे आर्यो की जाती हुई इज्जत कुछ न कुछ बच जायगी।

चण्डभार्गव- जिस दिन महाराज जनमेजय ने यज्ञ करने का निश्चय किया था उस दिन आप लोगों ने पक्का वचन दिया था कि हम नागयज्ञ से घबरायेंगे नहीं पर आज इतने क्यों घबराये हुए हैं ?

पिंगल- होता जी, महाराज परीक्षित के वध के अपमान से हमारा दिल जल रहा था इसलिये हम लोगों को नागयज्ञ में उत्सुकता थी, पर उसके बदले में इतना खून बहाया गया है कि उसकी धार में मन की आग कभी की बुझ चुकी है, हम समझते हैं कि यह मनुष्यता का चिन्ह है, निर्बलता का नहीं।

चण्डभार्गव- पर जिस तक्षक ने महाराज का वध किया था वह तक्षक तो अभी जीवित ही है।

देवशर्मा— पर वह जिस आग में जल रहा है वह आपकी यज्ञ की आग से कम नहीं है, अब वह पछताने के लिये जीवित भी रहे तो क्या हानि है !

चण्डभार्गव- तो आप लोगों की क्या इच्छा है ? क्या आप यज्ञ में सहयोग नहीं करना चाहते ?

पिंगल—सो बात तो नहीं है, हम लोग घर फोडना नहीं चाहते, पर यह जरूर चाहते हैं कि आप हमारी बात पर विचार करें अगर आपको ठीक जँचे तो इस यज्ञ को बन्द करने का कुछ उपाय निकालें।

चण्डभार्गव—भाई, मन तो मेरे पास भी है और उसकी आग भी बुझ गई है पर मेरी जिम्मेदारी सबसे अधिक है। जबतक स्वयं जनमेजय नहीं कहते तबतक यज्ञ बद करने की बात भी मैं उन से नहीं कर सकता। हाँ, यज्ञ बंद करने का कोई निमित्त मिले तो मैं जल्दी राजी हो जाऊँगा।

[इतने में जनमेजय आते हैं वे अपने आसन पर बैठ जाते हैं, यज्ञ कार्य शुरू होता है, एक नागयुवक जलाने के लिये लाया जाता है उसके हाथ पीछे से बँधे हैं, ऋषियों के मुख से स्वाहा शब्द निकलते ही वह नेपथ्य के कुण्ड में ढकेल दिया जाता है, एक दो बार जोर की चीख सुनाई देती है। द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल—महाराज, देवराज इन्द्र पधारे हुए हैं और उनके साथ तक्षक भी है।

सब लोग—(आश्चर्य से उच्च स्वर में) तक्षक!

जनमेजय—(आनन्द से सिर हिलाते हुए) ले आओ ले आओ!

[द्वारपाल का प्रस्थान। आपस में सब लोग प्रसन्नतासूचक इशारे करते हैं। इन्द्र और तक्षक का प्रवेश]

जनमेजय—पधारिये देवराज!

(इन्द्र एक आसन पर बैठते हैं, पास में तक्षक भी बैठता है)

इन्द्र—तुम लोगों ने यह हत्याकांड क्यों मचा रक्खा है?

जनमेजय—यज्ञ को हत्याकांड कहकर यज्ञ का अपमान

न कीजिये देवराज ।

इन्द्र- पर क्या आर्यों में ऐसा भी कोई यज्ञ हुआ है जिसमें इन्द्रादि देवों का आह्वान न किया गया हो ।

जनमेजय- मन्त्रों के द्वारा सभी देवोंका आह्वान किया गया है।

इंद्र- पर ऐसा आह्वान पहिले कभी नहीं हुआ ।

जनमेजय- पर ऐसा यज्ञ भी पहिले कभी नहीं हुआ ।

इन्द्र- यह स्पष्ट ही त्रिविष्टप की अवहेलना है । यह घोर कृतघ्नता है ।

जनमेजय- त्रिविष्टप का ऐसा क्या कृत है जिसका हनन किया गया है ?

इन्द्र- बड़े बड़े आर्य राजाओं को अन्त में त्रिविष्टप ही शरण देता आया है । तुम्हारे पूर्वज पाडव और उनके पूर्वज भी अन्त में त्रिविष्टप की शरण में आये थे । त्रिविष्टप ने ही आर्य सम्राटों को और आर्य ऋषियों को जीवन के अन्त तक शान्ति और आनन्द दिया है। तुम्हारे प्रपितामह अर्जुन त्रिविष्टप से कुछ पाकर और कुछ सीखकर युद्ध में विजयी हुए थे पर आज तुम उन्हीं के वंशज होकर त्रिविष्टप की इतनी अवहेलना कर रहे हो ।

जनमेजय- देवराज, त्रिविष्टप ने आर्यों के साथ जो कुछ किया है वह आर्यों की भलाई के लिये नहीं किन्तु अपने स्वार्थ के लिये किया है। आर्यों की कमाई के बलपर त्रिविष्टप ने सैकड़ों वर्ष गुलछर्रे उडाये हैं । अप्सराओं के नाम से कुछ चरित्रहीन स्त्रियाँ देकर आर्य सम्राटों का सर्वस्व छीन लिया है। अपने यहा चरित्रही जीवन विताने के लिये कुछ सुविधा देकर यज्ञ के नाम ो क

लिया है उसने आर्यावर्त को कङ्काल बना दिया है। अब आर्यावर्त न त्रिविष्टप की चरित्रहीन अप्सराएँ चाहता है और न उसे वहा के कुञ्जों की चाह है और न ऐसे यज्ञों की जरूरत है जिसमें आर्यावर्त का सारा धन धान्य और सार पदार्थ त्रिविष्टप चला जाय। हमारे पूर्वजों ने अगर त्रिविष्टप से कभी कुछ लिया है तो उसका बदला सौगुणा करके दिया है। हमारे पूज्य प्रपितामह त्रिविष्टप में कुछ दिन रहे थे परन्तु इसी के बदले में त्रिविष्टप के समर्थ शत्रु निवात-कवचोंको जीतकर उन्होंने त्रिविष्टप की रक्षा की थी। जबजब त्रिविष्टप पर आपत्ति आई, आर्य लोग सहायता के लिये दौडे गये। पर त्रिविष्टप ने सदा उन्हें लूटने की कोशिश की, उन्नति में सदा अडंगे लाये, अगर कभी कुछ दिया तो चरित्रहीन बनाकर निर्बल कर दिया। पर देवराज, अब वे दिन लद गये। अब आप क्षमा करें हमें अब त्रिविष्टप की जरूरत नहीं है। आप यहा तक आये सो अच्छा किया। साथ ही हमारे यज्ञपशु को लेते आये इसके लिये हम आपके आभारी हैं। यथायोग्य हम आपका पूजा सत्कार करेंगे।

इन्द्र—जनमेजय, तेरी धृष्टता यहा तक बढ गई है इसकी मैं कल्पना तक नहीं कर सकता था।

जनमेजय—पर जगत् आपकी कल्पनाओं का दास नहीं है देवराज।

इन्द्र- फिर भी तुम मेरे रहते तक्षकको हाथ नहीं लगा सकते।

जनमेजय- देवराज, तक्षक की आहुति दिये बिना यज्ञ पूरा न होगा इस लिये तक्षक की आहुति अवश्य दी जायगी।

इन्द्र--देखूँ, मेरे हाथ से तक्षक को कौन छुडाता है ?

जनमेजय--हम आपसे निवेदन करते हैं कि आप तक्षक को छोड दें ।

इन्द्र--मैं तक्षक को नहीं छोड़ सकता ।

जनमेजय--तो ऋषियों, तक्षक के साथ देवराज की भी आहुति दे दो ।

इन्द्र- (चौंककर) इतनी धृष्टता ।

जनमेजय--हमारे कर्तव्य पथ में आप आडे आवेंगे तो हम सब कुछ करेंगे । सन्मान का मार्ग यही है कि आप तक्षक को छोडकर चुपचाप चले जायें ।

(खिन्न और लज्जित होकर इन्द्र का प्रस्थान)

जनमेजय--कहो, नागराज, और है अब कोई तुम्हारा रक्षक ?

तक्षक--जनमेजय, मैं मौत से नहीं डरता । मैं मर जाऊगा हजारों नाग भी मर जाँयेंगे पर नाग जाति नहीं मर सकती । वह तुम्हारे पाप का बदला लेगी ।

जनमेजय--ऋषियो, अभी तक्षककी आहुति न दो । सन्ध्या को तक्षक की आहुति दीजायगी तब तक बाकी आहुतियाँ पडने दो जिससे तक्षक अपने जाति भाइयों का आक्रन्दन अच्छी तरह सुन सके, उनकी तडपन अच्छी तरह देख सके और फिर समझ सके कि आर्यों के साथ छल करने का क्या फल होता है ?

(तक्षक को एक किनारे बाँध कर खडा कर दिया जाता है। आस्तीक मुनिका प्रवेश)

आस्तीक—

[गीत ९]

वे आर्यवीर कहलाते है।
जो जग-सेवा कर जाते हैं॥

जो गुणगण पारावार बने।
धन के बल के भंडार बने।
विज्ञान-कला की धार बने।
मानवता के अवतार बने॥
सेवा का पाठ पढाते हैं।
वे आर्य वीर कहलाते हैं॥१॥

जो करुणा रस की गागर हैं।
व्यवहार-चतुर हैं आगर हैं।
सज्जनता में जो नागर हैं।
सन्नीति सुधा के सागर हैं।
जो दीनबन्धु बन आते है।
वे आर्यवीर कहलाते हैं॥२॥

जो विश्व-प्रेम की मूरति है।
सयम के घर है सन्मति है।
शरणागत प्राणी की गति है।
जगसेवक और जगत्पति है॥
भीतो को अभय बनाते है।
वे आर्यवीर कहलाते है॥३॥

जो सत्यामृत का पान करें।
जो प्रेम-विजय का मान करें।
जगके हित में सब दान करें।
अरि भी जिनका गुणगान करें।
भूतल को स्वर्ग बनाते हैं।
वे आर्यवीर कहलाते हैं ॥४॥

जनमेजय--धन्य है ऋषिवर। मैं आपके इस आर्यस्तवन से प्रसन्न हुआ। आर्य राजा की प्रसन्नता मोघ नहीं होती इसलिये आप इच्छानुसार वर माँगिये।

आस्तीक--राजन्, मेरी तृष्णा शान्त है, मैं अपनी अवस्था में सन्तुष्ट हूँ। इसलिये मैं अपने लिये कुछ नहीं चाहता।

जनमेजय--फिर भी मेरे ऊपर दया करके अवश्य कुछ माँगें और मुझे कृतार्थ करें।

आस्तीक--राजन्, मैंने आज तक कभी किसी से याचना नहीं की फिर भी मैं आपके अनुरोध से एक याचना करता हूँ पर यदि मेरी याचना निष्फल गई तो मुझे कठोर प्रायश्चित करना पडेगा।

जनमेजय--अगर आप की याचना मेरे शरीर देने से भी पूरी हो सकेगी तो मैं पूरी करूँगा।

आस्तीक--राजन्, मैं असम्भव याचना न करूँगा न ऐसी याचना करूँगा जिसे आप पूरा न कर सकें। किसी भी तरह से आप को हानि पहुँचाना मेरा लक्ष्य नहीं है।

जनमेजय--तब माँगिये ऋषिकुमार।

आस्तीक--मनुष्यों का और मनुष्यता का संहार करनेवाला यह नागयज्ञ तुरन्त बंद कर दिया जाय।

जनमेजय--(चौंककर) यह क्या किया ब्रह्मन् आपने। यह तो आर्य जाति की आशाओं पर पानी फेरना है।

आस्तीक--पर आर्य जातिसे भी महान मनुष्यताको प्राणदान है।

जनमेजय--आप कोई दूसरा वर माँगिये ऋषिपुत्र। मैं यह वर नहीं दे सकता।

आस्तीक--न दीजिये महाराज, आर्यों की सत्यवादिता को कलंकित करके इसी तरह आर्यों का मुख उज्वल कीजिये। पर मुझे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अग्नि-प्रवेश करना पड़ेगा। जबतक आप मेरी आहुति न देदें तबतक नागराज तक्षक की या और भी किसी नाग युवक की आहुति नहीं दे सकते।

जनमेजय-ऋषिपुत्र, आर्यों के पथ में पड़े हुए इन नाग-कण्टकों को दूर हटाने का यह सुवर्ण अवसर बड़ी कठिनता से हाथ लगा है आप इसको विफल न बनाइये। इनने मेरे पिता का धोखे से वध किया और सदा से ये आर्यों का द्रोह करते रहे हैं। नाग लोग इतने नीच हैं कि अगर किसी नाग स्त्री का पति आर्य हो तो वह उसकी हत्या करा देगी अगर पिता आर्य हो तो उसे भी मार डालेगा। मेरे पूज्य प्रपितामह अर्जुन को उनकी नागपत्नी उलूपी ने अपने पुत्र बभ्रुवाहन से विषैले बाणों के द्वारा मरणासन्न करा दिया था। आर्यों से द्वेष इनकी रगरग में भरा है इसलिये नागों को निर्मूल किये बिना आर्यावर्त में शान्ति नहीं हो सकती।

आस्तीक- आर्यों ने नागों को जितना सताया है उतना अगर नाग आर्यों को सताते तो आर्य भी नाग नरेश का वध किये बिना न रहते। तक्षक की उस भूल को सुधारने का उपाय नागों को प्रेम से जीतना है। इस प्रकार के हत्याकाण्डों से आर्यावर्त में शान्ति नहीं हो सकती। आज तुम्हारा अवसर है इसलिये तुम हत्याकाण्ड कर रहे हो। कल नागों का भी अवसर आ सकता है इसलिये वे हत्याकाड करेंगे इस प्रकार दोनों के सर्वनाश में इस परम्परा का अन्त होगा। जब एक ही देश में दोनों को रहना है तब प्रेम और सास्कृतिक एकता के सिवाय दूसरा कोई उपाय शान्ति की स्थापना नहीं कर सकता। महाराज, एक दूसरे के दोष न देखकर गुण ही देखना चाहिये। जिस उलूपी देवी का आपने नाम लिया है वह एक वीरागना थी, जब अर्जुन ने बभ्रुवाहन से कहा कि मैं तुम्हारा पिता बनकर नहीं किन्तु राज्य का शत्रु बनकर आया हूं इस समय तुम मेरे सच्चे बेटे तभी कहलाओगे जब मुझ से लडोगे तब उलूपीने बभ्रुवाहन को उत्तेजित किया और बभ्रुवाहन ने अर्जुन को पराजित किया। बाद में सेवा और पूजा की। आपने समझा ? आर्य और नाग के सम्मिलन ने कर्त्तव्य और प्रेम का कैसा सुदर सम्मिलन किया। गुणग्रहण की दृष्टि कीजिये महाराज। गुण को दोष बनाकर वैर और पाप को स्थिर न बनाइये।

जनमेजय- आपकी आज्ञा से यज्ञ बद कर दिया जायगा पर केवल तक्षक की आहुति दे देने दीजिए।

आस्तीक- यह आपकी ध्वनि नहीं है महाराज, किन्तु आप के भीतर बैठा हुआ अहंकार रूपी पशु बोल रहा है यही तो मनुष्यता का नाश कर रहा है जिससे सदा के लिये सुखशान्ति का नाश हो जायगा। अगर आपको यज्ञ करना है तो अहंकार रूपी पशुकी आहुति दीजिये ।

जनमेजय--ब्रह्मन्, आप आर्य-जाति को मिटा रहे हैं ।

आस्तीक-राजन्, जो पैदा होता है वह मरता है चाहे व्यक्ति हो चाहे जाति हो । व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे मिलकर संतान पैदा करता है और इस प्रकार मरकर भी अमर बनता है । जाति भी दूसरी जाति मे मिलकर एक तीसरी जाति का निर्माण करती है और मर कर अमर बनती है । भविष्यमें न आर्य्य जाति रहेगी न नाग जाति, मिल कर दोनों की एक तीसरी ही जाति बन जायगी । न वैदिक धर्म रहेगा न नाग धर्म, मिलकर दोनों का एक नया धर्म बन जायगा । यज्ञ मिट जाँयँगे, नये देव नये विधान और नये आचार आजाँयगे । जब तक ऐसा सम्मिलन और नव निर्माण होता रहेगा तबतक मनुष्य मनुष्य बना रहेगा, वह प्रगति करेगा । जिस दिन यह समन्वय-शक्ति नष्ट हो जायगी उसी दिन मनुष्य पशु बन कर नष्ट हो जायगा । महाराज, इस दुर्लभ मनुष्य-जीवन को इस प्रकार पशु बनाना उचित नहीं है ।

होता–आस्तीक मुनि का कथन सर्वथा सत्य है ।

अन्य ऋषि–यज्ञ बंद होना चाहिये ।

आस्तीक—महाराज, अब आपकी क्या इच्छा है ? मेरा

वर पूरा करते हैं या मैं अग्नि में प्रवेश करके अपने पिता का अनुकरण करूँ ? नागवश का क्षय जब होगा तब होगा पर एक ऋषिवंश का क्षय तो हो ही जायगा।

जनमेजय— आपके पिता कौन ?

आस्तीक—मेरे पिता ऋषिराज ज़रत्। जिनने मनुष्यता की रक्षा में प्राण दिये, जिन्हें तुम्हारे सिपाहियों ने मार डाला।

जनमेजय — आश्चर्य से] मेरे सिपाहियों ने ?

आस्तीक—हाँ, हाँ, तुम्हारे सिपाहियों ने। राजन्, तुम्हें मालूम नहीं कि तुम्हारे नाम पर क्या क्या पाप हो रहे हैं ? घर के वाहर निकलो तो तुम्हें मालूम होगा कि आज संसारमें सबसे खराब गाली 'जनमेजय' है। लोग पिशाच कहलाना पसन्द करते हैं पर जनमेजय कहलाना पसन्द नहीं करते। तुम जो अत्याचार करा रहे हो उसे देखते हुए यह ठीक ही है।

जनमेजय—अपने शत्रु से वदला कौन नहीं लेता ?

आस्तीक—राजन्, शत्रु से वदला लिया जाता है पर निरपराध प्रजा का हत्याकाड, वह भी ऐसा जिसमें मनुष्यत्व का दिवाला निकल जाय और अपने नाश की भी पर्वाह न रहे, वदला नहीं है। राजन्, जरा कल्पना करो- एक गरीव परिवार है जिसमें एक विधवा मा है, जवान लडका है जो वीमार होकर खाट पर पड़ा है उसकी छोटी वहिन है, तुम्हारे अत्याचारों से डरकर सारा गाव उजड गया है इसलिये उन्हें कोई मदद करनेवाला नहीं है, ऐसी वुरी हालत में तुम्हारे सिपाही उस वीमार युवक को जानवर की तरह खींचकर लाते हैं, उस विधवा मा के, उस छोटी वच्ची के

आस्तीक- यह आपकी ध्वनि नहीं है महाराज, किन्तु आप के भीतर बैठा हुआ अहंकार रूपी पशु बोल रहा है यही तो मनुष्यता का नाश कर रहा है जिससे सदा के लिये सुखशान्ति का नाश हो जायगा। अगर आपको यज्ञ करना है तो अहंकार रूपी पशुकी आहुति दीजिये।

जनमेजय--ब्रह्मन्, आप आर्य-जाति को मिटा रहे हैं।

आस्तीक-राजन्, जो पैदा होता है वह मरता है चाहे व्यक्ति हो चाहे जाति हो। व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे मिलकर संतान पैदा करता है और इस प्रकार मरकर भी अमर बनता है। जाति भी दूसरी जाति से मिलकर एक तीसरी जाति का निर्माण करती है और मर कर अमर बनती है। भविष्यमें न आर्य्य जाति रहेगी न नाग जाति, मिल कर दोनों की एक तीसरी ही जाति बन जायगी। न वैदिक धर्म रहेगा न नाग धर्म, मिलकर दोनों का एक नया धर्म बन जायगा। यज्ञ मिट जायँगे, नये देव नये विधान और नये आचार आजाँयगे। जब तक ऐसा सम्मिलन और नव निर्माण होता रहेगा तबतक मनुष्य मनुष्य बना रहेगा, वह प्रगति करेगा। जिस दिन यह समन्वय-शक्ति नष्ट हो जायगी उसी दिन मनुष्य पशु बन कर नष्ट हो जायगा। महाराज, इस दुर्लभ मनुष्य-जीवन को इस प्रकार पशु बनाना उचित नहीं है।

होता--आस्तीक मुनि का कथन सर्वथा सत्य है।

अन्य ऋषि--यज्ञ बंद होना चाहिये।

आस्तीक--महाराज, अब आपकी क्या इच्छा है? मेरा

वर पूरा करते हैं या मैं अग्नि में प्रवेश करके अपने पिता का अनुकरण करूँ ? नागवश का क्षय जव होगा तव होगा पर एक ऋषिवंश का क्षय तो हो ही जायगा।

जनमेजय— आपके पिता कौन ?

आस्तीक—मेरे पिता ऋषिराज ज़रत्। जिनने मनुष्यता की रक्षा में प्राण दिये, जिन्हें तुम्हारे सिपाहियों ने मार डाला।

जनमेजय— आश्चर्य से] मेरे सिपाहियों ने ?

आस्तीक—हाँ, हाँ, तुम्हारे सिपाहियों ने। राजन्, तुम्हें मालूम नहीं कि तुम्हारे नाम पर क्या क्या पाप हो रहे हैं ? घर के वाहर निकलो तो तुम्हें मालूम होगा कि आज संसारमें सवसे खराव गाली 'जनमेजय' है। लोग पिशाच कहलाना पसन्द करते हैं पर जनमेजय कहलाना पसन्द नहीं करते। तुम जो अत्याचार करा रहे हो उसे देखते हुए यह ठीक ही है।

जनमेजय—अपने शत्रु से वदला कौन नहीं लेता ?

आस्तीक—राजन्, शत्रु से वदला लिया जाता है पर निरपराध प्रजा का हत्याकाड, वह भी ऐसा जिसमें मनुष्यत्व का दिवाला निकल जाय और अपने नाश की भी पर्वाह न रहे, वदला नहीं है। राजन्, जरा कल्पना करो- एक गरीव परिवार है जिसमें एक विधवा मा है, जवान लडका है जो वीमार होकर खाट पर पडा है उसकी छोटी वहिन है, तुम्हारे अत्याचारों से डरकर सारा गाव उजड गया है इसलिये उन्हें कोई मदद करनेवाला नहीं है, ऐसी बुरी हालत में तुम्हारे सिपाही उस वीमार युवक को जानवर की तरह खींचकर लाते हैं, उस विधवा मा के, उस छोटी वच्ची के

ऑसू उनके दिल पर कोई असर नहीं करते । इतने में एक आर्यऋषि उन्हें रोकते हैं पर तुम्हारे सैनिक आर्यऋषि की भी हत्या कर डालते हैं । महाराज, क्या यह शत्रु से बदला लेना है ?

पिंगल– क्या वे ऋषि ही आपके पिता हैं ?

आस्तीक– हा !

पिंगल—ओह ! अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम् ।

देवशर्मा– ब्रह्महत्या ! ब्रह्महत्या !!

आस्तीक– महाराज, विचारिये ! एक दिन तुम्हें भी मिट्टी में मिलना है - हमें भी मिट्टी में मिलना है - नागों को भी मिट्टी में मिलना है, उस दिन मिट्टी में यह भेद न रहेगा कि यह आर्यों की मिट्टी है - यह नागों की मिट्टी है - मिट्टी मिलकर एक हो जायगी, हमारा घमण्ड भी मिट्टी में मिल जायगा, जिन नागों से हमें घृणा है, हो सकता है कि मरने के बाद हम उन्हीं में पैदा हों, इस प्रकार अपनी घृणा का फल हम ही भोगें, ऐसी अस्थिर और आत्मघातक चीज के लिए आप मनुष्यता की हत्या करते हैं ! एक चिरस्थायी शत्रुता को जन्म देते हैं ! एक आर्यनरेश में यह अज्ञान ! आश्चर्य है !

[जनमेजय दोनो हाथों से सिर पकडकर पश्चात्ताप और चिन्ता में डूब जाते हैं ।]

आस्तीक—महाराज, बोलिये अब आपकी क्या इच्छा है ? आप मेरा वर पूर्ण करते हैं या मै अग्निप्रवेश करूँ ?

जनमेजय (आस्तीक के सामने सिर झुकाकर) नहीं ऋषिराज, अब और किसी को अग्नि में प्रवेश न करना पड़ेगा अब मेरी पशुता

और अहकार ही अग्नि में प्रवेश करेंगे।

आस्तीक--(जोर से) अहिंसा

सब--परमोधर्म.।

आस्तीक--भगवान सत्यकी

सब--जय !!!

आस्तीक--महाराज जनमेजय की

सब--जय

जनमेजय--आस्तीक मुनि की

सब--जय।

आस्तीक--महाराज, मुझे विश्वास था कि आप मेरी प्रार्थना मानेंगे, यज्ञ बन्द होगा। उसके लिये मैंने यह गीत बनाया है।

आस्तीक--[आस्तीक के साथ सब गाते हैं]

[गीत १०]

अब हम हैं मानव सन्तान।
आर्य नाग का भेद भुलाया।
जाति पाँति का फन्द छुडाया॥
मानव मानव एक हुए सब किया प्रेम सन्मान।
अब हम हैं भारत सन्तान॥१॥

मानवता का मान करेंगे।
प्रेम-धर्म का गान करेंगे॥
घर घर होगी मानवता पर अब पशुता कुर्बान।
अब हम हैं मानव सन्तान॥ २॥

हर, हरि होंगे, हरि, हर होंगे ।
अब इनके घर घरघर होंगे ।
एक बनेगा धर्म सभी का होगा एक निशान ।
अब हम हैं मानव सन्तान ॥ ३ ॥

एक सभ्यता होगी प्यारी ।
होगी भाषा एक हमारी ॥
एक राष्ट्र होगा हम सबका प्यारा हिन्दुस्थान ।
अब हम हैं भारत-सन्तान ॥ ४ ॥



सत्यभक्त-साहित्य

जीवन की, समाज की, धर्म की और देश विदेश की प्रायः सभी समस्याओं को सुलझानेवाले मौलिक विचार। गद्यपद्य नाटक कथा आदि अनेक ढग से बुद्धि और मन पर असाधारण प्रभाव डालनेवाला साहित्य। एकवार अवश्य स्वाध्याय कीजिये।

१ सत्यामृत— मानवधर्मशास्त्र [दृष्टिकाड] मूल्य १।) अपने और जगत के जीवन को सुखी वनाने के लिये सत्य पाने के लिये जीवन को कैसा वनाना चाहिये, जीवन कैसे और कितने तरह के होते हैं, धर्म जाति आदि का समभाव कैसे व्यावहारिक वन सकता है आदि का मौलिक विवेचन विस्तार से किया गया है। इस महाशास्त्र का स्वाध्याय अवश्य कीजिये।

२ कृष्णगीता--मूल्य वारह आना।

श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवादरूप होनेपर भी चौदह अध्याय की यह गीता भगवद्गीता से विलकुल स्वतन्त्र है। कर्मयोग के सन्देश के साथ इसमें धर्मसमभाव जातिसमभाव नरनारीसमभाव अहिंसादि व्रत, पुरुयार्थ, कर्तव्याकर्तव्यनिर्णय का वडा अच्छा विवेचन किया गया है। विविध छन्दों में ९५८ पद्य हैं जिनमें वहुत से मनोहर गीत भी हैं।

३ निरतिवाद--मूल्य छः आना।≈)

साम्यवाद और पूजीवाद के अतिवादों से वचाकर निकाला गया वीच का मार्ग। साथ ही विश्वकी सामाजिक धार्मिक राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने की व्यावहारिक योजना।

हर, हरि होंगे, हरि, हर होंगे ।
अब इनके घर घरघर होंगे ।
एक बनेगा धर्म सभी का होगा एक निशान ।
अब हम हैं मानव सन्तान ॥ ३ ॥

एक सभ्यता होगी प्यारी ।
होगी भाषा एक हमारी ॥
एक राष्ट्र होगा हम सबका प्यारा हिन्दुस्थान ।
अब हम हैं भारत-सन्तान ॥ ४ ॥



सत्यभक्त-साहित्य

जीवन की, समाज की, धर्म की और देश विदेश की प्रायः सभी समस्याओं को सुलझानेवाले मौलिक विचार। गद्यपद्य नाटक कथा आदि अनेक ढग से बुद्धि और मन पर असाधारण प्रभाव डालनेवाला साहित्य। एकवार अवश्य स्वाध्याय कीजिये।

१ सत्यामृत-- मानवधर्मशास्त्र [दृष्टिकाड] मूल्य १।) अपने और जगत के जीवन को सुखी वनाने के लिये सत्य पाने के लिये जीवन को कैसा वनाना चाहिये, जीवन कैसे और कितने तरह के होते हैं, धर्म जाति आदि का समभाव कैसे व्यावहारिक वन सकता है आदि का मौलिक विवेचन विस्तार से किया गया है। इस महाशास्त्र का स्वाध्याय अवश्य कीजिये।

२ कृष्णगीता--मूल्य वारह आना।

श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवादरूप होनेपर भी चौदह अध्याय की यह गीता भगवद्गीता से विलकुल स्वतन्त्र है। कर्मयोग के सन्देश के साथ इसमें धर्मसमभाव जातिसमभाव नरनारीसमभाव अहिंसादि व्रत, पुरुपार्थ, कर्तव्याकर्तव्यनिर्णय का वडा अच्छा विवेचन किया गया है। विविध छन्दों में ९५८ पद्य हैं जिनमें वहुत से मनोहर गीत भी हैं।

३ निरतिवाद--मूल्य छः आना।=)

साम्यवाद और पूंजीवाद के अतिवादों से वचाकर निकाला गया वीच का मार्ग। साथ ही विश्वकी सामाजिक धार्मिक राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने की व्यावहारिक योजना।

४ सत्य संगीत– मूल्य दस आना ।

भ. सत्य, भ. अहिंसा, राम कृष्ण महावीर बुद्ध ईसा मुहम्मद आदि महात्माओंकी प्रार्थनाएँ अनेक भावनागीत तथा भावपूर्ण कविताओं का सग्रह।

५ जैनधर्ममीमांसा (प्रथम भाग)-- मूल्य एक रुपया.

तीन वडे वडे अध्यायेमें धर्म की विस्तृत और मौलिक व्याख्या महावीर स्वामी का बुद्धिसगत विस्तृत जीवन चरित्र, अतिशयों आदि का वास्तविक मर्म जैनधर्म और उसके सम्प्रदाय उपसम्प्रदायों का और निन्हवों का इतिहास, सम्यक्‌दर्शन के आठ अग तथा अन्य चिन्हों का समभावी और नये दृष्टिकोण से विस्तृत वर्णन ।

६ जैनधर्ममीमांसा (दूसरा भाग)- मूल्य १॥) ।

इसमें सर्वज्ञताकी वास्तविक व्याख्या, उसका इतिहास, प्रचलित मान्यताओंकी आलोचना, मति आदि पाचें ज्ञानोंका विशाल वर्णन, उनका मर्मदर्शन, सक्षेपमें ज्ञान के विषयको लेकर युक्ति और शास्त्रके आधार पर किया गया विशाल मौलिक और वैज्ञानिक अभूतपूर्व विवेचन है, कठिन से कठिन विषय वडी सरलता से समझाया गया है ।

७ शीलवती– मूल्य एक आना ।

वेश्याओं के जीवन में भी सतीत्व लानेवाली, उनके जीवन को ऊचे उठानेवाली एक योजना जो कि एक वेश्याकुमारी के साथ चर्चारूप में वताई गई है ।

८ विवाह-पद्धति-- मूल्य एक आना ।

सप्तपदी, भाँवर, मगलाष्टक मगलाचरण आदि के सुन्दर पद्य सबको समझ में आनेवाली एक नयी विवाह पद्धति. इस पद्धति से

अनेक विवाह हुए हैं और विरोधी दर्शकों ने भी इसकी सराहना की है। पूरी विधि हिन्दी में ही है।

९ भावनागीत-सत्यसमाज-- मूल्य एक आना।

प्रतिदिन सुबह शाम पढने योग्य प्रार्थनाएँ, सत्यसमाज के विषय में शंका-समाधान और नियमावली।

१० नागयज्ञ (नाटक)-- मूल्य आठ आने।

भारत के आर्य और नागों का परस्पर द्वंद, उसका हल, और अन्त में दोनों का मेल, एक ऐतिहासिक कथानक को लेकर अनेकरसपूर्ण चित्रण के द्वारा बताया गया है।

एक लम्बी प्रस्तावना में हिन्दू मुसलमानों के झगडों के कारण और उनको दूर करने का उपाय भी बनाया गया है।

११ हिन्दूमुस्लिम-मेल --मूल्य डेढ आना।

हिन्दू मुसलमानों में जिन जिन बातोंपर झगडा है उनका मर्म क्या है और किस तरह दोनों की भलाई हो सकती है दोनों की धार्मिक सामाजिक और राजनैतिक समस्या किस तरह सुलझ सकती है इसका अच्छा विवेचन है। यह पुस्तक घर घर पहुचँना चाहिये जिस से भारत संगठित और अविच्छेद्य बन सके।

१२ निर्मल योग सन्देश--मूल्य दो पैसा

प. सूरजचन्द जी डाँगी रचित एक कीर्तन संगीत।

निम्नलिखित ग्रंथ छप रहे हैं :—

१३ आत्म कथा--

सत्यसमाज के संस्थापक स्वामी सत्यभक्त जी की विस्तृत आत्मकथा जिसे पढ़ने से जीवन की कितनी ही कठिनाइयाँ हल हो सकती है जीवन निर्माण की कुञ्जी मिल सकती है। मूल्य करीब एक रुपया।

१४ सत्यामृत--(आचार काड) अहिंसा सत्य आदि का मौलिक और विस्तारपूर्ण विवेचन, आचार सम्बन्धी प्रायः सभी बातों का विवेचन करनेवाला एक मौलिक शास्त्र। मूल्य करीब १।)

१५ **जैनधर्म मीमांसा** (तीसरा भाग) इस में सम्यक् चारित्रका, साधु संस्था के नियमों का, उसके आधुनिक रूप का गुणस्थान आदि का नयी दृष्टिसे जैन शब्दोंमें विवेचन किया गया है। मूल्य करीब १॥)

इसके बाद स्वामी सत्यभक्तजी का विशाल कथा साहित्य तथा बुद्ध हृदय आदि साहित्य छपेगा।

सत्याश्रम, वर्धा [सी. पी]

सत्यसन्देश-ग्रंथमाला का २१ वाँ पुष्प —

सर्व-धर्म-समभाव



[स्वामी सत्यभक्त]

*
* * *
*

प्रथम संस्करण] [मूल्य एक आना

प्रकाशक के दो शब्द

यह ट्रैक्ट पूज्यपाद कर्मयोगी सत्यभक्तजी का कलकत्ते में दिया हुआ एक व्याख्यान है। इसमें सर्व-धर्म-समभाव को लेकर जो मार्मिक अपील की गई है, वह सिर्फ दिल पिघलानेवाली ही नहीं है किन्तु बुद्धि को भी समभाव का तत्व पटा देती है। युक्ति अनुभव और लगन का इसमें पूरी तरह सम्मिलन हुआ है।

यह व्याख्यान प्रयाग की 'विश्ववाणी' में प्रकाशित हुआ था। पाठकों ने इसे खूब ही पसन्द किया और बहुतों ने इच्छा प्रगट की कि यह ट्रैक्ट के आकार में छपाकर देशवासियों के पास पहुँचाया जाय।

इधर श्री बापूलालजी सोनी उदयपुर की पुत्री चि. मोहन-कुँवरि का विवाह कुँ. चादमलजी अजमेरा के साथ हुआ—उस शुभ अवसर में दोनों पक्ष से जो दान दिया गया उसमें २५)रु. की रकम एक समभावी ट्रैक्ट बटाने के लिये भी थी। श्री सोनीजी की इच्छानुसार यह ट्रैक्ट छपाया गया है। इस प्रकार सर्व-धर्म समभाव के प्रचार में सोनीजी के सहयोग के लिये मैं धन्यवाद देता हूं।

रघुनन्दनप्रसाद

मंत्री—"सत्यसन्देश ग्रन्थमाला"

सत्याश्रम, वर्धा.

सर्व-धर्म समभाव

मैं धर्म का अन्धश्रद्धालु नहीं हू पर विरोधी भी नहीं हूं। निःसन्देह धर्म के नाम पर खून बहाया गया है, पर यह अन्तर न भूलना चाहिये कि धर्म के नाम पर खून बहाया गया है—धर्म के लिये खून नहीं बहाया गया। शैतान भी अपनी शैतानी के लिये खुदा के नाम की ओट ले लेता है, तो मनुष्य ने अपने दुस्वार्थों के लिये अगर धर्म की ओट ले ली तो इसमें धर्म क्या करे ? जो नियम समाज के विकास और सुख-शान्ति के लिये जरूरी हैं उनका मन से, वचन से और शरीर से पालन करने का नाम धर्म है, इस धर्म का उस खून खराबी से कोई सम्बन्ध नहीं है—जो धर्म के नाम पर स्वार्थ या अहकार-वश की जाती है।

कहा जा सकता है कि जब धर्म का ऐसा दुरुपयोग होता है तब धर्म को नष्ट ही क्यों न किया जाय ? मैं कहता हूँ कि भोजन के दुरुपयोग से जब बीमारियां पैदा होती हैं तब भोजन ही बन्द क्यों न कर दिया जाय ? आजीवन अनशन करने से मौत भले ही आ जाय पर बीमारी से छुट्टी जरूर मिल जायगी ! क्या आप बीमारी के डर से इस प्रकार मरना पसन्द करते हैं ? यदि

नहीं, तो दुरुपयोग के डर से धर्म को छोड़ना भी पसन्द नहीं किया जा सकता।

मैं मानता हूं कि धर्म भोजन से भी ज्यादा जरूरी चीज है। जो चीज जितनी पतली होती है उसकी जरूरत भी उतनी ही ज्यादा होती है। रोटी बहुत जरूरी है पर पानी रोटी से भी ज्यादा जरूरी है, पानी रोटी से पतला है। रोटी के बिना हम जितने दिन जिन्दा रह सकते हैं, पानी के बिना उतने दिन जिन्दा नहीं रह सकते। पर पानी से पतली है—हवा। पानी पिये बिना हम घण्टों जिन्दा रह सकते हैं, पर हवा लिये बिना हम मिण्टों भी जिन्दा नहीं रह सकते। धर्म हवा से भी पतला है, उसके बिना हम जरा भी ज़िन्दा नहीं रह सकते। प्रेम सहयोग आदि धर्म के ही रूप हैं, जो कि कीड़ों, मकोड़ों और पशु-पक्षियों में भी पाये जाते हैं, इसलिये धर्म व्यापक है, नित्य है, और आवश्यक है। उसमें विकार आते हैं, जीवन भी विकृत और दुःखी हो जाता है, इसलिये हमें विकारों को नष्ट करना चाहिये, धर्म को नहीं।

एक बात और है जब तक मनुष्य के पास हृदय है तब तक धर्म किसी न किसी रूप में जिन्दा रहेगा ही। धर्म का भीतरी रूप तो रहता ही है पर बाहरी रूप भी नष्ट नहीं होता, सिर्फ उस में परिवर्तन हो जाता है। ईसा की मूर्ति के सामने घुटने टेकने की जगह लेनिन की कब्र पर फूल चढ़ाना आ जाता है। प्रतीक बदल जाते हैं, वृत्ति नहीं बदलती। इसलिये धर्म को मारने की कोशिश

व्यर्थ है, उसका दुरुपयोग ही रोकना चाहिये।

परन्तु धर्म की इस अमरता से उन लोगों को खुश होने की जरूर नहीं है, जो धर्म के नाम पर रूढियों के और साम्प्रदायिकता के गुलाम बने रहना चाहते हैं। उन्हें समझना चाहिये कि धर्म रूढियों का अजायबघर नहीं है, किन्तु सत्य अहिंसा आदि नियमों का समूह है और धर्म-संस्था एक समय की सामाजिक क्रान्ति है। तीर्थंकर, पैगम्बर, अवतार आदि अपने समय के क्रान्तिकारी महापुरुष हैं। कोई भी क्रान्ति स्थिर नहीं होती, न आगे की दूसरी क्रान्तियों का विरोध करती है। क्रान्ति की मित्रता रूढियों से नहीं है। इसलिये धर्म की मित्रता रूढियों से नहीं कही जा सकती।

इस प्रकार धर्म की बात कह कर मैं धर्म-विरोधी और धर्म के नाम पर रूढि के पुजारी, दोनों के दिलों में कुछ न कुछ क्षोभ पैदा करूंगा। इसको दूर करने के लिये मैं इतना ही कहूंगा कि न तो आप प्राचीनता के पुजारी बनें न नवीनता के। आप जन-कल्याण के पुजारी बनें! इसी दृष्टि से धर्मों का जिस रूप में जैसा उपयोग हो सके, निष्पक्ष होकर वैसा ही करें।

धर्म-संस्थाओं का मुख्य काम आदमी के दिल पर नीति और सदाचार के संस्कार डालना है। सभी धर्मों ने यही काम किया है। इसलिये मैं धर्मों में समानता देखता हूं और धर्म-संस्थाओं की संख्या से घबराता नहीं हूं। बहुत से स्कूल होने से या अनेक विश्वविद्यालय होने से जैसे शिक्षा में बाधा नहीं

पडती, किन्तु कुछ लाभ ही होता है. उसी प्रकार बहुत-सी धर्म-संस्थाएँ होने से सच्चे धर्म में बाधा नहीं पडती।

पर शर्त इतनी है कि धर्म को धर्म समझिये, अहंकार का सहारा नहीं। मेरा धर्म बड़ा, तुम्हारा धर्म छोटा, इस उक्ति में धर्म प्रेम नहीं है—अहंकार है; अगर कोई प्यासा इस बात पर वाद-विवाद करे कि तुम्हारे गाँव का तालाब तो दो कोस का ही है जब कि मेरे गाँव का तालाब चार कोस का है, इसलिये तुम्हारे तालाब से मेरा काम कैसे चलेगा? तब मैं कहूँगा—पागल, यह तो बता कि तेरे हाथ का घड़ा कितने कोस का है? दो कोस के तालाब से तुझे अपने घडे भर पानी मिल सकता है कि नहीं?

मनुष्य जितना कंगाल है उससे ज्यादा दम्भी है. इसीलिये अहंकार की पूजा के लिये वह धर्म का सहारा लेता है। हरएक आदमी धन का अहंकार नहीं कर सकता, दुनिया में एक से एक एक बढकर धनी पडे हैं और धन का क्या ठिकाना—आज है कल नहीं है, तब उसके सहारे अहंकार कैसे खडा किया जा सकता है। बल और रूप की भी यही दशा है। दो दिन बुखार आ जाय सारा बल निकल जाय, गाल पिचक जाय, बुढापा भी बल और रूप का दिवाला निकाल देता है, फिर बल और रूप भी एक से एक बढकर हैं। अधिकार आदि की भी यही दशा है। मनुष्य ठहरा अहंकार का पुतला, उसे कुछ न कुछ चाहिये अवश्य, जिसके सहारे वह अहंकार कर सके। इसके लिये धर्म उसे सबसे अच्छा मालूम हुआ। इस आत्म-वंचक मनुष्य ने सोचा-धर्म का अहंकार

सबसे अच्छा, इससे बड़प्पन की लालसा भी पूरी हो गई और ईश्वर या अल्लाह भी खुश हो गया, परलोक सुधर गया और स्वर्ग या जन्नत के लिये सीट भी रिजर्व हो गई।

बेचारे ने यह न सोचा कि अहंकार, चाहे वह धन का हो या धर्म का, मनुष्य का पतन ही करेगा। वह उसी तरह हमारे जीवन को जलायेगा, जिस प्रकार दुनिया का कोई भी अहंकार जला सकता है। चन्दन के ठंडा होने पर भी चन्दन की आग ठंडी नहीं होती, धर्म ठंडा होने पर भी धर्म का अहंकार ठंडा नहीं होता। अहंकार हमें जलाता है, उसमें धर्म का अहंकार तो सबसे बुरा है यह तो पानी में लगी आग है। कलकत्ते में आग लगे तो बुरा होगा, पर यदि गङ्गा में आग लगे तो यह उससे भी ज्यादा बुरा होगा, क्योंकि कलकत्ते की आग गङ्गा से बुझाई जा सकती है पर गङ्गा की आग किससे बुझाई जायगी ?

दुनिया के पाप को हम धर्म से साफ करते हैं, पर धर्म में ही अगर पाप घुस जाय, तो हम किससे साफ करें, इसलिये मैं कहता हूं कि धर्म का अहंकार सब अहंकारों से बुरा है। यह अहंकार निकल जाय, तो दुनिया में कितनी ही धर्म-संस्थाएँ क्यों न रहें, उनसे हमारा कोई नुकसान नहीं है, बल्कि फायदा ही है।

सारी दुनिया में अगर एक ही मजहब हो जाय, तो भी उससे लाभ न होगा, अहंकार या स्वार्थ थोड़ा-सा नुक्स निकालकर खून की नदियां बहाने लगेगा। यूरोप में एक ही ईसाई धर्म के माननेवाले क्या चर्चों के भेद से खून की नदियां नहीं बहाते रहे?

एक मजहब बनाने की कोशिश व्यर्थ है। जरूरत है सद्भाव की। हमें एकरूपता (uniformity) नहीं चाहिये, एकता (unity) चाहिये। एकरूपता से तो हमारा जीवन बेस्वाद हो जायगा। आप की थाली में अगर घी ही परोस दिया जाय, तो आप कितना खा सकेंगे और कबतक खा सकेंगे। घी भले ही कीमती चीज हो, पर स्वाद के लिये और जीवन के लिये अन्न भी चाहिये, नमक भी चाहिये और शाक भी चाहिये। अगर मेरी थाली में नमाज ही नमाज परोसी जाय या पूजा ही पूजा परोसी जाय तो भी मैं ऊब जाऊंगा, यह कैसे हो सकता है कि जीभ तो नये नये स्वाद चाहे और मन जो कि जीभ से भी ज्यादा चंचल है, एक ही स्वाद से चिपटा बैठा रहे। मुझे तो लगता है कि कभी नमाज़, कभी पूजा, कभी भजन–आरती और कभी प्रार्थना इस प्रकार विविध व्यंजन हों तो हमारे धार्मिक जीवन को अधिक पोषक खुराक मिलेगी। हमारा दिल अधिक लगेगा, ईश्वर को हम ज्यादा याद कर सकेंगे। हमारा आध्यात्मिक आनन्द खूब बढ जायगा।

इसलिये हिन्दुओं से मेरा कहना है कि तुम हर दिन पूजा करते हो सो करो, पर एक दिन, शुक्रवार के दिन, जरा नमाज का मज़ा भी तो लो, रविवार को चर्च की प्रेयर में भी तो शामिल हो जाओ। तुम्हारा ईश्वर आज की अपेक्षा उस समय ज्यादा खुश होगा। इसी प्रकार मुसलमानों से कहता हूं कि हर दिन एक सी नमाज पढते पढ़ते तुम्हारा दिल नहीं ऊबता? जरा पूजा और प्रेयर का मजा भी तो चखो, देखोगे कि अल्लाह तुम्हारी इस उदारता से

दूना खुश हो गया है, क्योंकि तुमने उसे आज की अपेक्षा ज्यादा महान रूप में देखा है। इसी तरह ईसाइयों से कहता हूं कि नमाज़ और पूजा में शामिल होने से प्रयर का स्वाद बढ जायगा मीठा खाते खाने बीच में नमकीन या खटाई खा लेने से मीठा खाने की ताकत बढ जाती है।

हिन्दुस्तान का यह बडा सौभाग्य है कि यहा हिन्दू, मुसलमान. ईसाई, जैन, बौद्ध, पारसी आदि अनेक मजहब हैं। यहा के नागरिकों को धर्म की थाली में अधिक से अधिक व्यंजन बडी सरलता से मिल सकते हैं। मैं इसे सौभाग्य समझता हू। जब कि बहुत से लोग इसे दुर्भाग्य समझते हैं।

एक बार मैं मुलतापी से नागपुर जा रहा था। मैं जिस डिब्बे में बैठा था उसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही काफी संख्या में थे। चर्चा भी हिन्दू-मुसलमानों पर थी। चर्चा में गर्मी आ गई और झगडे की नौबत आ गई, इससे ऊबकर एक मध्यस्थ भाई बोले—जब तक इस देश में हिन्दू-मुसलमान रहेंगे, तब तक यह देश नरक ही बना रहेगा। मैंने कहा—भाई! हिन्दू मुसलमान होने से यह देश नरक नहीं बना है, किन्तु हिन्दू मुसलमान न होने से नरक बना है। हिंदू होते तो उनके तैंतीस करोड देवताओं में मुहम्मद और ईसा को जगह मिली होती, मुसलमान होते तो उनके एक लाख चौबीस हजार पैगम्बरों में राम, कृष्ण, महावीर और बुद्ध को भी जगह मिली होती, फिर क्या झगडा रहता?

बात बिलकुल सत्य है, अगर जैनी सच्चे जैनी बन जाँय,

हिन्दू सच्चे हिन्दू बन जाँय, मुसलमान सच्चे मुसलमान बन जाँय, तो धर्म में कोई झगडा ही न रहे । कोई धर्म चोरी करना नहीं सिखाता, झूठ बोलना नहीं सिखाता, हत्या करना नहीं सिखाता, व्यभिचार नहीं सिखाता, धन इकट्ठा करना नहीं सिखाता । सभी मजहब प्रेम, न्याय, सेवा, दान, शील आदि का पाठ पढाते हैं तब धर्मों में विरोध का क्या काम ? धर्मों ने नीति का पाठ पढाया है इतना ही नहीं सर्वधर्म समभाव के बीज भी सभी धर्मों में पाये जाते हैं । चर्चा के लिये हम जैन, हिन्दू, मुसलमान । इन तीन धर्मों के अनुयाइयों को लें, मैं इन तीन धर्मों में ही आप को सर्वधर्म समभाव के बीज और विधान बता देना चाहता हूँ ।

जैनधर्म—जैनधर्म का दूसरा नाम अनेकान्त धर्म भी है । पडित कहलानेवाले बहुत से लोग अनेकान्त की व्याख्या करते समय घटत्व-पटत्व में ही लोगों को फँसा देते हैं और अनेकान्त जटिल और निरर्थक हो जाता है । पर मैं सीधी सादी सरल और उपयोगी व्याख्या ही आपके सामने पेश करना चाहता हूं । अनेक-अन्त अर्थात् अनेक दृष्टियाँ अनेक धर्म, इनके समन्वय को जैन धर्म कहते हैं । जैन-शास्त्रों में तीन सौ त्रेसठ मतों का उल्लेख है । उन सब मतों को मिलाकर जैन धर्म बनता है । इन मत-मतान्तरों के झगडों को मिटाने के लिये महावीर स्वामी का अवतार हुआ था । ऐसी हालत में सभी मत जैन धर्म के अंग हैं; तब यह कैसे हो सकता है कि जैन-धर्म किसी मत का खण्डन करे ? क्या कोई अपने अंगों को काटना पसन्द करता है ? एक हाथ अगर

दूसरे हाथ को तोडना चाहे, एक पैर दूसरे पैर को ठुकराने लगे तो शरीर की कैसी दुर्दशा हो जाय ? वही, दुर्दशा जैन-धर्म की होगी अगर वह दूसरे मतो का खण्डन करने लग जाय । वह तो सिर्फ एक ही बात का खण्डन करता है और वह बात है दूसरों का खण्डन करना, समन्वय न करना, अनेकान्त-दृष्टि से विचार न करना आदि । और वह किसी का खण्डन नहीं करना चाहता ।

जैनियों मे आज दिगम्बर हैं, श्वेताम्बर हैं, स्थानकवासी हैं, मुझे इनके होने का खेद नहीं है, अनेकान्त इन सबका समन्वय कर सकता है, पर दुःख इस बात का है कि ये जुदा जुदा ऐसे सम्प्रदाय बन गये हैं, जो एक दूसरे की दृष्टि को समझना ही नहीं चाहते । ये एकान्तवाद की पूजा छोड़ दें, अहकार छोड दें, शुद्ध धर्म का विचार करने लगें तो दिगम्बर श्वेताम्बर आदि भेद, जैन, बौद्ध, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि के भेद हमारा कोई नुकसान न करेंगे ।

हिन्दूधर्म—जैनधर्म अपने अनेकान्त सिद्धान्त के जरिये से सब धर्मों का समन्वय करता है, पर हिन्दू-धर्म अपने विशाल रूप और व्यावहारिक उदारता से सब धर्मों का समन्वय करता है । हिन्दू-धर्म हिन्द में आई हुई सभी सस्कृतियों का समन्वय है, इसलिये एक साधारण हिन्दू में सहज उदारता पाई जाती है । आज शहरों में हिन्दू मुश्किल से दिखाई देते हैं, गावों में अभी हिन्दू बचे है । वे धर्म की पढिनाई रक्खें या न रक्खें, पर वे यह जानते हैं कि कोई भी देवता हो, किसी भी धर्म का देवता हो,

आखिर वह देवता है, मुझे पूजनीय है। इसी मनोवृत्ति के कारण वे कभी कभी सड़क के किनारे गड़े हुए मील के पत्थर को भी देवता की मूर्त्ति समझकर प्रणाम कर जाते हैं, उसमें भी वे ईश्वर देखने की कोशिश करते हैं, हरएक प्रतीक में उनकी भक्ति प्रगट होती है। एक ईश्वर को तैंतीस करोड देवताओं के रूप में वे भज सकते हैं। इस उदारता के ऊपर हम बडी भारी पण्डिताई को भी न्योछावर कर सकते हैं। उनमें विवेक की कमी हो सकती है, इसलिये विवेक आ जाय तब तो कहना ही क्या है, पर उनमें एक ऐसी चीज अवश्य है जो अपने धर्म के नाम पर अहंकार की पूजा नहीं करने देती है, हिन्दु धर्म में यह एक बडी भारी खूबी है।

एक बार एक सज्जन ने मुझ से कहा—हिन्दू-धर्म कोई धर्म नहीं है, क्योंकि न तो कोई उसका निश्चित देवता है न उसका कोई निश्चित विचार। मैंने कहा—हिन्दू-धर्म कोई सकुचित धर्म नहीं है, वह धर्मों का अजायबघर है, अनेक दर्शन, अनेक आचार-विचार, ईश्वर के अनेक रूप, जिसमें समन्वित हैं और जिसमें हरएक को जगह मिल सकती है।

बात यह है कि यह एक राष्ट्र का धर्म है। आर्य, शक, हूण आदि, जो यहाँ आते गये और यहा बसते गये उन सबके साथ इसका आदान-प्रदान हुआ और इससे जिस विशाल व्यापक समभावी धर्म की रचना हुई, वह हिन्दू-धर्म कहलाया। किसी धर्म को नष्ट करके यह रचना नहीं हुई, किन्तु सब धर्मों को रखकर

उनका समन्वय करके यह रचना हुई। यही कारण है कि संहारक महादेव, विकराल काली मैया, वैभवशाली विष्णु आदि सभी वृत्ति के सैकड़ों देव इस धर्म में आ गये। ईश्वर के जितने महत्त्वपूर्ण कार्य इस दुनिया में होते हैं, उन सबका प्रतिनिधि एक एक देव बन गया। सभी देव ऋषि आदि ईश्वर के अंश बन गये। इस प्रकार एक ईश्वर को बड़े विशाल रूप में हिन्दुओं ने देखा और सबका समन्वय करके एक राष्ट्र धर्म बनाया।

दुर्भाग्य से हिन्दू-धर्म नष्टप्राय हो गया है—आज वह हिन्दू धर्म कहलाने लायक नहीं है। एक दिन हिन्दू-धर्म तैंतीस करोड़ देवताओं का बोझ उठा सका; पर आज ईसा और मुहम्मद का बोझ नहीं उठा सकता। गीता के शब्दों में सारी विभूतियाँ ईश्वर का अंश है; पर हिन्द के नौ करोड मुसलमानों का आराध्य मुहम्मद ईश्वरांश नहीं है, हिन्द में आये हुये इतने व्यापक तत्त्व को अगर हिन्दू-धर्म नहीं अपना सकता, तो वह हिन्दू-धर्म कैसे रहा? इसे तो आज सग्रहणी की बीमारी है पचता एक दाना भी नहीं और दस्त पर दस्त लगते चले जाते हैं, ऐसी हालत में आख़िर यह कितने दिन जिन्दा रहेगा?

खैर, आज जैसी चाहे और दशा हो, पर यह निश्चित है कि इस देश की एक समन्वयात्मक विशाल संस्कृति ही हिन्दू-धर्म रहा है। जैन-धर्म और बौद्ध-धर्म से भी उसने बहुत कुछ लिया, उन्हें अपनाया, अब इसलाम और क्रिश्चियानिटी को भी अपनाने की ज़रूरत है। वह अपना सकता है। वह सर्व-धर्म समभाव के आधार पर ही खड़ा हुआ है।

इसलाम—आपने देखा कि जैन-धर्म और हिन्दू-धर्म अपने अपने ढग से किस प्रकार धर्म-समभाव का समर्थन करते हैं। इसलाम का भी अपना एक तरीका है। इसलाम के अनुसार एक लाख चौबीस हज़ार पैग़म्बर हुए हैं और हर कौम में या हर उम्मत में हुए हैं※। इसलाम उनमें से किसी में भी फ़र्क नहीं करता। कुरान में ईसा मूसा आदि अनेक पैगम्बरों के नाम आते हैं और उनका जीवन-चरित्र बड़े आदर के साथ लिखा गया है, पर नाम आये हों या न आये हों इसलाम सबके साथ बराबर का व्यवहार करता है। कुरान की आयतें साफ साफ शब्दों में इस बात का बयान करती हैं।

इसलाम इस तरह दुनिया की हर एक कौमों के महापुरुषों की इज्जत करता है और हर एक कौम के इष्ट पुरुषों को पैगम्बर मानता है। हिन्दुस्तान सरीखे बड़े भारी मुल्क की बड़ी बड़ी कौमों के महात्माओं को इसलाम पैगम्बर न माने यह कैसे हो सकता है? इस मुल्क की कौमों के पैग़म्बर कहलाने लायक राम, कृष्ण,

※—हर कौम के लिये रसूल मिला है। [सूरे यूनिस] हम हर एक उम्मत में कोई न कोई पैगम्बर भेजते हैं। [सूरे नहल] कहो कि जो किताब हम पर नाज़िल हुई और जो किताब तुम पर नाज़िल हुई हम तो सभी मानते हैं और हमारा खुदा और तुम्हारा खुदा एक ही है। [सूरे अन्कबूत] कोई कौम ऐसी नहीं कि उसमें पैगम्बर न हुआ न हो। [सूरे फातिर] हमने तुमसे पहिले रसूल भेजे उनमें कुछ ऐसे हैं जिनके हालात हमने तुमको सुनाये और उनमें से कुछ ऐसे हैं, जिनके हालात हमने तुमको नहीं सुनाये। [सूरे मोमिन] हम इनमें से किसी एक में भी जुदाई नहीं समझते [सूरे बकर]

महावीर, बुद्ध आदि सभी पैगम्बर हैं और कुरान की आयतों के अनुसार उनको इज्जत करना, उनमें फर्क न करना हर एक मुसलमान का फर्ज है। इसीलिये मैं मुसलमानों से कहा करता हूं कि भाई जब तक तुम राम, कृष्ण, महावीर बुद्ध की जय न बोलोगे तब तक तुम मुसलमान कैसे कहला सकोगे ?

अब आप समझ गये होंगे कि इसलाम कैसी सच्चाई के साथ सभी धर्मों और सभी धर्मों के महात्माओं में किस प्रकार समभाव रखता है। इस प्रकार सभी धर्म नीति और सदाचार का पाठ पढाते हैं और सभी धर्मों के प्रति आदर करना सिखाते हैं। धर्म के नाम पर लडना और अहंकार की पूजा करना कोई नहीं सिखाता। इसीलिये मैं कहता हूं कि सब धर्म एक हैं, हमें सब में समभाव रखना चाहिये।

बहुत से लोग दर्शन शास्त्रों की और स्वर्ग नरक आदि की दुहाई देकर धर्मों की आलोचना करने लगते हैं, यह धर्म तो ईश्वर नहीं मानता या ऐसा मानता है, वैसा मानता है आदि। मैं कहता हूँ ये फजूल के झगडे है धर्मशास्त्र का काम नीति, सदाचार, प्रेम और मनुष्यता का पाठ पढाना है, इसलिये धर्म को या धर्मशास्त्र को हम इसी नजर से देखें। दर्शन, इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, प्राणिशास्त्र आदि का विचार स्वतन्त्र रूप में करें। इनसे सम्बन्ध रक्खें, सहयोग स्थापित करें, पर इन शास्त्रों की बातों के विरोध को धर्म का विरोध न समझें।

गणित के अनुसार दो और दो चार होते हैं। अब इस बारे में यह विचार करना व्यर्थ है कि हिन्दू-धर्म के अनुसार कितने

होते हैं और इसलाम के अनुसार कितने होते हैं। गणित पर हिन्दू, इसलाम, जैन आदि की छाप लगाना उचित नहीं। इस तरह जब मुझ से कोई पूछे कि कलकत्ता से नागपुर कितने मील हैं? मैं कह दूंगा सात सौ मील। तब क्या कोई यह पूछेगा कि हिन्दू-धर्म के अनुसार कितने मील हैं और इसलाम के अनुसार कितने मील? यदि इस बात का सम्बन्ध धर्म-शास्त्र से नहीं है, तो हिन्दुस्तान कितना बड़ा है इसका सम्बन्ध धर्मशास्त्र से कैसे हो जायगा और यदि हिन्दुस्तान की रचना का सम्बन्ध धर्म-शास्त्र से नहीं है, तो एशिया या पृथ्वी का कैसे हो जायगा? जब पृथ्वी का नहीं तब ब्रम्हांड का कैसे हो जायगा? धारा तो एक ही है, एक ही शास्त्र का विचारणीय विषय है। तब इन बातों का सम्बन्ध हम धर्म-शास्त्र से कैसे जोड़ सकते हैं? इसीलिये मैं कहता हूं कि धर्म-शास्त्र को धर्म-शास्त्र रहने दीजिये, दुनिया भर के शास्त्र और उनके झगड़े धर्म-शास्त्र पर न लादिये। अगर आप धर्म का पालन करना चाहते हैं, धर्मात्मा बनना चाहते हैं, तो प्रेम का, सेवा का, ईमानदारी का और त्याग का व्रत लीजिये, दुनिया की भलाई में अपनी भलाई समझिये। दर्शन आदि की चर्चा को इस झगड़े में न लाइये, जैसा आपको जच जाय वैसा मान लीजिये, पर उसका उपयोग नीति और सदाचार को बढ़ाने में कीजिये। हमारा पहिला और मुख्य काम सुखी बनना और जगत को सुखी करना है। सब बातें और सब धर्म इसी के लिये हैं। इस बारे में महात्मा बुद्ध के विचार ध्यान देने लायक हैं। उन्होंने बड़े अच्छे ढङ्ग से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की थी।

एक बार आनन्द ने—(बुद्ध के एक मुख्य शिष्य ने) बुद्ध से पूछा—भगवन् ! सभी लोग परलोक आदि के बारे में कुछ न कुछ निश्चित बात कहा करते हैं पर आप कुछ नहीं कहते-यह क्या बात है ?

इसके उत्तर में म० बुद्ध ने बहुत सी बातें कहने के साथ कहा-देखो आनन्द, जङ्गल में एक आदमी जा रहा था, उसको तीर लगा जिससे बड़े जोर से खून की धारा बहने लगी। खून की धारा देखकर उसका पहिला कार्य क्या है ? वह पहिले खून की धारा बन्द करे या 'तीर किसने बनाया' आदि बातों की खोज करे ?

आनन्द ने कहा—खून बन्द करना पहिला काम है।

म० बुद्ध ने कहा-तो बस, संसार में जो तृष्णा आदि के घाव प्राणी को लगे हैं, उनका बन्द करना पहिला काम है। उसी के लिये मैंने चार आर्य सत्य बतलाये हैं। तृष्णा आदि के बन्द होने पर परलोक आदि कैसा भी हो, तृष्णा आदि हटा देनेवाले का भला ही है। उसकी चिन्ता अभी से क्यों की जाय ? मरने के बाद जैसा होगा देख लिया जायगा।

मैं आप से यही कहना चाहता हूं कि ईश्वर, परलोक आदि आपको जिस प्रकार मानना हो मानिये, पर उसके किसी एक रूप के मानने न मानने से धर्म-अधर्म का रिश्ता न जोड़िये।

दूसरी बात यह है कि ईश्वर और परलोक आदि के मानने की बात मुँह से न कहिये, जीवन से कहिये। जीवन से कर मुँह से कहना अपने को और दुनिया को धोखा

हम में से अधिकांश ऐसे धोखेबाज ही हैं। इसीलिये मैं कहा करता हूं कि हजार में नौ-सौ-निन्नानवे हिन्दू ईश्वर को नहीं मानते और हजार में नौ-सौ-निनावे जैनी कर्मवाद पर विश्वास नहीं रखते। रखते होते तो जगत में पाप दिखाई न देता।

अगर हम ईश्वर या अल्लाह को मानते तो क्या अँधेरे में पाप करते? समाज या सरकार की आखों में धूल झोंकते समय क्या यह न मानते कि ईश्वर की आखों में धूल नहीं झोंकी गई। हम मे से कितने आदमी ऐसे हैं जो दूसरों को धोखा देते समय यह याद रखते हों कि ईश्वर या खुदा की आखें सब देख रही हैं। अगर हमारे जीवन में यह बात नहीं है, तो ईश्वर या खुदा की दुहाई देकर दूसरों से झगडना हमें शोभा नहीं देता। यह बात कर्मवादी जैनियों से कहना है। कर्मबंध तो अँधेरा उजेला नहीं देखता, तब यदि कर्मबंध पर विश्वास रखते तो किसी के कहने पर भी पाप नहीं करते। कहने सुनने से क्या हम विष खा सकते हैं? विष के फल पर विश्वास होने से अगर हम विष नहीं खाते तो कर्म पर विश्वास होने से हमें अँधेरे में भी पाप नहीं करना चाहिये।

कहने का मतलब यह है कि हम इन बातों को जीवन में उतारने की कोशिश करें, ईश्वरवादी हो या कर्मवादी या अद्वैतवादी, अगर हम अपने वादों को जीवन में उतारने की कोशिश करेंगे, तो वे भी राह में सब अपने को एक ही जगह पायेंगे, झगडने का कोई कारण न रह जायगा। सब धर्म हमें एक ही जगह ले जानेवाले मालूम होंगे।

पड़ौस में और दुनियादारी में भाईचारा निभाया जाता है, फिर धर्म में क्यों नहीं निभाया जा सकता ! दूकानदारी में एक दूसरे के यहां सौदा देते हो, एक आफिस में पास पास बैठकर रोटियों के लिये नौकरी कर लेते हो, विवाह-शादी में पान-सुपारी के लिये एक दूसरे के यहां चले जाते हो, 'दुनिया' जो झगड़ने की जगह है, वहां तुम किसी न किसी तरह मिलकर काम कर लेते हो, पर 'धर्म' जहां कि दुनियादारी के रगड़े-झगड़ों से छुट्टी पानी चाहिये, वहीं झगड़ने बैठ जाते हो ! यह पानी में आग क्यों लगाते हो ? कम से कम पानी को बचा रहने दो, हम इससे दुनिया की आग बुझायेंगे ।

तुम्हें हिन्दू मुसलमान या जैनी बने रहना है ? बने रहो ! कौन मना करता है । हरएक आदमी अपने लिये एक घर बनाता है । तुम भी अपने लिये एक मजहबी घर बनाये रहो । पर क्या घर से बाहर न निकलोगे ? कभी किसी के घर बैठने-उठने भी न जाओगे ? क्या किसी को कभी अपने घर न बुलाओगे ? क्या घर में खिड़की या दरवाज़ा न रक्खोगे ? यदि रक्खोगे, जाओगे-आओगे तो मजहब में भी जाओ-आओ मिलो-जुलो ! मन्दिर तुम्हारा घर है तो कभी मसजिद में भी चले जाओ, मसजिद तुम्हारा घर है तो कभी मन्दिर में भी चले जाओ । राम तुम्हारा बाप है तो मुहम्मद को चचा कह लो, मुहम्मद तुम्हारा बाप है तो राम को चचा कह लो । दुनियादारी में तो पड़ोसी के बाप को चाचा कह देते हो, फिर यहीं क्या बुराई है ।

भाई, जरा सोचो तो, जब तुम्हारे नगर में कोई गुलाम मुहम्मद नाम का कलक्टर आ जाता है, तब तुम उसे सलाम कर लेते हो या नहीं ? अगर गुलाम मुहम्मद को सलाम किया जा सकता है. तो मुहम्मद साहब को सलाम क्यों नहीं किया जा सकता ! रामदास कलक्टर हो तो उसे सलाम, पर राम को नहीं ! महावीरप्रसाद को वन्दे और सलाम, पर महावीर के नाम पर मुह फेरना ! यह कैसी समझदारी है यह कहा का शिष्टाचार है ?

भाई, मैं क्या कहू ? अपना दिल निचोटकर आपके सामने कैसे रक्खू ? जब मैं इस देश के हिन्दू मुसलमानों को इसलिये लडते-झगडते देखता हू कि एक अपने को हिन्दू कहता है दूसरा अपने को मुसलमान, तब मेरा हृदय रोने लगता है। इन लडाइयों से हमारा पेट नहीं भरता, कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होता सिर्फ घमड उभडता है और हम कुछ स्वार्थियो की बातों में अकार एक दूसरे का सिर फोड डालते हैं। इन्हीं झगडों के कारण हम गुलाम बने। इतिहास हमारी आखों के सामने है पर हम अंधे और मूर्ख बनकर शिकार हो रहे हैं। हमें इसी देश मे रहना है, इस देश के बाहर हमारा और कोई घर नहीं है। तब झगडने से आखिर क्या लाभ ? क्या एक दूसरे को मिटा देना चाहते हो ? पागल हुए हो अगर ऐसा सोचते हो तो।

एक दिन आर्य-जाति और नाग जाति के लोग इससे भी बुरी तरह लडे थे। उस समय लाखों नाग लोगों को जिन्दा जला दिया गया था, पर आज हमी में नाग बैठे हैं। वे दुध-शक्कर

की तरह मिलकर एक हो गये हैं। दोनों के धर्म दोनो के वंश समाज में मिल गये। हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जाति उन्हीं के मिश्रण का परिणाम है। कोई किसी को न मिटा पाया। हां, मिला पाया। दोनों मिलकर एक बन गये। यही राह है—जिस पर पहिले के लोग चले हैं। इसी पर हमें आज चलना है।

क्या हजार पांच-सौ आदमियों के सिर फोडकर तुम एक दूसरे को मिटा देना चाहते हो? सन् १९१८ में जब देशव्यापी इन्फ्लुएंजा आया था उसमें एक करोड़ से भी अधिक आदमी मर गये थे। गांव के गांव साफ हो गये थे फिर भी जब मर्दुमशुमारी हुई तब पहली मर्दुमशुमारी से अधिक ही जन-संख्या निकली। अब मारो तुम कहाँ तक मार सकते हो। जब यमराज इन्फ्लुएंजा के डंडे से हमें न मार पाया तब तुम लकडी के डंडे और मामूली छुरियों से नाम-निशान मिटाना चाहो तो कैसे मिटा सकोगे? इस प्रकार तुम किसी जाति के आदमियों को खत्म नहीं कर सकते। हां, अपनी आदमियत खत्म कर सकते हो।

फिर यह तो सोचो—अगर तुम आदमियों को खत्म भी कर सको तो तुम्हें कोई खत्म कैसे करने देगा या होने देगा? तुम दुधारू गाय हो। जिन्हें तुम्हारा दूध पीना है वे तुम्हें कैसे मरने देंगे? हिन्दू या मुसलमान दोनों में से अगर एक भी मर जाय तो फूट कैसे फैलाई जा सकेगी? इसलिये इस भूल में न रहना कि तुम दूसरी जाति को मिटा सकोगे या दबा सकोगे। दोनों में से किसी एक को न तो इतना मिटने दिया जायगा न इतना दबने

दिया जायगा कि वह घबराकर डंडा नीचे रख दे। बैलेन्स बराबर इतना सम्हाला जायगा कि तुम एक दूसरे के ऊपर डंडा बरसाने लायक शैतानियत दिखा सको और तुम्हारा दूध निकला जा सके।

मैं आपसे बार बार आँखें खोलने के लिये कहता हूं, इतिहास पर नजर डालने के लिये कहता हूं और दुहराता हूं, कि यदि आप धर्म के नाम पर शैतान बन जायँ तो आदमियत को मिटा सकते हैं, आदमियों को नहीं। जिस दिन मुट्ठी भर मुसलमान इस देश के भीतर आये उस समय हिन्दुओं के हाथ में राज्य था, पर उस समय ये मुसलमानों को न मिटा सके, और जिस दिन मुसलमानों के हाथ में साम्राज्य था, उस दिन ये हिन्दुओं को न मिटा सके तो आज तो दोनों गुलाम हैं आज ये क्या एक दूसरे को मिटायेंगे? इसलिये इसके सिवाय और कोई रास्ता नहीं कि दोनों हिल-मिलकर रहें, अपने को एक ही देश और एक ही जाति का समझें। धर्म कोई भी पालें। सभी धर्म आदमियत का पाठ पढ़ाते हैं, सभी में सच्चाई है, इसलिये आदमियत का पाठ पढ़ें, सच्चे बनें। सर्व धर्म समभाव के नाम पर आज आप से मैं यही कहना चाहता हूं।

कलकत्ता,
नवम्बर १९४१

दरबारीलाल सत्यभक्त
—सत्याश्रम, वर्धा

सत्यभक्त साहित्य



सत्यसमाज के संस्थापक स्वामी सत्यभक्तजी ने धार्मिक सामाजिक राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय तथा जीवन शुद्धि विषयक जो विशाल साहित्य रचा है, जो गद्य, पद्य, नाटक, कथा आदि अनेक रूप में बुद्धि और मन पर असाधारण प्रभाव डालनेवाला है उसे एकवार अवश्य पढिये।

१ सत्यामृतमानव-धर्म-शास्त्र [दृष्टिकांड] १)

२ सत्यामृत [आचारकांड] १॥)

ऐसा महाशास्त्र जो सब धर्मों का निचोड़ कहा जा सकता है और जो अनेक दृष्टियों से मौलिक है।

३ निरतिवाद—भारत की परिस्थिति के अनुसार साम्यवाद का रूप... ।=)

४ सत्य संगीत—सर्वधर्म समभावी प्रार्थनाओं और जीवन-शोधक गीतों का संग्रह... ॥=)

५ शीलवती—वेश्याओं के सुधार की एक व्यावहारिक योजना -)

६ विवाहपद्धति—हिन्दी में ही सर्वधर्म समभावी विवाह पद्धति.... =)

७ सत्यसमाज और प्रार्थना -)

८ नागयज्ञ [नाटक]—राष्ट्रीय एकता का मार्गदर्शक एक ऐतिहासिक नाटक .. ॥)

९ हिन्दू-मुस्लिम-मेल ... -)॥

१० आत्म-कथा—सत्यभक्तजी का अनुभवपूर्ण जीवन चरित्र १।)
११ हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद [उर्दू अनुवाद] .. =)
१२ बुद्ध हृदय —म. बुद्ध की जीवन घटनाओं पर उन्हीं के विचार .. ।=)
१३ कृष्णगीता —आजकल की भी समस्याओं को सुलझाने वाली नई गीता . ।।।)
१४ अनमोलपत्र—सत्यभक्तजी के कुछ पत्रों के खास खास अंश -)
१५ सुलझी हुई गुत्थियाँ—सत्यभक्तजी द्वारा दिये गये कुछ प्रश्नों के विस्तृत उत्तर... ।)
१६ कुरान की झाँकी—कुरान में आये हुए उपदेशों का संग्रह =)
१७ जैनधर्म-मीमांसा [भाग १] . १)
१८ जैनधर्म-मीमांसा [भाग २] .. १॥)
जैनधर्म में आई हुई विकृति या उसकी अपूर्णता को हटाकर उसका संशोधित रूप।
१९ न्यायप्रदीप (हिन्दी में जैन न्याय का मौलिक ग्रन्थ) १)

मिलने का पता—सत्याश्रम, वर्धा. [सी.पी.]

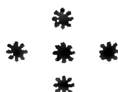
मुद्रक —सत्येश्वर प्रिंटिंग प्रेस, वर्धा

सर्व-धर्म-समभावी—

विवाह-पद्धति



[स्वामी सत्यभक्त]



द्वितीय संस्करण] [मूल्य दो आना

प्रकाशक के दो शब्द

यह छोटी-सी पुस्तिका पूज्यपाद कर्मनिष्ठ श्री दरबारीलालजी सत्यभक्त, संस्थापक "सत्यसमाज" प्रणीत महान ग्रन्थ-रत्न "सत्यामृत" [मानव धर्मशास्त्र] के तीसरे भाग [व्यवहार काण्ड] के प्रथम अध्याय का एक अंश मात्र है। इस सर्व-धर्म-समभावी विवाह-पद्धति से अब तक कई प्रान्तों में अनेक विवाह हो चुके हैं, और सभी धर्मवालों ने इसे बहुत पसन्द किया है, है भी यह ऐसी कि इसमें सब धर्मों का प्रतिनिधित्व आ गया है।

इसमें नरनारी समभाव भी जैसा दिखाया गया है, उतना और किसी विवाह-पद्धति में देखने में नहीं आया, इसलिये यह आज समुन्नत और सुधरे हुए जमाने के बहुत अनुकूल है। इसमें आये हुए सप्तपदी तथा प्रदक्षिणा के पद इतने सुन्दर और अर्थबोधक हैं कि इसीसे पता लग जाता है कि वर-कन्या के ऊपर क्या जिम्मेदारी आ रही है और उन्हें किस नीति से इसे पूर्ण करना है, और दोनों का परस्पर क्या स्थान और कर्तव्य है। हिन्दी में ही होने से यह सभी के लिये सुबोध है। इससे लोग विवाह का वास्तविक रूप समझ सकते हैं।

इस विवाह-विधि से हुए विवाहों को देखकर इसकी चारों ओर से बहुत माग हुई। अतः यह दूसरी आवृत्ति जनता के समक्ष उपस्थित की जाती है। आशा है कि प्रत्येक कुटुम्ब प्रत्येक जाति और सम्प्रदाय के मनुष्य इस विधि का उपयोग करेंगे।

सत्याश्रम, वर्धा
ता. १२।६।४२

—साहु रघुनन्दनप्रसाद
[अमरोहा]

सर्व-धर्म-समभावी—

विवाह-पद्धति

सूचनाएँ

१—विवाहोत्सव और विवाह-पद्धति का प्रयोजन वर-कन्या के हृदय में विवाह के महान उत्तरदायित्व का भान करा देना और उसके लिये साक्षियों का पीठ-बल उत्पन्न करना है; इसलिये विवाह यथासम्भव अधिक नर-नारियों की उपस्थिति में होना चाहिये।

२—'वर' शब्द का अर्थ दूल्हा है, चाहे वह कुमार हो विधुर हो या परित्यक्त हो। 'कन्या' शब्द का अर्थ दुलहिन है, चाहे वह कुमारी हो विधवा हो, या परित्यक्ता हो।

३—कन्या-विक्रय और वर-विक्रय दोनों ही अनुचित हैं। दहेज हुंडा आदि का रिवाज अनुचित है। कन्या-पक्ष ने कन्या का इतने वर्षों तक पालन-पोषण किया, यही बहुत उपकार है फिर उससे दहेज के रूप में कर लेना अत्याचार है। हा, कन्या-पक्ष

वात्सल्यवश कन्या को कुछ दे तो यह उचित है; परन्तु उस भेंट पर कन्या के सिवाय और किसी का अधिकार न होगा।

अगर वर-पक्ष कन्या-पक्ष को कुछ दे तो यह भी अन्याय है इससे वर पक्ष की गरीबी बढ़ती है और उसका फल कन्या को भोगना पड़ता है। सन्तान के पालन-पोषण के बदले में किसी से कुछ न लेना चाहिये। इससे माता-पिता का ऋण चुकता है यही सन्तोष बहुत है।

किसी भी पक्ष से लेन-देन की बात हो उससे वर कन्या के उचित सम्बन्ध में बाधा पड़ेगी; इसलिये यह कुप्रथा न रहना चाहिये।

४-वर-पक्ष का कर्तव्य है कि वह कन्या के लिये कुछ भेंट लावे। दोनों पक्षों की तरफ से दी गई भेंटें कन्या का स्त्री-धन कहलायगा। इस पर जीवन भर उसी का अधिकार रहेगा।

५-वर-पक्ष और कन्या-पक्ष में कोई पक्ष छोटा न समझा जाय। कन्या के माता-पिता मामा मामी आदि गुरुजन वर-कन्या का विनय (पैर छूना आदि) न करें। अतिथि के समान सत्कार करना उचित है।

६-जिस दिन ऋतु अनुकूल हो, लोगों को फुरसत हो, हृदय में उत्साह और आनन्द हो, वही शुभ दिन और शुभ मुहूर्त है। विवाह-विधि सुविधानुसार किसी भी समय रक्खी जा सकती है।

७-विवाह-विधि के लिये निम्नलिखित चीजों की ज़रूरत है।

(१) वर-कन्या और आचार्य के बैठने के लिये तीन आसन (कुर्सियों का भी उपयोग किया जा सकता है)।

(२) दिव्य स्थापना के लिये छोटी चौकोन टेबुल या स्टूल या बाजोट जिसकी ऊँचाई वर-वधू के बैठने के आसन से कुछ अधिक हो।

(३) दिव्य स्थापना। धर्मालय की मूर्तियों का चित्र, अथवा किसी पत्र पर लिखे हुए या खुदे हुए सब देवों के नाम अथवा थाली आदि में लिखे गये सबके नाम। लिखने के लिये चन्दन, केशर या कुकू आदि रंग ठीक हैं।

(४) करीब २० गज सूत का एक लच्छा।

(५) सूत रंगने के लिये केशर, चन्दन अथवा केशरिया, गुलाबी या लाल रग।

(६) परस्पर वर-वधू के गले में डालने के लिये दो पुष्प-मालाएँ।

(७) अगर अष्ट मङ्गल द्रव्य की स्थापना करना हो तो ये आठों चीजें भी हों। १ दीपक, २ लक्ष्मी [रुपया आदि], ३-दर्पण, ४-जलपात्र (कलशी), ५-तलवार, ६-पुस्तक, ७-लेखनी, ८ चर्खा। इनके छोटे छोटे नमूने रखना चाहिये। (विवाह-विधि में यह मगल द्रव्य की विधि ज़रूरी नहीं है, इच्छा हो तो रक्खी जा सकती है)।

८-दिव्य स्थापना को बीच में करके उसके आसपास वर-कन्या और आचार्य सुविधानुसार बैठें।

विवाह-विधि

१--बाद में निम्नलिखित मङ्गलाचरण पढ़ा जाय।

साक्षित्व

जिसकी किरण से विश्व में सज्ज्ञान का उद्योत है।
है सूर्य का भी सूर्य जो सारे गुणों का स्रोत है॥
सब सम्प्रदाय रँगे हुए जिसके अनोखे रंग में।
वह सत्य प्रभु साक्षी रहे इस शुभ विवाह-प्रसंग में॥१॥

सब सम्प्रदायों में रहा जिसका अकण्टक राज्य है।
जो है कसौटी धर्म की जो प्रेम का साम्राज्य है॥
है फूलती फलती सदा सुख शान्ति जिसके संग में।
माता अहिंसा हो यहां साक्षी विवाह-प्रसंग में॥२॥

पुरुषत्व का आदर्श जग-विख्यात जिसका नाम है।
सर्वस्व-त्यागी, प्रवर-योगी और जो निष्काम है॥
जो सर्वदा रँगा रहा कर्त्तव्य के ही रंग में।
साक्षी महात्मा राम हो वह इस विवाह-प्रसंग में॥३॥

जो कर्मयोगी ज्ञान-भोगी नीति का रक्षक रहा।
त्राता रहा जो पीड़ितों का दुष्ट-दल तक्षक रहा॥
हँसता रहा जो सम्पदा के रंग में या भंग में।
वह कृष्ण योगेश्वर रहे साक्षी विवाह-प्रसंग में॥४॥

सर्वसाक्षित्व यन्त्र

भ. सत्य - भ. अहिंसा

सब गुणदेव

महात्मा राम, महात्मा कृष्ण, महात्मा महावीर,
महात्मा बुद्ध, महात्मा ईसा, महात्मा मुहम्मद,
महात्मा जरथुस्त, महात्मा कन्फ्यूसियस.

सब व्यक्तिदेव

सब सत्यसमाज

विश्व के समस्त प्राणी

थाली में यह यन्त्र बना लेना चाहिये या ऐसा ताम्रपत्र पर खुदा हो तो अच्छा।

सत्य-समाज के संस्थापक ☞



स्वामी सत्यभक्त

जो निस्पृही था किन्तु था सेवक अखिल संसार का।
जिसको न लालच द्वेष था उपकार या अपकार का ॥
जो वीरता की मूर्ति था अध्यात्म के रण-रंग में।
वह जिन महात्मा वीर हो साक्षी विवाह प्रसंग में ॥५॥

जिसने विविध दुखकारणों से युद्ध जीवनभर किया।
संसार को सुखमय बनाने के लिये जीवन दिया ॥
जो आ न पाया मारपापी के किसी भी ढंग में।
हो वह महात्मा बुद्ध साक्षी इस विवाह-प्रसंग में ॥६॥

जो था पुरुष पर मा सरीखा प्रेम दिखलाता रहा।
मरते समय भी प्रेम का संगीत ही गाता रहा।
हँसता रहा जो वेदनाओं को छिपाकर अंग में।
ईसा महात्मा हो वही, साक्षी विवाह-प्रसंग में ॥७॥

जो बर्बरों को भी सिखाने में हुआ कृतकृत्य था।
जो साम्यवादी था तथा सत्येश का सद्भृत्य था ॥
जो वीरवर था न्याय के कर्तव्य के रण-रंग में।
हजरत मुहम्मद हो वही साक्षी विवाह-प्रसंग में ॥८॥

इसके अतिरिक्त और भी भजन गाये जा सकते हैं, जो समभाव के विघातक न हों।

परस्पर आकर्षण

१०–इसके बाद वर-कन्या एक दूसरे के सामने मुँह करके खड़े हो जावें और विवाह-बन्धन के लिये निम्न लिखित पद्य पढ़ें—

वर -जीवन का पथ विषम भयंकर विपदाओं का मेला ।
पद पद पर हैं विकट प्रलोभन, कैसे चलूं अकेला !
इससे है याचना, साथ देकर क्या पूर्ण करोगी ;
देकर देवि, सहारा मेरी चिन्ता चूर्ण करोगी !
कन्या-देव यही याचना तुम्हारी है इच्छित वर मेरा !
पथ में खड़ी सोचती हूँ किस घर में करूँ बसेरा ॥
दोनों हैं विकलाग पूर्ण होने के लिये मिलेंगे ।
बीत जाँयँगी विपत निशाएँ हृदय-सरोज खिलेंगे ॥

सप्तपदी ☞

परस्पर आकर्षण के बाद परस्पर की अनुकूलता जानने के लिये सप्तपदी करना चाहिये ।

११-दाम्पत्य जीवन की दिव्यता तभी है, जब एक दूसरे के ऊपर शासन न करके परस्पर त्याग करें । अपनी त्याग भावनाएँ बतलाने के लिये यह सप्तपदी है—

पहिलापद-शील

वर-मनसे वचनसे कायसे निज-सहचरी-संतोष में ।
पालन करूँगा सर्वदा लगने न दूँगा दोष मैं ॥
माता सुता अथवा बहिन होगी मुझे पर कामिनी ।
बन कर रहोगी देवि तुम मेरे हृदय की स्वामिनी ॥

☞ सूचना—जो लोग सप्तपदी पद्य में न कहना चाहें वे निम्न लिखित गद्य-सप्तपदी का उपयोग कर सकते हैं—

कन्या—मनसे वचनसे कायसे निशिदिन स्वपतिसंतोष मैं ;
पालन करूँगी सर्वदा लगने न दूँगी दोष मैं ॥
यह शील ही होगा मुझे गुण-रूप पुष्पों की लता ।
बन कर रहोगे आर्य तुम मेरे हृदय के देवता ॥

दूसरापद—स्त्री-धन

वर—बिना तुम्हारी अनुमति पाये स्त्रीधन देवि तुम्हारा ।
व्यय न करूँगा रक्षक हूँगा यह मेरा प्रण प्यारा ॥
तुम जीवन की ज्योति बनोगी इस घर का उजियाला ।
जो पाऊँगा दूँगा तुमको, पत्र पुष्प की माला ॥

कन्या—अपने धनका दुरुपयोग कणभर भी नहीं करूँगी ।
धन की है क्या बात प्राण भी देकर विपत हरूँगी ॥
तुम मेरे सौभाग्य बनोगे और नयन के तारे ।
तुम मेरे सर्वस्व रहोगे जीवन के उजियारे ॥

वर की सप्तपदी [गद्य में]

१—मैं आज से स्वदारसन्तोष व्रत का पालन करूँगा, पर-स्त्री को मा बहिन, बेटी के समान समझूँगा ।

२—तुम्हारे स्त्री धन की सदा रक्षा करूँगा, उस पर तुम्हारा पूरा अधिकार होगा ।

३—तुम्हारी धार्मिक स्वतन्त्रता में बाधा न डालूँगा ।

४—तुम्हारा रहस्य किसी पर प्रगट न करूँगा ।

५—मैं तुम्हारे जीवन की आवश्यकताएँ यथाशक्ति पूरी करूँगा ।

६—बीमारी आदि में तुम्हारी सेवा और हरएक आपत्तियों से तुम्हारी यथाशक्ति पूरी रक्षा करूँगा ।

७—तुम्हारे नियुक्त कार्यों में यथाशक्ति सहायता करूँगा ।

तीसरापद–धार्मिक-स्वातन्त्र्य

वर–सत्य अहिंसा रूप और समभाव बढानेवाला।
हो जो धार्मिक कार्य प्रेम का पाठ पढानेवाला॥
उसमें बाधा कभी न दूंगा साधन सदा करूंगा।
यथा शक्ति मैं धर्म कार्य के विघ्न समस्त हरूंगा॥

कन्या—सत्य अहिंसा का पुनीत पथ कभी नहीं छोडूंगी।
अन्ध-भक्तिसे रूढि राज्य से प्रेम नहीं जोडूंगी।
सर्व धर्म समभाव सदा जीवन में अपनाऊंगी।
सत्य-धर्म का मर्म मनोमन्दिर में लाऊंगी॥

चौथापद–रहस्य-गोपन

वर—विना तुम्हारी अनुमति पाये कोई भी रहस्य की बात।
नहीं कहूंगा कभी किसी से नहीं करूंगा हृदयाघात॥
विम्ब और प्रतिबिम्ब बनेंगे दोनों के मन एक समान।
दो तन एक एक प्राण बनकर हम साधेंगे अद्वैत महान॥

कन्या की सप्तपदी

१– मैं आजसे स्वपतिसन्तोष का व्रत पालन करूँगी। परपुरुष को पिता पुत्र या भाई के समान मानूंगी।

२—स्त्री-धन का दुरुपयोग कभी न करूँगी और न अनुचित तरीके से उसे बढाने की कोशिश करूँगी।

३–मैं विवेकपूर्वक धर्म का पालन करूँगी। समभाव रखकर तुम्हारे धर्म में सहायता दूँगी। रूढियों की गुलामी के कारण हठ न करूँगी।

४—तुम्हारा रहस्य किसी पर प्रगट न करूँगी।

५—वर की अवस्था देखकर ही मैं खर्च करूँगी अपव्यय कभी न करूँगी और ईमानदारी से गृहप्रबन्ध करूँगी।

कन्या—अनुमति बिना न प्रगट करूँगी कोई भी रहस्य की बात।
और न अपना भी रहस्य मैं रक्खूंगी तुमसे अज्ञात ॥
एक बनेंगे दोनों मिलकर एक घाट पीवेंगे नीर।
दिखने भर को रह जावेंगे केवल अपने भिन्न शरीर ॥

पांचवाँपद–आर्थिक-व्यवस्था

वर—होगी देवि तुम्हारी जो जो आवश्कता जीवन की।
वह सब पूर्ण करूंगा चिन्ता मुझे न है तनकी धनकी ॥
लक्ष्मी अगर रुष्ट भी होगी तो न कभी घबड़ाऊगा।
मुट्ठीभर अनाज पाऊगा पहिले तुम्हें चढ़ाऊंगा ॥
कन्या—घरकी हालत देख मितव्ययिता का ध्यान रखूंगी मैं।
कभी अपव्यय करूंगी न मैं पूरी सेवा दूंगी मैं ॥
मुट्ठीभर भी अन्न मिलेगा खुश होकर स्वीकारूंगी।
"जितनी लम्बी खौर रहेगी उतने पैर पसारूंगी"

छट्ठापद–सेवा

वर—रोग आदि विपदा आनेपर दूगा साथ तुम्हारा।
दास बनूगा पार करूंगा विपदाओं की धारा ॥
किसी तरह का और अगर तुमपर संकट आवेगा।
मुझको मार विना न तुमको हाथ लगा पावेगा ॥
कन्या—विपदाओं में सङ्ग रहूंगी बनी रहूंगी दासी।
छोड़ूंगी सर्वस्व, रहूंगी बस सेवा की प्यासी ॥

६–बीमारी आदि में तुम्हारी सेवा करूँगी। और भी हर तरह की आपत्तियों में यथाशक्ति सहायता दूगी तथा साथ रहूँगी।

७–तुम्हारे कार्यों में यथाशक्ति सहयोग करूँगी।

सेवा की पवित्र वेदी पर जीवन बलि का दूँगी।
अपने प्राण निचोड तुम्हारी सेवा में धर दूँगी॥

सातवाँ पद- होगा

वर—होगा तुम्हारा कार्य जो उसमें रहूँगा साथ मैं।
होगी सदा इच्छा यही कुछ तो बटाऊँ हाथ मैं॥
कोशिश करूँगा सर्वदा हममें सदा सहयोग हो।
मिलकर हमारा याग हो मिलकर हमारा भोग हो॥

कन्या—आलस्यको तजकर करूँगी सब तरह सहकार मैं।
अपने प्रयत्नों से तुम्हारा कम करूँगी भार मैं।
घर को करूँगी स्वर्ग-सा आनन्द का आगार मैं।
होगी यही बस भावना पाऊँ तुम्हारा प्यार मैं॥

१२—इसके बाद वर-कन्या अपने स्थान पर बैठ जाँय। आचार्य उपस्थित सज्जनों से कहे—

आज……… तिथि माह सवत् ता वार को श्रीमान्……………और श्रीमती…………के पुत्र श्री……तथा श्रीमान……और श्रीमती…………की पुत्री श्रीमती……परस्पर विवाह सम्बन्ध से जुडना चाहते हैं। इस योग्य सम्बन्ध के लिये मैं आप लोगों की अनुमति चाहता हूँ। आशा है आप अवश्य ही प्रदान करेंगे।

१३--(क) आचार्य की बात सुनकर दर्शकों में से कोई भाई या बहिन निम्नलिखित पद्य पढ़े। हो सके तो बाकी लोग दुहराते जायँ—

मधुर मिलन मे हृदय हुआ सन्तुष्ट हमारा।
अनुमोदक हैं आज यहां दर्शक दल सारा।
जान सके हम शुद्ध भाव दोनों मन के।
दोनों के सम्पूर्ण मनोरथ हों जीवन के॥

अथ।

[ख]—अगर पद्य न पढ़ना हो तो एक या कुछ आदमी गद्य से कहें —

"हम इस सम्बन्ध से सहमत हैं अनुमति देते हैं" आदि।

[ग]—इस अनुमोदन में माता पिता आदि अभिभावकों का भी अनुमोदन शामिल है। परन्तु अगर कन्या की उम्र १८ वर्ष से कम हो तो उसके अभिभावकों से विशेष सम्मति लेना चाहिये।

आचार्य के पूछने पर वे निम्नलिखित दोहा पढ़ें:—

प्यारी पुत्रीने किया जो यह उचित विचार।
मुझे पूर्ण स्वीकार है यह उत्तम संस्कार॥

अथवा गद्यमें ही वे अनुमति दे सकते हैं।

१४— नियम नं० ७ के अनुसार अगर मंगल द्रव्यों की स्थापना की गई हो तो उनका निम्नलिखित उपयोग करना चाहिये। अगर न की गई हो तो यह विधि छोड़ देना चाहिये।

अष्ट मङ्गल द्रव्यों में से वर दीपक उठाकर कन्या के हाथ में दे। कन्या तलवार उठाकर वर के हाथ में दे। इस प्रकार वर, कन्या को लक्ष्मी, दर्पण और जलपात्र दे और कन्या, वर को पुस्तक, लेखनी और चरखा। इसके बाद कन्या अपनी चारों चीजें वर के हाथ में दे। तब वर के पास आठों चीजें हो जायँगी।

वाद में वर ये आठों चीजे कन्या को दे । इसके बाद कन्या के पास से वर तलवार आदि चार चीजें लेले । इस आदान-प्रदान का मतलब यह है--

माङ्गलिक द्रव्य जीवनोपयोगी वस्तुओ के स्मारक हैं । दीपक, लक्ष्मी, दर्पण और जलपात्र ये नारियों के और तलवार आदि पुरुषों के कार्य क्षेत्र के स्मारक हैं । देने लेने का मतलब यह है कि वर कन्या के और कन्या, वर के साधनों की पूर्ति करेगी । किसी समय आठों का एक के हाथ में आनेका मतलब यह है कि कठिन अवसर आने पर दोनों का काम वर करेगा या कन्या करेगी । अवसर निकल जाने पर अपने-अपने हिस्से का काम दोनों करेंगे । आचार्य का काम है कि आदान-प्रदान की क्रिया के समय उसका मतलब समझाता जाय ।

१५—इसके वाद प्रदक्षिणा-विधि (भाँवर) करना चाहिये । जहाँ लोग इस विधि का उपयोग न करना चाहें किन्तु एक दूसरे को माला या अँगूठी पहिनावें वहा प्रदक्षिणा विधि के पद्य पढने की जरूरत न रहेगी । प्रदक्षिणा के समय दोनों का एक-एक हाथ केशरिया रगमें रँगे हुए लम्बे सूत्र में फँसा देना चाहिये । सूत्र इतना लम्बा हो कि प्रदक्षिणा में वर वधू के आगे पीछे होने में बाधा न आने पावे । सूत्र बाँधकर आचार्य कहे—

आचार्य- याद रखो यह चन्द्रचकोर समान परस्पर प्रेम न छूटे ।
लूट सके धनधान्य सभी पर दैव चिरन्तन प्रेम न लूटे ॥
फोड सके भँवरा लकडी पर कोमल पत्र सरोज न फूटे ।
साँकल टूट सके पर प्रेम-रँगी यह कोमल डोर न टूटे ।

जहां प्रदक्षिणा विधि न होगी वहा मङ्गलाष्टक आदि पढ़कर विवाह-विधि समाप्त कर दी जायगी। परन्तु जहा प्रदक्षिणा करना हो वहा प्रदक्षिणा के बाद मंगलाष्टक आदि पढकर विवाह-विधि समाप्त की जाय।

१६—एक एक प्रदक्षिणा जीवन के एक एक कार्य की निशानी है। जिस कार्य में नारी की प्रधानता है उसमें नारी आगे रहेगी, जिसमें नर की प्रधानता है उसमें नर आगे रहेगा। पहिली और सातवीं प्रदक्षिणा में दोनों साथ रहेंगे। वेदी के सामने खड़े होकर वर और कन्या को अपने अपने हिस्से का पद्य अच्छे स्वर में पढ़ना चाहिये, बाद में प्रदक्षिणा देना चाहिये। आवश्यकता होने पर आचार्य उन पद्यों को पढता जाय और वर-कन्या दुहराते जाँयँ। यदि लज्जा आदि कारणों से यह भी असम्भव हो तो आचार्य ही पद्य पढ़ दे। शीघ्रता हो और प्रदक्षिणा भी आवश्यक हो तो पद्यों के पढे बिना भी प्रदक्षिणा की जा सकती है। प्रदक्षिणा के मतलब आचार्य समझा दे।

पहिली प्रदक्षिणा—दोनों साथ

वर—जीवन का पथ है विकट अधकार है घोर।
संकटमय कटक बिछे और प्रलोभन चोर॥
छूटने पाये ज़रा न साथ।
पकड़ कर रखना मेरा हाथ॥
बनो तुम देवि, प्रकाश तरग।
दिखाओ पथ मुझको रह सग।

कन्या—यह मेरा सौभाग्य है मिला तुम्हारा साथ ।
मेरी मंजिल पार हो पकड़ तुम्हारा हाथ ॥
पड़ा है जीवन-पथ अपार ।
हुई हूँ चलने को तैयार ॥
शक्ति है तनिक न है कुछ साज ।
तुम्हीं अब रखना मेरी लाज ॥

दूसरी प्रदक्षिणा—वर आगे

वर—देवि, करेंगे दुष्ट जन हम पर चोट कठोर ।
रहने दो मुझको यहाँ तुम आगे की ओर ॥
रखूंगा तुमको अपनी ओट ।
सहूंगा मैं छाती पर चोट ॥
न होने दूंगा तुमको कष्ट ।
करूंगा अरियों का बल नष्ट ॥

१ कन्या—ज्यों समझो त्यों ही चलो लेकर मुझको साथ ।
यह मेरा सौभाग्य है पाया तुम-सा नाथ ॥

तीसरी प्रदक्षिणा—कन्या आगे

कन्या—गृह प्रबन्ध का क्षेत्र यह मुझ पर छोड़ो आर्य ।
रहने दो आगे मुझे करने को गृह-कार्य ॥
उठाऊंगी मैं घर का भार ।
रहूंगी मैं श्रम को तैयार ॥

१- पाठान्तर-जैसा अवसर हो करो तुम वैसा ही काम ।
आज मिले सौभाग्य से मुझ दासी को राम ॥

झंझटों बीच रहूंगी धार
न छोडूंगी कटूक्ति के तार ॥

२ वर—मेरी गृह-देवी बना मेरे सिर का ताज।
मिली स्वामिनी भाग्य मे मुझ सेवक को आज ॥

चौथी प्रदक्षिणा-वर आगे

वर—देवि, परीक्षा-स्थल विकट यह आर्थिक संग्राम।
लक्ष्मी है चचल विकट क्षण छाया क्षण घाम ॥
लगाऊंगा मैं अपनी शक्ति।
न्याय पूर्वक लूंगा सम्पत्ति।
करूंगा तनमन से श्रम घोर।
देवि, रहने दो अग्रिम ओर ॥

कन्या—देव रहो आगे भले, पर मैं भी हूं साथ।
सदा तुम्हारे कार्य में मैं भी दूंगी हाथ ॥

पांचवीं प्रदक्षिणा-कन्या आगे

कन्या—यह सेवा का क्षेत्र है, है यह मेरा धाम।
रहने दो आगे करूं, मैं सेवा का काम ॥
समझती हूँ सेवा में स्वर्ग।
स्वार्थ का नाश पूर्ण अपवर्ग ॥
न समझूंगी इसमें अपमान।
करूंगी हँसकर जीवन-दान ॥

२—पाठान्तर-मेरी गृह देवी बनो मेरे सिरका ताज।
सीता सी मूरति मिली मुझ सेवकको आज ॥

वर--सेवा को तैयार है देवि सदा यह दास ।
पथ-प्रदर्शिका तुम बनो दूर करो सब त्रास ॥

छट्ठी प्रदक्षिणा—वर आगे

वर--मानवता पर धर्म पर, हों दोनों बलिदान ।
प्रगति-निरोध न कर सकें रूढि मूढता मान ॥

विकट है जन सेवा की राह ।
चाहते हैं सब रूढ़ि प्रवाह ॥
त्याग पर भी है अत्याचार ।
सेवकों पर भी पाद प्रहार ॥
करूंगा मैं कुरूढ़ि का भंग ।
देवि तुम रहना मेरे संग ॥
न यश अपयश की हो पर्वाह ।
सत्य की, सेवा की हो चाह ॥

कन्या—जहा सत्य की भक्ति है जहा विवेचक ज्ञान ।
निर्भयता निःस्वार्थता वहीं स्वर्ग सामान ॥

सुयश की भूमि हृदय को जान ।
करूंगी मैं विवेक सन्मान ॥
रखूंगी साहस शुद्ध विचार ।
सत्य ही होगा यश का सार ॥

सातवीं प्रदक्षिणा—दोनों साथ

वर—सारी विपदाएँ टलीं हुए प्रलोभन जीर्ण ।
प्रेम-दीप लेकर करें जीवन पथ उत्तीर्ण ॥

न आगे पीछे का अब काम ।
प्रेममय गति होगी अविराम ॥
बनेंगे दोनों मिलकर एक ।
रहेगा जाग्रत पूर्ण विवेक ॥
दु:ख सुख में होगा समभाव ।
नहीं होगा कटूक्ति का घाव ॥
प्रेम से कार्य प्रेम से बात ।
प्रेम से होगा पूर्ण प्रभात ।

कन्या—पाया मैंने पुण्य से यह सुयोग्य सत्संग ।
रँगा रहेगा हृदय अब सदा प्रेम के रंग ॥

न भूलूंगी मैं अपना काम ।
बनाऊंगी घर को सुखधाम ॥
बनेगा दोनों का पथ एक ।
न होगी मेरी तेरी टेक ॥
प्रलोभन विपदाओं का जोर ।
न आने पावेगा इस ओर ॥
बनेगा प्रेम हमारा प्राण ।
सत्य प्रभु से होगा कल्याण ॥

१७-इस के बाद वर वधू एक दूसरे के गले में माला पहिनायें ।

१८—इसके बाद निम्नलिखित मङ्गलाष्टक पढ़ा जाय । मङ्गल पद्य की समाप्ति पर पुष्पवर्षण होता रहे तो और भी अच्छा ।

मङ्गलाष्टक

[१]

धर्मों का भी धर्म गुणाकर ईश्वर जग का स्वामी।
जिसके चरण चिह्न पर चलता जगत मोक्ष पथ गामी॥
जिसके वरद हस्त के नीचे सोता सदन है सारा।
जगत्पूज्य भगवान सत्य वह मङ्गल करे तुम्हारा॥

[२]

सब धर्मों की सकल महात्मा पुरुषों की जो माता।
जिसकी गोदी में अञ्चल के नीचे है सब साता॥
प्रेममयी चिद् शान्तिमयी सब धर्मों का ध्रुवतारा।
जगदम्बा भगवती अहिंसा मङ्गल करे तुम्हारा॥

[३]

सत्य उपासक सच्चा शासक दुख सुख समता धारी।
विपत्प्रलोभन-विजयी ज्ञानी कठसंयम-पथ-चारी॥
जगत में मङ्गल कर्ता वह राम जगत का प्यारा।
देवी सीता सहित सब तरह मङ्गल करे तुम्हारा॥

[४]

कर्मयोग की मूर्ति प्रेम का पुंज कला का स्वामी।
योग भोग का सङ्गम-सा कामी और अकामी॥
मुरलीधारी, विपिन-विहारी सकल रसों की धारा।
गीता-गायक कृष्ण जगद्गुरु, मङ्गल करे तुम्हारा॥

(५)

अनेकान्त--सिद्धान्त--प्रणेता कठिन--तपस्या---धारी ।
परम अहिंसक सत्यथदर्शक ज्ञानी सत्य--पुजारी ॥
महिला जन पशुगण का रक्षक शूद्रों का भी प्यारा ।
महावीर अरहंत सर्वदा मंगल करे तुम्हारा ॥

(६)

मध्यम मार्ग-प्रणेता जग का नेता परम अकामी ।
करुणाशाली गुणगणमाली श्रमण संघ का स्वामी ॥
दंभ-विदारक मयम-धारक तारक सत्य दुलारा ।
सुखपथ दर्शक बुद्ध महात्मा मंगल करे तुम्हारा ॥

(७)

योगि अगम्य गहनतम सेवा--धर्म सिखाने वाला ।
दम्भ हटाकर सकल विश्व को मार्ग दिखाने वाला ॥
शांत, साहसी, मृत्यु-जयी, निर्भय, ईश्वर का प्यारा ।
सेवा मूर्त्ति महात्मा ईसा मंगल करे तुम्हारा ॥

(८)

साम्यवाद की मूर्ति मुहमद पैगम्बर पदधारी ।
वीर, महात्मा, जडपूजकता-आदि का पापप्रहारी ॥
जरथुस्तादिक वद्य महात्मा-पुरुषों का दल सारा ॥
इस दाम्पत्य प्रभात समय में मंगल करे तुम्हारा ॥

मंगलाष्टक के बाद जीवन-पत्रिका भरकर सब को बताना चाहिये। पत्रिका की चार नकलें हों। एक वर के पास, एक कन्या के पास, एक कन्या के अभिभावकों के पास, एक समाज के

कार्यालय में। स्त्रीधन-पत्रिका के पहिले या पीछे और भी लोग आशीर्वाद दे सकते हैं। इस तरह के गीत सबके अंत में होना चाहिये।

स्त्रीधन-पत्रिका

१ वर का नाम और पता ··· उम्र
२ वर के माता-पिता का नाम···· उम्र
३ कन्या का नाम · उम्र
४ कन्या के माता-पिता का नाम और पता ···
५ विवाह का स्थान ··· तिथि तारीख
६ आचार्य का नाम और पता···
७ वर पक्ष की तरफ से प्राप्त स्त्रीधन का मूल्य ···
८ विवरण ···
९ कन्या पक्ष की तरफ से प्राप्त स्त्रीधन का मूल्य···
१० विवरण···
११ स्त्रीधन की व्यवस्था (कहां रक्खा गया)
१२ वर के हस्ताक्षर····
१३ कन्या के हस्ताक्षर ···
१४ आचार्य के हस्ताक्षर ··
१५ वर पक्ष के प्रधान व्यक्ति के हस्ताक्षर ···
१६ कन्या पक्ष के प्रधान व्यक्ति के हस्ताक्षर ···
१७ दो प्रतिष्ठित व्यक्तियों के हस्ताक्षर···

१ ————————————

२ ————————————

सत्यभक्त साहित्य



सत्यसमाज के संस्थापक स्वामी सत्यभक्तजी ने धार्मिक सामाजिक राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय तथा जीवन शुद्धि विषयक जो विशाल साहित्य रचा है, जो गद्य, पद्य, नाटक, कथा आदि अनेक रूप में बुद्धि और मन पर असाधारण प्रभाव डालनेवाला है उसे एकबार अवश्य पढ़िये।

१-सत्यामृत-मानव-धर्म-शास्त्र [दृष्टिकाण्ड] .	१।)
२-सत्यामृत [आचारकाण्ड]	१॥।)
ऐसा महाशास्त्र जो सब धर्मों का निचोड़ कहा जा सकता है और जो अनेक दृष्टियों से मौलिक है।	
३-निरतिवाद—भारत की परिस्थिति के अनुसार साम्यवाद का रूप...	।=)
४-सत्य संगीत—सर्वधर्म समभावी प्रार्थनाओं और जीवन-शोधक गीतों का संग्रह..	॥=)
५-शीलवती—वेश्याओं के सुधार की एक व्यावहारिक योजना	-)
६-विवाह-पद्धति—हिन्दी मे ही सर्वधर्म समभावी विवाह पद्धति ...	=)
७-सत्यसमाज और प्रार्थना ..	-)
८-नागयज्ञ [नाटक]—राष्ट्रीय एकता का मार्गदर्शक एक ऐतिहासिक नाटक...	।)
९-हिन्दू-मुस्लिम-मेल ...	-)॥

१०–आत्म-कथा—सत्यभक्तजी का अनुभवपूर्ण जीवन चरित्र १।)

११–हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद [उर्दू अनुवाद].... =)

१२–बुद्ध हृदय —म. बुद्ध की जीवन घटनाओं पर उन्हीं के विचार.... ।=)

१३–कृष्णगीता —आजकल की भी समस्याओं को सुलझाने वाली नई गीता.... ।।।)

१४–अनमोलपत्र—सत्यभक्तजी के कुछ पत्रों के खास खास अंश ≠)

१५–सुलझी हुई गुत्थियाँ—सत्यभक्तजी द्वारा दिये गये कुछ प्रश्नों के विस्तृत उत्तर.... ।)

१६–कुरान की झाँकी—कुरान में आये हुए उपदेशों का संग्रह =)

१७–जैनधर्म-मीमांसा [भाग १].... १)

१८–जैनधर्म-मीमांसा [भाग २].... १।।)

जैनधर्म में आई हुई विकृति या उसकी अपूर्णता को हटाकर उसका संशोधित रूप।

१९–न्यायप्रदीप (हिन्दी में जैन न्याय का मौलिक ग्रन्थ) ...१)

मिलने का पता—सत्याश्रम, वर्धा. [सी.पी.]

मुद्रक —सत्येश्वर प्रिंटिंग प्रेस, वर्धा

हिन्दू मुसलिम मेल

लेखक—

सत्य-समाज संस्थापक

स्वामी सत्यभक्त

प्रकाशक—

सत्याश्रम वर्धा (सी. पी.)

प्रथमावृत्ति अक्टूबर १९४०

मूल्य—डेढ़ आना

प्रकाशक—

सूरजचन्द्र डांगी
सत्याश्रम वर्धा (सी. पी.)

इजाजत

जो सज्जन 'हिन्दू-मुसलिम-मेल' का मुफ्त में प्रचार करने के लिये या अधिक से अधिक एक आना कीमत रखकर प्रचार करने के लिये इस पुस्तक को छपाना चाहें उन्हें इजाजत है। और इसी शर्तपर अनुवाद कराकर छपाने की भी इजाजत है।

जो सज्जन सौ दो सौ कापियां बांटना चाहें उन्हें छ रुपया सकड़े के हिसाब से हिन्दू मुसलिम-मेल की पुस्तकें सत्याश्रम वर्धा से मिल सकतीं हैं। पर कम से कम पचास पुस्तकें अवश्य लेना चाहिये। पुस्तक मंगाने का पोस्टेज आदि खर्च मंगाने वाले के जिम्मे होगा।

जो बांटने के लिये अपनी तरफ से छपाना चाहें उनका भी इन्तजाम सत्याश्रम वर्धा कम खर्च में कर देगा।

जो सम्पादक अपने पत्र में यह पुस्तिका छापेंगे वे भी इतना प्रचार के पुण्य के भागी होंगे।

मूल्य
डेढ़ आना
एक रुपया दर्जन-या ८) सैकड़ा

मुद्रक—
सत्येश्वर प्रिंटिंग प्रेस
बोरगांव वर्धा
सी. पी.

हिन्दू मुस्लिम मेल

हिन्दु मुसलमान एक ही देश के निवासी हैं इनके आर्थिक स्वार्थ एकसे हैं--दिनरात का जीवन इस तरह मिला हुआ है कि अलग नहीं किया जा सकता । इतना होनेपर भी आज दोनों में इतना वैर फैलासा मालूम होता है मानों साँप और नौले सरीखा उनमें जन्म से वैर हो। और बहुत से लोग तो ऐसे हैं जो दोनों की एकता में विश्वास ही नहीं करते।

पर गौर से देखने से पता लगता है कि हिन्दू मुसलमान दोनों ही एक दूसरे से मिलते जा रहे थे। असहयोग के बाद राजनैतिक स्वार्थ के कारण अगर दोनों में जानबूझकर वैर पैदा न कराया गया होता तो इन १७-१८ वर्षों में दोनों बिलकुल मिल गये होते। पर इसमें जिनके स्वार्थ को धक्का लग रहा था उनने लोगों के भीतर छिपे हुए शैतान को उभाडा-दोनों की बरबादी की और दोनों की कब्र पर अपना महल बनाना चाहा। वे आज अपनी कोशिश में सफल हुए मालूम होते हैं पर यह भूलना न चाहिये कि आसमान कितने ही घने बादलों से क्यों न छा जाये सूर्य का उदय रुक नहीं सकता। इसी तरह हिन्दू मुसलमानों का मेल हजार कोशिशों पर भी रुक नहीं सकता।

इस देश के लिये यह नया प्रसंग नहीं है । एक दिन आर्य अनार्यों का झगडा हिन्दू मुसलमानों से बढ़कर था । दोनों की वंशपरम्परा हिन्दू मुसलमानों की अपेक्षा अधिक जुदी थी फिर भी आज आर्य अनार्य स'फ हो गये हैं -- दोनों की मिलकर एक कौम बन गई है, एक सभ्यता और एक धर्म बन गया है ।

अपनी अपनी विशेषता से चिपके रहने से विशेषता और समानता सब नष्ट होजाती है । अहंकार सब को खा जाता है । आर्यों और नागों ने जब इस तत्व को समझा तब दोनों में एकता हुई ।

आज भी वैसी ही परिस्थिति है । हिन्दू मुसलमान मिलकर एक नहीं हो सकते यह मान्यता बहुतों की है । पर अगर आर्य और नाग मिलकर एक होगये तो मैं नहीं समझता कि हिन्दू मुसलमानों में उनसे अधिक क्या अन्तर है । नागयज्ञ सरीखी क्रूरता तो हिन्दू और मुसलमान दोनो में से कोई भी नहीं दिखासकता ।

हिन्दू मुसलमानों में क्या क्या भेद कहा जाता है इसकी एक तालिका बनाकर उसपर विचार करने से उन भेदों की निस्सारता माल्म होजायगी ।

	हिन्दू	मुसलमान
१	मूर्त्तिपूजक	मूर्त्तिविरोधी
२	मांसत्यागी	मांसभक्षी
३	गोवधविरोधी	शूकरवध विरोधी
४	बहुदेववादी	एकेश्वरवादी
५	पुनर्जन्म मानते हैं	कयामत मानते हैं
६	पूजन में गाते हैं बाजा बजाते हैं—	नमाज में शान्त रहते हैं

७	पूर्व तरफ प्रणाम करते है---	पश्चिम तरफ नमाज पढते है
८	चोटी रखते हैं	दाढी रखते हैं
९	हिन्दुस्थानी हैं	अरवी हैं
१०	लिपि देवनागरी है	लिपि फारसी है
११	भापा हिन्दी है	भाषा उर्दू है ।
१२	धार्मिक उदारता अधिक	धार्मिक उदारता कम
१३	नारीअपहरण नहीं करते-	-करते हैं
१४	मुसल्मानों को अछूत समझते हैं	किसी को अछूत नहीं समझते

१ मूर्त्तिपूजा

१ आर्यसमाजी ब्राह्मसमाजी स्थानकवासी आदि अनेक सम्प्रदाय हिन्दुओं में भी ऐसे हैं जो मूर्त्तिपूजा के विरोधी हैं सिक्ख और तारणपथी अर्ध मूर्तिपूजक हैं अर्थात् वे शास्त्र की पूजा मूर्त्ति सरीखी करते हैं और मुसल्मान भी अर्ध मूर्तिपूजक है, वे ताजिया और कब्र पूजते हैं, कावा का पत्थर चूमते हैं, मसजिदों में जूते पहिन कर जाने की मनाई करते हैं, यह सब भी एक तरह की मूर्तिपूजा है, ईंट चूना पत्थर में आदरभाव भी मूर्त्तिपूजा है इसलिये हिन्दू मुसल्मान दोनों ही मूर्त्तिपूजक हैं। यों असल में न हिन्दू मूर्त्ति-पूजक हैं न मुसल्मान मूर्तिपूजक हैं । मूर्त्ति या ईंट चूना पत्थर को ईश्वर या खुदा कोई नहीं मानता, सभी इन्हें खुदा या ईश्वर को याद करानेवाला निमित्त मानते हैं । किसी को मसजिद देखकर खुदा याद आता है किसी को मूर्त्ति देखकर खुदा याद आता है । सत्र

धर्मस्थान या प्रतीक खुदा को पढने या समझने की किताबें है। रामजी की मूर्ति के सामने पूजा करनेवाला हिन्दू रामजी की नीतिमत्ता प्रजापालकता त्याग उदारता वीरता आदि गुणो का वर्णन करता है यह नहीं कहता कि हे भगवान, तुम सगमरमर के बने हो बडे चिकने हो बडे बजनदार हो आदि। इसी प्रकार मक्का की तरफ मुँह करने नमाज पढनेवाला मुसलमान मक्का के पत्थरों का ध्यान नहीं करता, दोनों सिर्फ सहारा लेते है ध्यान तो खुदा या ईश्वर का करते हैं इसलिये दोनों मूर्त्तिपूजक नहीं हैं।

हा, इस्लाम में जो अमुक तरह की मूर्तिपूजा की मनाई की गई है उसका कारण यह है कि हजरत मुहम्मद साहिब के समय में मूर्तियों के नाम पर दलबन्दी लड़ाई झगड़े बहुत हो गये थे। हरएक मूर्ति मानों ईश्वर हो और मनुष्यों के समान मानो ईश्वरों मे भी झगड़े होते हों। मूर्ति को आधार बनाकर ये सब बुराइयाँ फलफूल रहीं थीं इसलिये मूर्तिया अलग कर दी गई। पर ईश्वर को याद करने के लिये जो सहारे थे वे नष्ट नहीं किये गये। मतलब यह कि बुराई मूर्ति में नहीं है किन्तु उसे ईश्वर मानने में, मूर्तियों के समान ईश्वर को जुदा जुदा कर लडाने में उनके निमित्त वैर विरोध बढाने में है। इस बात को हिन्दू भी मंजूर करेगा मुसलमान भी मंजूर करेगा। मूर्ति का सहारा लेना नास्तिकता नहीं है। यह तो रुचि योग्यता आदि का सवाल है। इसलिये मूर्ति अमूर्त्ति को लेकर सम्प्रदाय न बनाना चाहिये। हो सकता है कि मुझे मूर्त्ति के सहारे की जरूरत न हो और मेरे बच्चे को या पत्नी को हो अथवा मुझे उसकी जरूरत हो किन्तु मेरे बेटे को न हो इसलिये

मूर्त्ति अमूर्त्ति के सम्प्रदाय न वनना चाहिये । रुचि के अनुसार उपयोग करना ही उचित है ।

जब कि हिन्दू बिना मूर्त्ति के सन्ध्या सामायिक प्रतिक्रमण आदि धार्मिक क्रियाए करते हैं तब मूर्त्ति के बिना नमाज क्यो नहीं पढी जासकती और जब मुसलमान कब्र ताजिया काबा आदि का सहारा लेते हैं तब मूर्त्ति में क्या झगड़ा है । यह तो कोई बात न हुई कि हजरत मुहम्मद साहिब की कब्र का विरोध किया जाय पर दूसरे फकीरों की कब्रों पर रेवडिया चढाई जाय, अपनी अपने वाप की और राजा महाराजाओं की देशसेवकों की और अनेक सुन्दरियों की तसवीरें घर में लटकाई जाय किन्तु हजरत मुहम्मद साहिब की तसवीर का विरोध किया जाय । यह सब तो एक तरह से हजरत का अपमान कहलाया । हजरतने अगर अपना स्मारक बनाने की मनाई की थी तो यह तो उनकी नम्रता थी और यह विचार था कि लोग कहीं वुतपरस्त न वन जॉय। खैर, सीधी सी बात यह है कि यह सब रुचि और लियाकत का सवाल है । इसमें विरोध करने की या किसी वात पर जोर देने की जरूरत नहीं है । हिन्दू और मुसलमान दोनों को रुचि और लियाकत पर ध्यान देना चाहिये । इन्हें मजहवी भेद का कारण न बनाना चाहिये । व्यवहार में तो हिन्दुओं में भी मूर्त्तिपूजक हैं और उसके विरोधी भी हैं और मुसलमानों में भी मूर्त्तिपूजक हैं और उसके विरोधी भी हैं ।

२ मांसभक्षण

१--हिन्दुओं में सौ में पचहत्तर हिन्दू मासभक्षी हैं । शूद्र कहलानेवाली अधिकाश जातिया मास खाती हैं वगाल उडीसा मैथुल

आदि प्रान्तों मे उच्चजाति के कहलानेवाले ब्राह्मण आदि भी मास खाते है। क्षत्रिय लोग अधिकतर मास खाते हैं। सिक्ख मास खाते हैं ईसाई भी खाते हैं इसलिये मासभक्षण हिन्दू मुसलमानो के भेद का कारण नहीं कहा जासकता। बहुत से बहुत इतना ही हो सकता है कि जो लोग मासभोजन से बहुत अधिक परहेज करते हैं वे मासभक्षियों के यहा भोजन न करे उनके साथ भोजन करने में साधारणतः आपत्ति न होना चाहिये।

पर इस हालत में हिन्दू मुसलमान का भेद न होगा मास-भोजी शाकभोजी का भेद होगा।

हा, मासभोजन का विरोध हिन्दू और मुसलमान दोनों करते है। अहिंसा को दोनों महत्व देते हैं। यही कारण है कि हज करते समय हर एक मुसलमान को मास का बिलकुल त्याग करना पडता है जू मारना भी मना है। साधारण दिनों मे अगर किसी प्राणी को मारना भी पडे तो तडपाना मना है। अगर हिंसा धर्म होता तो हज के दिनो मे अधिक से अधिक मास खाने का उपदेश होता, मासत्याग का नहीं। हिन्दुओ में भी मासत्याग को बडा पुण्य माना हैं। इस-प्रकार मूल में तो दोनों ही अहिंसावादी है आदत के कारण या कमजोरी के कारण जो हिंसा रह गई है वह दोनों तरफ है ऐसी हालत में झगडने का क्या कारण है?

३ गोवध

गोवध हो या सूकरवध हो या और भी किसी प्राणी का वध हो, जब दोनों ही अहिंसा को महत्व देते हैं तब दोनों को वध का विरोधी होना चाहिये। गोवध और सूकरवध के विरोध पर जो

खास जोर दिया जाता है उसके कारण ढूँढने की अगर कोशिश की जाय तो दोनों एक दूसरे के मत का आदर करेंगे। हिंदुस्थान कृषिप्रधान देश है। खेती की जरूरत हिंदुओं को भी है और मुसलमानों को भी है और खेती में यहा गाय का जो महत्व है वह सबको माळूम है इसलिये गोवध का विरोध मुसलमानों को भी करना चाहिये।

शूकर वध देखने का दुर्भाग्य अगर किसी को मिला हो तो वह मासभक्षी ही क्यों न हो तो भी उसका दिल थर्रा जायगा। जिस तरह वह चीत्कार करता है - जिस तरह वह जिंदा जलाया जाता है इससे क्रूर से क्रूर आदमी की रूह काँप जाती है। परिस्थिति अनुकूल न होने से यद्यपि इस्लाम पूरी तरह से पशुवध नहीं रोक पाया फिर भी इस तरह की क्रूरता का विरोध तो उसने किया ही। किसी भी जानवर को तड़पाने की अनुमति तो उसने कभी न दी, इस दृष्टिसे उसका शूकरवध विरोध बहुत ही उचित है। हिंदू तो अपने को मुसलमानों की अपेक्षा अधिक अहिंसावादी मानते हैं इसलिये उन्हें तो मुसलमानों की अपेक्षा भी अधिक शूकरवध-विरोधी होना चाहिये।

पर यह सवाल हिंसा अहिंसा की दृष्टि से विचारणीय नहीं रह गया है इसके भीतर अधिकार का अहंकार घुस गया है। कसाईघर में दिन-रात सैकड़ों गायें कटती हैं वे गायें भी प्राय हिंदुओं के यहा से खरीदी जातीं हैं, इस पर हिंदुओं को इतराज नहीं होता पर ईद के गोवध पर इतराज होता है। इसलिए यह

आदि प्रान्तों में उच्चजाति के कहलानेवाले ब्राह्मण आदि भी मास खाते है। क्षत्रिय लोग अधिकतर मास खाते हैं। सिक्ख मास खाते हैं ईसाई भी खाते हैं इसलिये मासभक्षण हिन्दू मुसलमानों के भेद का कारण नहीं कहा जासकता। बहुत से बहुत इतना ही हो सकता है कि जो लोग मासभोजन से बहुत अधिक परहेज करते हैं वे मासभक्षियों के यहा भोजन न करें उनके साथ भोजन करने में साधारणतः आपत्ति न होना चाहिये।

पर इस हालत में हिन्दू मुसलमान का भेद न होगा मास-भोजी शाकभोजी का भेद होगा।

हा, मासभोजन का विरोध हिन्दू और मुसलमान दोनों करते हैं। अहिंसा को दोनों महत्व देते हैं। यही कारण है कि हज करते समय हर एक मुसलमान को मास का बिलकुल त्याग करना पडता है जू मारना भी मना है। साधारण दिनों में अगर किसी प्राणी को मारना भी पडे तो तडपाना मना है। अगर हिंसा धर्म होता तो हज के दिनों में अधिक से अधिक मास खाने का उपदेश होता, मासत्याग का नहीं। हिन्दुओं में भी मांसत्याग को बडा पुण्य माना हैं। इस-प्रकार मूल में तो दोनों ही अहिंसावादी हैं आदत के कारण या कमजोरी के कारण जो हिंसा रह गई है वह दोनों तरफ है ऐसी हालत में झगडने का क्या कारण है ?

३ गोवध

गोवध हो या शूकरवध हो या और भी किसी प्राणी का वध हो, जब दोनों ही अहिंसा को महत्व देते है तब दोनों को वध का विरोधी होना चाहिये। गोवध और शूकरवध के विरोध पर जो

खास जोर दिया जाता है उसके कारण ढूँढने की अगर कोशिश की जाय तो दोनों एक दूसरे के मत का आदर करेंगे। हिंदुस्थान कृषिप्रधान देश है। खेती की जरूरत हिंदुओं को भी है और मुसलमानों को भी है और खेती में यहा गाय का जो महत्व है वह सबको मालूम है इसलिये गोवध का विरोध मुसलमानों को भी करना चाहिये।

शूकर वध देखने का दुर्भाग्य अगर किसी को मिला हो तो वह मासभक्षी ही क्यों न हो तो भी उसका दिल थर्रा जायगा। जिस तरह वह चीत्कार करता है - जिस तरह वह जिंदा जलाया जाता है इससे क्रूर से क्रूर आदमी की रूह काँप जाती है। परिस्थिति अनुकूल न होने से यद्यपि इस्लाम पूरी तरह से पशुवध नहीं रोक पाया फिर भी इस तरह की क्रूरता का विरोध तो उसने किया ही। किसी भी जानवर को तडपाने की अनुमति तो उसने कभी न दी, इस दृष्टिसे उसका शूकरवध विरोध बहुत ही उचित है। हिंदू तो अपने को मुसलमानों की अपेक्षा अधिक अहिंसावादी मानते हैं इसलिये उन्हें तो मुसलमानों की अपेक्षा भी अधिक शूकरवध-विरोधी होना चाहिये।

पर यह सवाल हिंसा अहिंसा की दृष्टि से विचारणीय नहीं रह गया है इसके भीतर अधिकार का अहकार घुस गया है। कसाईघर में दिन-रात सैकडों गायें कटती हैं वे गायें भी प्राय: हिंदुओं के यहा से खरीदी जाती हैं, इस पर हिंदुओं को इतराज नहीं होता पर ईद के गोवध पर इतराज होता है। इसलिए यह

प्रश्न अधिकार का प्रश्न वन जाता है ।

जहा अधिकार का सवाल आया वहा मुसलमानों को अपने अधिकार की रक्षा के लिये गोवध करना जरूरी हो जाता है इसलिये गोवध रोकने का सब से अच्छा तरीका यह है कि साधारण पशु वध के कानून के अनुसार मुसलमानों को कुर्बानी करने दी जाय । हा, आमरास्ते पर या खुली जगह में पशुवध न करने का जो सरकारी कानून है वह धार्मिक भावना से एक हिन्दू के नाते नहीं, किन्तु एक साधारण नागरिक के नाते पालन कराना चाहिये । सीधी वात यह है कि गोवध के प्रश्न पर हिन्दुओं को पूरी उपेक्षा कर देना चाहिये । गोवध रोकने के लिये शूकरवध करना निरर्थक है क्योंकि इससे गोवध वढेगा और दोनों पक्षों में होनेवाला मनुष्यवध और हृदयवध और भी कई गुणा होगा ।

गोवध रोकने का वास्तविक उपाय यह है कि गोपालन इस तरह किया जाय कि किसी को गाय वेंचने की जरूरत ही न पडे । आज जो हजारों की सख्या में गोवध हो रहा है उसमें हिन्दुओं का हाथ कुछ कम नहीं है । तव वर्ष छ. महीने में होनेवाला गोवध हिन्दू मुसलमानों के भाईचारे का वध क्यों करे ?

४ वहुदेववाद

हिन्दू वहुदेववादी हैं पर अनेकेश्वरवादी नहीं हैं । मुसलमानों के समान वे भी एकेश्वरवादी हैं और हिन्दुओं के समान मुसलमान भी वहुदेववादी है । हिन्दू एक ही परमात्मा मानते हैं उसके अवतार अंश विभूतियाँ दूत आदि अनेक मानते हैं इस प्रकार नाना रूपों

से एक ही ईश्वर को पूजते हैं। मुसलमान एक ही खुदा के हजारों पैगम्बर मानते हैं और उनका सन्मान भी करते हैं। हजारों पैगम्बरों के होने पर भी जैसे खुदा एक है उसी प्रकार हजारों सेवकों भक्तों अवतारों के होने पर भी ईश्वर एक है।

फिर इस बातको लेकर हिन्दुओं हिन्दुओं में इतना मतभेद है जितना हिन्दू मुसलमानों में नहीं है। बहुत से हिन्दू ईश्वर ही नहीं मानते, मुसलमान ईश्वर तो मानते हैं। अगर अनीश्वरवादी हिन्दुओं से ईश्वरवादी हिन्दू प्रेम से मिलकर रह सकते हैं उनसे सामाजिक सम्बन्ध भी रख सकते हैं जैसे जैनियों और बौद्धों से रखते हैं, तो ईश्वर को न माननेवाले हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर एक क्यों नहीं हो सकते ?

५ पुनर्जन्म

हिंदुओं का पुनर्जन्म और मुसलमानों की कयामत इसमें वास्तव में कोई फर्क नहीं है। दोनों मान्यताओं का मतलब यह है कि मरने के बाद इस जन्म के पुण्य पाप का फल मिलेगा। अब वह फल मरने के बाद तुरन्त ही मिलना शुरू होजाय या कुछ समय बाद मिले इसमें धार्मिक दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। क्योंकि दोनों से पाप से भय और पुण्य का आकर्षण पैदा होता है। इसलिये इस बात को लेकर भी दोनों में कोई भेदभाव नहीं है।

६ बाजा

हिंदू पूजा में बाजा बजाते हैं पर मुसल्मान भी बाजे के विरोधी नहीं हैं। ताजियों के दिनों में तो इतने बाजे बजाते हैं कि शहर भर की नींद हराम हो जाती है। और हिन्दू पूजा में बाजा

वजाने पर भी सन्ध्यावन्दन आदि के समय ऐसे चुप रहते हैं कि स्वास भी रोक लेते है। इससे इतना पता तो लगता है कि वाजे के विरोधी न हिन्दू हैं न मुसलमान, न मौन का विरोधी दोनों में से कोई है। वात सिर्फ मौके की है।

इस देशमें वाजे का इतना अविक रिवाज है कि उसे बीमारी तक कहा जा सकता है। कभी कभी मुझे व्याख्यान देते समय इसका वडा कडुआ अनुभव हुआ करता है। व्याख्यान खूब जमा है श्रोता तल्लीन हैं इतने में पडौस के मन्दिर से घटे की आवाज आई और ऐसी आई कि मेरी आवाज वेकाम होगई। पुजारियों को घटे से कितना मजा आया सो तो मालूम नहीं पर सैकडों और कभी कभी हजारों श्रोताओं का मजा किरकिरा होगया यह तो सब ने अनुभव किया। कभी कभी सभा के पाससे विवाह आदि के जुलूस ही निकलकर मजा किरकिरा कर दिया करते हैं, इससे इतना तो लगता है कि वाजों को कुछ कम करना जरूरी है। पर इससे भी जरूरी यह है कि जो कुछ हो नागरिकता के आधार पर वनाये गये कानून के अनुसार हो या समझा वुझाकर हो। नागरिकता के आधार पर नियम कुछ निम्नलिखित ढग से वनाये जा सकते हैं।

क—रात के दस बजे के वाद सुवह पाच बजे तक वाजा वजाना वन्द रहे।

ख–मसजिद में जव नमाज पढी जाती हो तव आसपास वाजा वजाना वन्द रहे। पर इसकी सूचना किसी झडे या निशान से दी जाय और समय नियत रहे।

ग—जहा पच्चीस या पचास आदमियों से अधिक की सभा भरी हो व्याख्यान हो रहा हो तो सूचना मिलते ही वहा वाजा वजाना वन्द रहे ।

घ—वाजा वजाने पर टेक्स लगाया जाय, आदि । इसप्रकार के नियम वनाये जाँय पर वे नागरिक अधिकारों की समानता से रक्षा करते हों मजहव के घमंड की रक्षा न करते हों ।

पर जव तक यह वाजा कानून न वने तव तक गोवध के समान इस प्रश्न पर भी पूरी उपेक्षा की जाय । जिसको वजाना हो वजाये न वजाना हो न वजाये । व्याख्यान होता हो, नमाज पढी जाती हो किसी घर में गमी हुई हो तो इस वात की सूचना वाजे वजवानेवालों को करदी उन्हें जची तो ठीक, न जची तो न सही, अधिकार के वल पर या डरा धमकाकर या मारपीट कर वाजे रुकवाने का कोई मतलव नहीं । इससे तो प्राणों के ही वाजे वजजाते हैं । पूजा और नमाज सव नष्ट होजाते हैं ।

सच्चे धर्म की वात तो यह है कि अगर नमाज पढी जाती हो और ठाकुरजी की सवारी गाजे वाजे के साथ निकले तो मसाजिद के सामने आते ही सवारी को रुक जाना चाहिये और सव लोक शान्ति से इस तरह खडे रह जाँय मानों नमाज में शामिल होगये हों । नमाज खत्म होनेपर मुसल्मान लोग सवारी को सन्मान से विदा करें । अगर सवारी नमाज के पहिले ही आजाय तो सवारी को सन्मान से विदा देने पर मुसल्मान लोग नमाज पढें अगर इसके लिये दस पाच मिनट नमाज में देर हो जाय तो कोई हानि नहीं ।

हिन्दू और मुसल्मान किसी तरह दो हो सकते है पर ईश्वर

और खुदा तो दो नहीं हो सकते तब खुदा के लिये ईश्वर का और ईश्वर के लिये खुदा का अपमान किया जाय तो क्या खुदा या ईश्वर किसी भी तरह खुश होगा।

यह सचाई अगर ध्यान में आजाय तो नमाज और पूजा का झगड़ा ही मिट जाय।

लोग प्रतिदिन एक ही तरह से नमाज पढ़ते हैं उन्हें कभी पूजा का भी तो मजा लेना चाहिये और जो सदा पूजा करते हैं उन्हें नमाज का भी मजा लेना चाहिये ; खाने पीने में जब हमें नये नये स्वाद चाहिये तब क्या मन को नये नये स्वाद न चाहिये ? और उस हालत में तो ये कर्तव्य हो जाते हैं जब ये नये नये स्वाद प्रेम शान्ति और शक्ति के लिये बड़े मुफीद साबित होते हैं। पूजा नमाज प्रार्थना आदि सब का उपयोग हमारे जीवन के लिये हर-तरह मुफीद है।

७ पूर्व-पश्चिम

एक भाई ने पूछा कि आप हिंदू मुसलमानों में क्या मेल करेंगे ? एक पूर्व को देखता है और एक पश्चिम को ? मैंने कहा--मिलते समय या बातचीत करते समय ऐसा होना जरूरी है। आप जिस तरफ को मुँह किये हैं उस तरफ को अगर मैं भी करूँ तो आप मेरी पीठ देखेंगे, बात क्या करेंगे ? मैं अगर छाती से छाती लगाकर आप से मिलना चाहूँ तो जिस तरफ को आपका मुँह होगा उससे उल्टी दिशा में मेरा मुँह होगा अन्यथा मिल न सकेंगे। मिलने के लिये जब एक दूसरे से उल्टी दिशा में मुँह करना जरूरी है तब पूजा नमाज के मिलने में उल्टी दिशा बाधक क्यों बने ?

समझ में नहीं आता कि ऐसी छोटी छोटी बातें हमारे जीवन में अडगा क्यों डालती हैं। और मर्म की बात समझने की कोशिश क्यों नहीं की जाती। दिशा का झगडा एक तो निःसार है और नि.सार न भी हो तो भी बेबुनियाद है। मुसलमन नमाज के लिये मक्का की तरफ मुँह करते हैं, हिंदुस्थान से मक्का पश्चिम में है इसलिये पश्चिम में मुँह किया जाता है, योरुप में नमाज पूर्व में मुँह करके पढी जाती है -- दक्षिण आफ्रिका में उत्तर तरफ और उत्तरीय देशों में दक्षिण तरफ। खुद मक्का में किब्ला के चारों तरफ चार इमाम नमाज पढने बैठते हैं-- एक का मुँह पूर्व को, एक का मुँह पश्चिम को, एक का उत्तर को और एक का दक्षिण को, दिशा की बात ही नहीं है। और हिंदू तो जब सूर्य को नमस्कार करते हैं तब उनका मुँह पूर्व की तरफ होता है अन्यथा जिधर मूर्ति होती है उधर ही प्रणाम करते हैं, मूर्ति का मुँह पूर्व को हो तो पुजारी का मुँह पश्चिम को होगा जिससे मूर्ति से सामना हो सके।

साधारणतः हिन्दूदेवों का स्थान सब जगह माना जाता है। ईश्वर की शक्तियाँ नाना ढंग से नाना दिशाओं में हैं इसलिये हिंदू सब दिशाओं में प्रणाम करता है। तीर्थों के विषय में यह कहा जासकता है—

सेतुबन्ध जेरुसलम काशी मक्का या गिरनार।
सारनाथ सम्मेदशिखर में बहती तेरी धार॥
सिन्धु गिरि नगर नदी वन ग्राम।
कहूं क्या, कहा कहा है धाम।

किब्ला के विषय में यह कहा जासकता है---

क्या मसजिद मन्दिर गिरजाघर मक्का और मदीना ।
खुदा जहा किब्ला है वो ही खुदा भरा तिलतिल मे ।
है किब्ला तेरे दिल में ॥

अब बतलाइये झगडा किधर है ?

८ दाढ़ी चोटी

हिन्दू मुस्लिम दगों को 'दाढी चोटी संग्राम' कहा जाता है । जबकि दाढी चोटी ये फैशन हैं इनका हिन्दू मुसलमानों से कोई ताल्लुक नहीं । सिक्ख दाढी रखते हैं - हिन्दू सन्यासी दाढी रखते हैं - राजस्थान के तथा अन्य प्रातो के क्षत्रिय दाढी रखते हैं और भी वहुत से हिन्दू दाढी रखते हैं जवकि हजारों मुसलमान ऐसे है जो दाढी नहीं रखते इसलिये दाढी को लेकर हिन्दू मसलमानों में कोई भेद नहीं है ।

रह गई चोटी की वात, सो चोटी का भी कोई नियम नहीं है । लाखों हिन्दू चोटी नहीं रखते और वहुत से मुसलमान किसी न किसी तरह चोटी रखते हैं--वे सिर पर चोटी नहीं रखते टोपी पर चोटी रखते हैं पर रखते हैं, इसलिये चोटी से भी हिन्दू मुसलमानों में कोई भेद नहीं है ।

असल वात यह है कि यह सब फैशन है । पुराने जमाने में लोग स्त्रियों सरीखे लम्बे वाल रखते थे साफ सफाई की अड़चन से लोग गर्दन तक वाल रखने लगे । वादमे किनारे किनारे वाल कटाकर वीच में वडा चोटला रखने लगे जैसे दक्षिण में अभी भी रिवाज है, वह चोटला कम होते होते चार वालों की चोटी रह गई,

और अन्तमें चोटी भी साफ होगई। जैसे लम्बी लम्बी मूछों से मक्खी सरीखी मूछें रहीं और अन्तमें साफ हो गईं यही वात चोटी की हुई। पश्चिम में एक और फेशन था-लोग सिर तो घुटालेते थे पर एक तरहकी टोपी लगा लेते थे जिस पर वहुत सुन्दरता से सजाये हुए नकली वाल रहते थे। पुराने जमानेमें इग्लेण्ड के लार्ड ऐसी टोपियों का उपयोग करते थे इस प्रकार सिर के वालों का फेशन टोपी के वालों का फैशन वन गया और इसीलिये सिर की चोटी तुर्कस्तान में टोपी की चोटी वन गई। इसीलिये तुर्की टोपी लगाने-वाले मुसलमान सिर पर चोटी न रखकर टोपीपर चोटी रखते हैं। हा, वहुत से हिन्दू और मुसलमान न सिर पर चोटी रखते हैं न टोपीपर चोटी रखते हैं। इस प्रकार हिन्दुत्व और मुसलमानियत, दोनों ही न चोटी से लटक रहे हैं न दाढ़ी में फँसे हैं इसलिये इस वात को लेकर झगडा व्यर्थ है।

९ देशभेद

कहा जाता है कि हिन्दू पहिले से यहा रहते हैं और मुसलमान अरवी हैं या पिछले हजार वर्ष में वाहर से आये हैं। इस प्रकार दोनों के पूर्वज जुदे जुदे होने से दोनों में स्थायी एकता नहीं हो पाती।

इसमें सन्देह नहीं कि मुट्ठी दो मुट्ठी मुसलमान वाहर से जरूर आये हैं पर आज जो हिन्दुस्थान में आठ करोड मुसलमान हैं वे जाति से हिन्दू ही हैं, यद्यपि अव एक धर्म का नाम भी हिंदू हो गया है और सामाजिक क्षेत्र भी वट गया है इसलिये मुसलमान

अपने को हिन्दू न कहें -- हिन्दी, हिन्दुस्थानी या भारतीय आदि कहें पर इसमें शक नहीं कि हिन्दुओं की जाति और मुसलमानों की जाति जुदी नहीं है। जिन हिन्दुओं ने धर्मपरिवर्तन कर लिया वे ही मुसलमान कहलाने लगे --इससे जाति या वंशपरम्परा कैसे बदल गई ? आज मैं अगर मुसलमान हो जाऊ तो कुछ रहन-सहन बदल लूगा नाम भी बदल लूंगा पर क्या बाप भी बदल लूगा ? अपने पुरखे भी बदल लूगा ? बाप और पुरखे वे ही रहेगे जो मुसलमान होने के पहिले थे, तब जाति जुदी कैसे हो जायगी । इसलिये राम कृष्ण महावीर बुद्ध व्यास चन्द्रगुप्त अशोक विक्रम आदि जैसे हिन्दुओं के पुरखे हैं वैसे ही मुसलमानों के पुरखे हैं दोनों को उनका गौरव मानना चाहिये। इसप्रकार जातीय दृष्टिसे हिन्दू मुसलमान बिलकुल भाई भाई हैं धर्म जुदा है तो रहने दो। बुद्ध और अशोक का धर्म तो आज के हिन्दू भी नहीं मानते फिर भी उन्हें अपना पूर्वज समझते हैं। कई दृष्टियों से हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म में जितना अन्तर है उतना हिन्दू धर्म और इसलाम में नहीं।

यों तो कोई भी धर्म बुरा नहीं है, कौन सा धर्म अच्छा और कौनसा बुरा या कम अच्छा यह तुलना करना फजूल है. अपनी अपनी योग्यता परिस्थिति और रुचि के अनुसार सभी अच्छे हैं। हिन्दू अगर मुसलमान होगये तो इससे किसी की भी धर्महानि नहीं हुई, सत्य सब जगह था जिसको जहा से लेना था सो ले लिया इसमें किसी का क्या बिगडा । रुचि के अनुसार धर्म क्रिया करने से जाति या देश जुदे जुदे नहीं होजाते। इसलिये मुसलमान भी हिन्दुओं के समान हिन्दू हिन्दी हिन्दुस्थानी हैं। उनका भी

इन देशपर उतना ही अधिकार है जितना हिन्दू कहलानेवालों का। दोनों ही एक माता की सन्तान हैं।

रह गई उन मुसलमानों की बात जो वाहर से आये हैं। ऐसे मुसलमान वहुत थोडे तो हैं ही, साथ ही उनमें भी शायद ही कोई ऐसा मुसलमान हो जिसका सम्बन्ध हिन्दू रक्त से न हो या इनेगिने ही होंगे। सम्राट् अकबर के बाद मुगल वादशाहों में भी आधे से ज्यादा हिन्दू रक्त पहुच गया था जो पीढी दर पीढी बढता ही गया।

मनुष्य ने अपनी समाज-रचना से चाहे जो कुछ व्यवस्था बनाई हो लेकिन कुदरत ने तो चलते फिरते प्राणियों को मातृवशी ही वनाया है अर्थात् इनमें जातिभेद मादा के अनुसार वनता है नर के अनुसार नहीं। जमीन में जैसे आप गेहू चना आदि के भेद से जुदी जुदी जाति के झाड पैदाकर सकते हैं वैसे गाय भैंस या नारी में नर के भेद से जुदी जुदी तरह के प्राणी पैदा नहीं कर सकते, वहा मादा की जाति ही सन्तान की जाति होगी।

ऐसी हालत में हिन्दू माताओं से पैदा होनेवाले मुसलमान भी जाति से हिन्दू ही रहे, धर्म से भले ही वे मुसलमान कहलाते हों। इस प्रकार वाहर से आये हुए मुसलमान भी कुछ पीढियों में पूरी तरह हिन्दू जाति के बन गये हैं। इसलिये यह कहना कि मुसलमान वाहर के हैं और हिन्दू यहा के हैं विलकुल गलत है। दोनों एक हैं - दोनों के पुरखे एक हैं - जाति एक है - देश एक है। इसलिये अरबी या हिन्दुस्थानी होनेसे हिन्दू मुसलिम मेलको अस्वाभाविक वतलाना ठीक नहीं।

१० लिपिभेद

कहा जाता है कि हिन्दुओं की लिपि देवनागरी है और मुसलमानों की फारसी, अब दोनों में मेल कैसे हो ?

यह एक नकली झगडा है। इसलाम का मूल अगर अरब में माना जाय तो अरबी को महत्ता मिलना चाहिये फारस तो इसलाम के लिये ऐसा ही है जैसा कि हिन्दुस्थान। फारस में हिन्दुस्थान की या हिन्दुस्थान में फारस की लिपि को इतनी महत्ता क्यों मिलना चाहिये।

खैर, मिलने भी दो, पर न तो नागरी हिन्दुओं की लिपि है न फारसी मुसलमानों की। बगाल के हिन्दू नागरी पसन्द नहीं करते, मद्रास तरफ भी हिन्दू नागरी नहीं समझते खास तौर से जिनने सीखी है उनकी बात दूसरी है, उधर पंजाब तरफ के हिन्दू नागरी की अपेक्षा फारसी का उपयोग ही अच्छी तरह करते हैं और मध्यप्रान्त के मुसलमान फारसी लिपि नहीं समझते। इस प्रकार भारत में अगर फारसी लिपि को स्थान मिला है तो वह प्रान्त के अनुसार मिला है न कि जाति के अनुसार। इसलिये इन्हें हिन्दू मुसलमानों के भेद का कारण बनाना भूल है।

अच्छी बात तो यह है कि सर्वगुणसम्पन्न कोई ऐसी लिपि हो जिसमें लिखने और पढने में गडबडी न हो छपाई का सुभीता हो सरल भी हो। देवनागरी में भी इस दृष्टि से बहुत सी कमी है वह दूर करके या और किसी अच्छी लिपि का निर्माण करके उसे राष्ट्र लिपि मानलेना चाहिये।

पर जब तक लोगों के दिल अविश्वास से भरे हैं तब तक

के लिये यह उचित है कि नागरी और फारसी दोनों ही राष्ट्र लिपि-यॉं मानली जॉंय । हरएक शिक्षित को इन दोनों लिपियों के पढने का अभ्यास होना चाहिये और लिखना वही चाहिये जिसका पूरा अभ्यास हो । कुछ दिनो वाद जब जाति का घमड न रह जायगा तब जिसमें सुभीता होगा उसीको हिन्दू और मुसलमान दोनो अपनालेंगे ।

११ भाषाभेद

लिपि की अपेक्षा भाषा का सवाल और भी सरल है जब-र्दस्ती उसे जटिल बनाया जाता है । लिपि तो देखने में जरा अलग माल्हम होती है और उसमें सरल कठिन का भेद नहीं किया जा सकता पर भाषा तो हिन्दी उर्दू एक ही है । दोनों का व्याकरण एक है क्रियाए एक हैं अधिकाश शब्द एक हैं, कुछ दिनों से सस्कृत-वालों ने सस्कृत शब्द बढाने शुरु किये, अरबी फारसीवालों ने अरबी फारसी शब्द, बस एक भाषा के दो रूप होगये और इसपर हम लडने लगे । हम दया कहें कि मिहर, इसीपर हमारी मिहरबानी और दयालुता का दिवाला निकल गया, प्रेम और मुहब्बत में ही प्रेम और मुहब्बत न रही ।

भाषा तो इसलिये है कि हम अपनी वात दूसरों को समझा सकें, वोलने की सफलता तभी है जब ज्यादा से ज्यादा आदमी हमारी वात समझें अगर हमारी भाषा इतनी कठिन है कि दूसरे उसे समझ नहीं पाते तो यह हमारे लिये शर्म और दुर्भाग्य की वात है । जब मैं दिल्ली तरफ जाता हू तब व्याख्यान देने में मुझे कुछ शर्म सी माल्हम होने लगती है । क्योंकि मध्यप्रान्त निवासी होने के

कारण और जिन्दगी भर संस्कृत पढ़ाने के कारण मेरी भाषा इतनी अच्छी अर्थात् सरल नहीं है कि वहा के मुसलमान पूरी तरह समझ सके। इसलिये मैं कोशिश करता हू कि मेरे बोलने में ज्यादा संस्कृत शब्द न आने पावें, इस काम में जितना सफल होता हू उतनी ही मुझे खुशी होती है और जितना नहीं हो पाता उतना ही अपने को अभागी और नालायक समझता हू। मुझे यह समझमे नहीं आता कि लोग इस बात में क्या बहादुरी समझते हैं कि हमारी भाषा कम से कम आदमी समझें। ऐसा है तो पागल की तरह चिल्लाइये कोई न समझेगा, फिर समझते रहिये कि आप बड़े पंडित हैं।

हरएक बोलनेवाले को यह समझना चाहिये कि बोलने का मजा ज्यादा से ज्यादा आदमियो को समझाने मे है। पागल की तरह बेसमझ की बातें बकने में नहीं।

हाँ, सुननेवालों को भी इतना खयाल रखना चाहिये कि हो सकता है कि बोलनेवाला सरल से सरल बोलने की कोशिश कर रहा हो पर जिन शब्दों को वह सरल समझ रहा हो वे अपने लिये कठिन हो उसका भाषा-ज्ञान ऐसा इकतरफा हो कि वह ठीक तरह से हिंदुस्थानी या सरल भाषा न बोल पाता हो तो उसकी इस बेवशी पर हमें दया करना चाहिये। बिना समझे घमण्डी या ऐसा ही कुछ न समझना चाहिये।

और बातों में लड़ाई हो तो समझ में आती है पर भाषा में लड़ाई हो तो कैसे समझें ? भाषा से ही तो हम समझ सकते है। इसलिये चाहे लड़ना हो चाहे मिलना हो पर भाषा तो ऐसी ही बोलना पड़ेगी जिससे हम एक दूसरे की गाली या तारीफ

समझ सके।

१२ धार्मिक उदारता

हिंदूधर्म और इस्लाम दोनों ही उदार हैं और इस विषयमें साधारण हिंदू समाज और मुसलमान समाज भी उदार है। पर मुश्किल यह है कि एक दूसरे को समझने की कोशिश नहीं करते। हिंदूधर्म में तो साफ कहा है—

'यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वम् मत्तेजोंशसम्भवम्'

जितनी विभूतियाँ हैं वे सब ईश्वर के अंश से पैदा हुई हैं। इसलिये हिन्दू दृष्टि में तो किसी भी धर्म के देव हों हिन्दू से वन्दनीय हैं। साधारण हिन्दू का व्यवहार भी ऐसा होता है। उस व्यवहार में विवेकरूपी प्राण फूँकने की जरूरत अवश्य है पर उसमें उदारता अवश्य है। इस्लाम के अनुसार तो हर कौम और हर मुल्क में खुदा ने पैगम्बर भेजे हैं और उनका मानना हरएक मुसलमान का फर्ज है इसलिये साधारणतः मुसलमान किसी धर्म के महात्माओं का खण्डन नहीं करते, ऐसे मुसलमान कवियों की संख्या कम नहीं है जिनने श्रीकृष्ण आदि की स्तुति में पन्ने भरे हैं। दुर्गा और भैरव तक के गीत गाने में मुसलमान कवि किसी से पीछे नहीं हैं पर दुख इस बात का है कि बहुत कम हिन्दुओं को इस बात का पता है। मुसलमानों में धार्मिक उदारता कम नहीं है। हाँ, राजनैतिक चाल-बाजियों ने अवश्य ही कभी कभी अनुदारता का नंगा नाच कराया है पर साधारण मुसलमान उदार हैं। जरूरत है एक दूसरे के समझने की।

१३ नारी अपहरण

बहुत से लोगों की शिकायत है कि मुसलमान लोग हिन्दू नारियों का अपहरण करते हैं। अपहरण से यहाँ फुसलाना आदि भी समझ लिया जाता है। पर इस विषय मे हिंदू मुसलमानो में उन्नीस बीस का ही अन्तर है। ऊँची श्रेणी के मुसलमान और ऊँची श्रेणी के हिन्दू दोनों ही नारी-अपहरण नहीं करते । बाकी हिन्दू और मुसलमानो में अपहरण होता है। जिन लोगों में तलाक का रिवाज है और आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है उन लोगों में इस तरह अपहरण होते हैं। हा, यह बात अवश्य है कि मुसलमान लोग मुसलमान और हिन्दू कहीं से भी अपहरण करते है जबकि हिन्दू हिन्दुओं में से ही खासकर अपनी जाति में से ही अपहरण करते हैं। इसका कारण हिन्दुओं का जातीय सकोच है– अपहरण-वृत्ति का अभाव नहीं। इसका इलाज मुसलमानों को कोसना नहीं है किंतु अपनी क्षुद्र जातीयता का त्याग करना है ।

हिन्दुओं में बहुत-सी जातिया ऐसी है जिनमें विधवाओं को दूसरा विवाह करने की मनाई है – ऐसी विधवाए जब ब्रह्मचर्य से नहीं रह पातीं तब वे भ्रष्ट हो जाती हैं उस समय प्राय. हिन्दू जातियों में उसे स्थान नहीं मिलता तब वे राजी खुशी से मुसलमान होना पसन्द कर लेतीं है। हिन्दू लोग अगर क्षुद्र जातीयता का त्याग कर दें और विधवा-विवाह का विरोध दूर कर दें तो नारी अपहरण की घटनाए न हो सकें।

फिर भी अगर कभी ऐसी घटना हुई हो जहा किसी नारी के साथ अन्याचार हुआ हो तो वहा सामान्य नारी रक्षण की दृष्टि

से प्रयत्न करना चाहिये । नारी अपहरण का दोष किसी जाति के मत्थे न मढना चाहिये । साधारणतः यही कहना चाहिये कि उस गुंडे ने या उन गुंडोंने ऐसा काम किया है ।

जब तक हिन्दू मुसलमानों के दिल साफ नहीं हैं तभी तक यह झगडा है और बात बात में एक दूसरे पर शका होने लगती है । इसका फल यह होता है कि जब अत्याचार गौण और जातीय द्वेष मुख्य बन जाता है तब ऐसे लोग भी साथ देने लगते हैं जो अत्याचार से घृणा करते हैं किन्तु जातीय अपमान सहन नहीं कर सकते । इससे समस्या और उलझ जाती है । इसलिये ऐसी घटनाओं को जातीय रग में न रँगना चाहिये । सार बात यह है कि जब दोनों के मन का मैल धुल जायगा और हिन्दू लोग अपनी जातीय सकुचितता और पुनर्विवाहविरोध दूर कर देंगे तो नारी-अपहरण की समस्या बिलकुल हल हो जायगी । एक दूसरे के साथ घृणा प्रगट करने से वह समस्या हल नहीं होसकती ।

१४ छूत अछूत

मुसलमानों की यह शिकायत है कि हिन्दू उन्हे अछूत समझते हैं । इसमें सन्देश नहीं कि हिन्दुओं मे छूत-अछूत की बीमारी है पर इसका उपयोग वे मुसलमानों के साथ कुछ विशेषरूप में करते हैं यह बात नहीं है । हिन्दू भगी चमार बसोर महार आदि हिन्दुओं को जितना अछूत समझते हैं उतना मुसलमानों को नहीं । बल्कि मुसलमानों को अछूत समझते ही नहीं । हां, उनके साथ नहीं खाते पीते, सो तो वे एकधर्म एक वर्ण के लोगों के साथ भी नहीं खाते पीते । इस विषय में मुसलमानों के साथ खास घृणा नहीं की जाती ।

हिन्दुओं की दृष्टि में तो हिन्दुओं की हजारों जातियों के समान मुसलमान भी एक जाति है।

छूत अछूत के प्रश्न में हिन्दू मुसलमानों को मिलाने की इतनी जरूरत नहीं है जितनी हिन्दू हिन्दू को मिलाने की। इस बात को लेकर हिन्दू मुसलिम द्वेष के लिये कोई स्थान नहीं है।

इस प्रकार और भी बहुत सी छोटी छोटी बातें मिलेंगी पर ऐसी सैकडो बातें तो एक मा बाप से पैदा हुए दो भाइयों में भी पाई जातीं हैं पर इससे क्या वे भाई भाई नहीं रहते ? हिन्दू मुसलमान भी इसी तरह भाई भाई हैं।

नासमझी से या स्वार्थी लोगों के बहकाने से एक दूसरे पर अविश्वास पैदा हो रहा है और दोनो ऐसा समझ रहे हैं मानों एक दूसरे को खाजायगे। इसी झूठे भय से कभी कभी एक दूसरे का सिर फोड देते हैं। पर क्या हजार पाचसौ हिन्दुओं के मरने से या हजार पाचसौ मुसलमानों के मरने से हिन्दू या मुसलमान नष्ट होजाँयगे ?

सन् १९१८ में इन्फ्लुएजा में एक करोडसे भी अधिक आदमी मर गये थे फिर भी जब बाद में मर्दुमशुमारी हुई तो पहिले से साठ लाख आदमी ज्यादा थे। उस इन्फ्लुएजा से ज्यादा तो हम एक दूसरे को नहीं मार सकते फिर कैसे एक दूसरे का नष्ट कर देंगे।

हिन्दू सोचें कि हम मुसलमानों को मार भगायेंगे तो यह असम्भव है। जिस दिन मुट्ठी भर मुसलमान हिन्दुस्थानमें आये उस दिन हिन्दू स्वतत्र शासक होकर भी नहीं भगा सके या नष्टकर सके अब आज खुद गुलाम होकर आठ करोड मुसलमानों को क्या

भगायेंगे ? यदि मुसलमान सोचें कि हम हिन्दुओं को नेस्तनाबूद कर देंगे तो जिन दिनों उनके हाथ में हिन्दुस्थान की बादशाहत थी उन दिनों वे हिन्दुओं को नेस्तनाबूद न कर सके तो आज खुद गुलाम होकर वे क्या हिन्दुओं को नेस्तनाबूद करेंगे।

दोनों में से एक भी किसी दूसरे को नेस्तनाबूद नहीं कर सकता। हाँ, दोनों लड़कर आदमियत को नेस्तनाबूद कर सकते हैं शैतान बनकर इस गुलजार चमन को दोजख बना सकते हैं।

पाकिस्तान

कुछ लोग हिन्दू मुसलमानों के झगड़ों को निपटाने के लिये पाकिस्तान की योजना सामने लाने लगे हैं। अगर पाकिस्तान से भलाई होनी हो तो किसी को भी उसके बनाने में इतराज नहीं है। पर हिन्दू मुसलमान इस तरह देश भर में फैले हुए हैं कि उनकी वस्ती अलग अलग करना असम्भव है। पाकिस्तान में भी हिन्दुओं को रहना होगा और हिन्दुस्तान में भी मुसलमानों को। दोनों के स्वार्थ जैसे आज एक हैं वैसे कल भी एक रहेंगे। पर शायद उस दिन हिन्दू समझेंगे कि अब हम स्वतंत्र हैं मुसलमान समझेंगे कि हम स्वतंत्र हैं जब कि वास्तव में दोनों के दोनों गुलाम रहेंगे। कदाचित् घमंड में आकर अल्पमत कौम को दबाना चाहें तो दूसरी जगहके लोग उसका बदला लेंगे इस प्रकार वैर वैर को बढ़ाता जायगा न पाकिस्तानवाले खुशहाल होंगे न हिन्दुस्थानवाले। अपने पाप से फूट से अन्याय से गुलाम रहेंगे बर्बाद होंगे।

अन्त में वहां भी मिलकर दोनों को एक बनना होगा इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है तो उसके लिये अभी और यहीं प्रयत्न

क्यों न किया जाय। एक ही नस्लके और एक ही देश के रहने वाले भाई सदा के लिये बिछुडकर वैर मोल क्यों लें?

चुनाव

दोनो भाइयो के अविश्वास का एक परिणाम यह है कि कौंसिलों आदि मे जुदा जुदा चुनाव किया जाता है। सरकार की यह नीति किसी तरह समझमे नहीं आती। इससे दोनो और भी अधिक बिछुडे हैं और स्वरक्षामें भी कुछ लाभ नहीं हुआ है। अगर कहीं हमारी संख्या दस फीसदी है और हमने लड झगड़कर पन्द्रह सीटें ले लीं और उनको हमने ही चुना, मेम्बरों का दूसरे लोगों से कुछ मतलब ही न रहा तो इसका फल यह होगा कि जैसे हमारे पन्द्रह मेंबर दूसरों से कोई ताल्लुक नहीं रखते उसी प्रकार दूसरे पचासी मेम्बर भी हमसे कोई ताल्लुक नहीं रक्खेंगे। दस के पन्द्रह मेम्बर लेलेने पर भी हमारा बहुमत तो हुआ नहीं और जो बहुमत के मेम्बर आये उनसे हमारी जान पहिचान भी एक वोटर के नाते नहीं हुई। ऐसी हालत में वे मनमानी करना चाहें तो हमारे दस के बदले पन्द्रह मेम्बर क्या करलेंगे। इसकी अपेक्षा यही अच्छा है कि हम जनसंख्या के अनुसार ही अपने मेम्बर चाहें और सम्मिलित चुनाव करें। दूसरे मेम्बरों के चुनाव में हमारा हाथ हो और हमारे मेम्बरों के चुनाव में दूसरों का हाथ हो। इसका परिणाम यह होगा कि हरएक मेम्बर को दोनों जाति के वोटरों से काम पडेगा इसलिये धारासभाओं मे कट्टर मुसलमान और कट्टर हिन्दू न पहुँचकर उदार मुसलमान और उदार हिन्दू पहुचेंगे।

अल्पमत बहुमत तो जहा जिनका है वहा उन्हीं का रहेगा, पर एक दूसरे की पर्वाह न करनेवाले और फूट फैलने में ही अपनी इज्जत समझनेवाले मेम्बर न रहेंगे। इसी मे हिन्दू मुसलमान दोनों की भलाई है।

उपसंहार

अन्त में हिंदू और मुसलमान दोनो से मेरी प्रार्थना है कि वे अब अलग अलग होने की कोशिश न करें। एक दूसरे के उत्सवों में, त्यौहारों में, धर्मक्रियाओं में मिलने की कोशिश करें। दोनों मिलकर मंदिरों का - दोनों मिलकर मस्जिदों का उपयोग करे, अपने को एक ही नस्ल का समझे। अन्त में दोनों मिलकर इस तरह एक हो जाँय कि बडा से बड़ा शैतान भी दोनों को न लडा सके।

हिन्दूमुस्लिममेल हुए बिना कोई भी चैन से नहीं रह सकता इसलिये वह कभी न कभी होकर ही रहेगा। पर हम जितनी देर लगायेंगे उतने दिनों तक दोजख के दुःख भोगते रहेंगे, इसलिये जल्दी से जल्दी हमे मेल की कोशिश करना चाहिये और मेल करने का एक भी मौका न छोडना चाहिये।

———

इतना अवश्य करें



१– अगर आप मनुष्य मात्र को एक जाति मानते हों, सब धर्मों में समभाव रखकर सबसे उचित लाभ उठाना चाहते हों, सामाजिक जीवन में जरूरी परिवर्तन करना चाहते हों और इसके लिये एक सगठन की जरूरत समझते हों तो सत्यसमाज के सदस्य अवश्य बनिये और सत्यसमाज के प्रचार में तनमनधन से सहायता कीजिये।

२– अपने गाव में सत्यसमाज का एक धर्मालय अवश्य बनाइये जो मनुष्यमात्र को दर्शन करने के लिये खुला रहता है जिसमें भ सत्य, भ अहिंसा और राम कृष्ण महावीर बुद्ध जरथुस्त ईसा आदि महात्माओं की मूर्तियाँ और कुरानशरीफ की पुस्तक या मक्काशरीफ की आकृति विराजमान रहती हैं।

ऐसा धर्मालय वर्धा स्टेशन के पास बोरगाव की हद में सडक के किनारे सत्याश्रम में बना है आकर दर्शन कीजिये।

३–सप्ताह में एकदिन ऐसा अवश्य रखिये जब हिन्दू मुसलमान आदि सब मिलकर सब धर्मों और जातियोंमें मेल बढानेवाली प्रार्थनाएँ, स्वाध्याय, चर्चा या व्याख्यानादि कर सकें।

४–दूसरे धर्मवालों के धार्मिक उत्सवों में आदर के साथ शामिल होने की कोशिश कीजिये।

—दरबारीलाल सत्यभक्त



सत्यभक्त-साहित्य

१ सत्यामृत-- मानवधर्मशास्त्र [दृष्टिकाण्ड] मूल्य १।) अपने और जगत के जीवन को सुखी बनाने के लिये, सत्य पाने के लिये जीवन को कैसा बनाना चाहिये, जीवन कैसे और कितने तरह के होते हैं, धर्म जाति आदि का समभाव कैसे व्यावहारिक बन सकता है आदि का मौलिक विवेचन विस्तार से किया गया है। इस महाशास्त्र का स्वाध्याय अवश्य कीजिये।

२ कृष्णगीता--मूल्य बारह आना।

श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवादरूप होनेपर भी चौदह अध्याय की यह गीता भगवद्गीता से बिलकुल स्वतन्त्र है। कर्मयोग के सन्देश के साथ इसमें धर्मसमभाव जातिसमभाव नरनारीसमभाव अहिंसादि व्रत, पुरुषार्थ, कर्तव्याकर्तव्यनिर्णय का बड़ा अच्छा विवेचन किया गया है। विविध छन्दों में ९५८ पद्य हैं जिनमें बहुत से मनोहर गीत भी हैं।

३ निरतिवाद--मूल्य छः आना।=)

साम्यवाद और पूंजीवाद के अतिवादों से बचाकर निकाला गया बीच का मार्ग। साथ ही विश्वकी सामाजिक धार्मिक राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने की व्यावहारिक योजना।

४ सत्य संगीत-- मूल्य दस आना।

भ. सत्य, भ. अहिंसा, राम कृष्ण महावीर बुद्ध ईसा मुहम्मद आदि महात्माओंकी प्रार्थनाएँ अनेक भावनागीत तथा भावपूर्ण कविताओं का संग्रह।

५ जैनधर्ममीमांसा (प्रथम भाग)-- मूल्य एक रुपया.

६ जैनधर्ममीमांसा (दूसरा भाग)- मूल्य १॥) ।

७ शीलवती-- मूल्य एक आना ।

८ विवाह-पद्धति-- मूल्य एक आना ।

सप्तपदी, भॉवर, मगलाष्टक मंगलाचरण आदि के सुन्दर पद्य सबको समझ में आनेवाली एक नयी विवाह पद्धति. इस पद्धति से अनेक विवाह हुए हैं और विरोधी दर्शकों ने भी इसकी सराहना की है । पूरी विधि हिन्दी मे ही है ।

९ भावनागीत-सत्यसमाज-- मूल्य एक आना ।

१० नागयज्ञ (नाटक)-- मूल्य आठ आने ।

भारत के आर्य और नागों का परस्पर द्वद, उसका हल, और अन्त में दोनों का मेल, एक ऐतिहासिक कथानक को लेकर अनेकरसपूर्ण चित्रण के द्वारा वताया गया है ।

११ हिन्दूमुस्लिम-मेल --मूल्य डेढ आना ।

१२ निर्मल योग सन्देश--मूल्य दो पैसा

निम्नलिखित ग्रथ छप रहे हैं .—

१३ आत्म कथा-- मूल्य करीव एक रुपया ।

१४ सत्यामृत--(आचार कांड) - मूल्य करीव १॥)

१५ जैनधर्म मीमांसा (तीसरा भाग)- मूल्य करीव १॥)

सत्याश्रम, वर्धा [सी पी.]

ये पुस्तकें हिंदी-ग्रन्थ-रत्नाकर हीराबाग गिरगाव बम्बईसे भी मिलेंगी ।